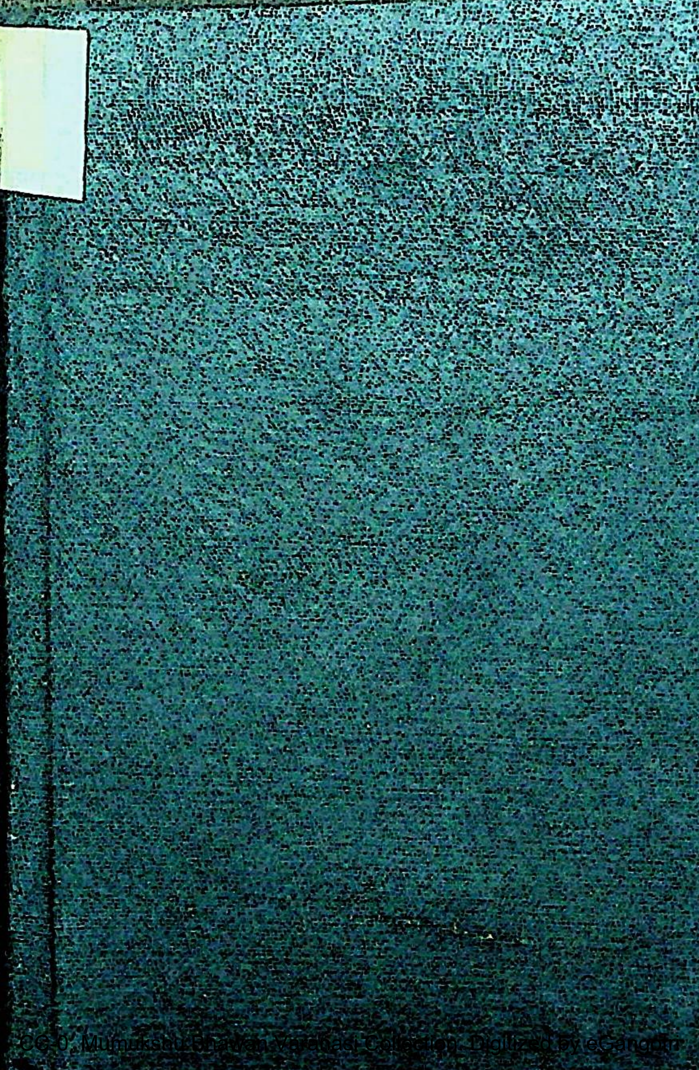


अद्वैत-संग्रहः ।



विजयादशमी १६७८]　　　　[मूल्य ॥)

प्रकाशक—
रामचन्द्र, मारवाड़ी अग्रवाल
ठिकाना—लाला गुटीराम सेडमल
तम्बाकू कटरा,
देहली

चित्तं चितं विजानीयात् तकाररहितं यदा।
तकारो विषयाध्यासो जपारागो यथा मणौ॥

जैसे जपा पुष्प (एक प्रकार का लाल फूल) की लाली श्वेतमणि में भ्रान्ति से प्रतीत होती है, इसी प्रकार विषयाध्यास रूप तकार, चित् (पद) में प्रतीत होने के कारण चित् (आत्मा) ही चित्तरूप होकर प्रतीत हो रहा है, जब तकार-रूप विषयाध्यास से रहित चित् को पुरुष जान लेता है तब मुक्त हो जाता है।

धनानि गेहे पशवश्च गोष्ठे भार्य्या गृहद्वारि जनः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

अन्त समय में धन धान्य आदि घर में, पशु पशुशाला में, भार्य्या घर के द्वार पर और बान्धवजन श्मशान में रह जाते हैं और देह चिता में भस्म हो जाता है, धर्माधर्म को साथ लिये हुए जीव अकेला ही परलोक-मार्ग की यात्रा करता है।

मुद्रक—
गणपति कृष्ण गुर्जर
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस,
जतनबड़, काशी। २५६—२१

समर्पण !

प्रातःस्मरणीय ब्रह्ममूर्त्ति गुरुवर श्री १०८ स्वामी श्री अच्युत मुनि (पण्डितप्रवर श्री दौलतराम जी) महाराज के श्रीचरण-कमलों में "अद्वैत सङ्ग्रह" पुष्पाञ्जलि को श्रद्धा-पुरःसर समर्पण करता हूँ ।

रामचन्द्र

धन्यवाद !

इस "अद्वैत सङ्ग्रह" का परोपकारबुद्ध्या हिन्दी भाषा में अनुवाद कर, ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मचारी श्री चेतनस्वरूप (पण्डित रलाराम शर्मा) जी महाराज ने अनुग्रह किया है इस लिये वह धन्य हैं !

रामचन्द्र

अनुग्रह—प्रकाशन ।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन उदार महानुभावों ने आर्थिक-सहायता दे कर मुझे अनुगृहीत किया है उनकी शुभ नामावली धन्यवाद-पूर्वक नीचे दी जाती है ।

श्रीयुत लाला दुर्गाप्रसाद सूरतराम, देहली
„ सेठ बीरदी चन्द पोद्दार, वर्धा (सी. पी.)
„ बाबू जयदयाल मदन गोपाल, काशी
„ „ राधा कृष्ण शिवदत्तराय. „
„ लाला सीताराम लक्ष्मीनारायण,
अशरफी कटरा, देहली
„ „ गुटीराम सेडमल, तमाखू कटरा, देहली
„ „ जोखीराम बालमुकुन्द, देहली

रामचन्द्र

भूमिका ।

निष्काम-कर्मानुष्ठानपूर्वक अन्तःकरणशुद्धि द्वारा जीवब्रह्म के अभेद का बोधन ही वेद का मुख्य प्रयोजन है। बिना इसके संसार की निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति (मुक्ति) नहीं हो सकती। यह विषय श्रुति, स्मृति तथा उनके भाष्य, वार्त्तिक, विवरण आदि बड़े बड़े प्रबन्धों में स्पष्ट करं के सविस्तर निरूपण किया गया है। श्रीमद्भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य्य जी महाराज ने अल्पबुद्धि अधिकारियों के लिये छोटे छोटे अनेक प्रकरण ग्रन्थों तथा स्तोत्रों की भी रचना की है, संस्कृतभाषानभिज्ञ हिन्दी-भाषाभाषी मुमुक्षु पुरुषों के लिये हिन्दी भाषा में उनका अनुवाद किया जाना आवश्यक जान कर इस पुस्तक का सङ्ग्रह किया गया है। यद्यपि सब ग्रन्थों के सम्पूर्ण श्लोकों का अनुवाद देना उचित था तथापि ऐसा करने से ग्रन्थ बहुत बढ़ जाता, अतः यथायोग्य कुछ संक्षिप्त और कुछ सम्पूर्ण ग्रन्थ चुने गये हैं, और मूल श्लोकों के नीचे सरल हिन्दी भाषा में उनका अनुवाद दिया गया है।

पाठकों की सेवा में निवेदन है कि भ्रम प्रमाद आदि-स्वभावसुलभ पुरुषदोषों को देखते हुए इस ग्रन्थ के लिखने और छपने में जो अशुद्धियाँ रह गई हों, महानुभाव विज्ञ पाठक उन्हें स्वयं सुधार कर पढ़ें और अनिवार्य्य अपराध समझ कर क्षमा करें।

आपका सेवक

रामचन्द्र



सूचना

सर्वसाधारण को सूचना दी जाती है कि यह ग्रन्थ केवल परोपकार-दृष्टि से छपवाया गया है, अतः इसका प्रचार अधिक तथा अनिवार्य्य हो इसलिये हर एक महाशय को इस पुस्तक का भाषान्तर में अनुवाद करने, या इसी भाषा में छापने, छपवाने का अधिकार है।

२५ या २५ से अधिक पुस्तकों के ग्राहकों से प्रति पुस्तक नौ आना मूल्य लिया जायगा। रेल-पार्सल द्वारा पुस्तक मंगवाने वालों को मनीआर्डर आये बिना ग्रन्थ नहीं भेजे जावेंगे और हम उसकी किसी प्रकार की हानि के उत्तरदायी न होंगे। ग्राहकों को ध्यान रखना चाहिए कि पार्सल वज़न के डाकखर्च से अतिरिक्त वी. पी. का कमीशन तथा रजिस्टरी खर्च १ प्रति से लेकर १० प्रति तक एक सा ही चार आना लगेगा।

पुस्तक मिलने का पता—

बाबू राधाकृष्ण शिवदत्तराय
चन्दू हज्जाम की गली
चौक,
बनारस शहर

लाला शिवशङ्करलाल
ठिकाना–
लाला रामनाथ गौरीशङ्कर
कटरा मदनगोपाल,
चान्दनी चौक, देहली

प्रकरण-सूची ।



अद्वैत-संग्रहः ।



श्री शङ्कराचार्य्येभ्यो नमः ।

"प्रातः स्मरणम्" ।

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसङ्घः ॥

हृदय में प्रकाशमान सत् चित् सुखरूप परमहंसों की गति (प्राप्य) जो तुरीय आत्मतत्त्व है उसको मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूं । जो नित्य है, स्वप्न जाग्रत् और सुषुप्ति को जानता है, वह निरवयव ब्रह्म मैं हूं, भूतोंका समूह मैं नहीं हूं ।

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।

यन्नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचु-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्रयम् ॥

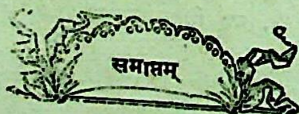
मन और वाणी के अगम्य को मैं प्रातःकाल भजता हूं, जिसके अनुग्रह से सब वाणियां प्रतीत होती हैं। वेदों ने जिसको "नेति नेति" वचनों से कहा है, उसे देव देव, अजन्मा, अविनाशी, और श्रेष्ठ कहते हैं।

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्त्तौ
रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै ॥

मायारूपी अन्धकार से परे, सूर्य के सदृश वर्ण वाले (अर्थात् प्रकाश स्वरूप), पुरुषोत्तम नाम वाले, पूर्ण, सनातन पद को मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूं, जिस सर्वरूप में सारा जगत्, रज्जु में सर्प की तरह भासा हुआ है।

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम् ।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ॥

तीनों लोकों के भूषणरूप इस पवित्र श्लोकत्रय को प्रातःकाल जो पढ़े, वह परम पद को प्राप्त होवे।



"हरिमीडे ।"

स्तोष्ये भक्त्या विष्णुमनादिं जगदादिं
यस्मिन्नेतत्संसृतिचक्रं भ्रमतीत्थम् ।
यस्मिन् दृष्टे नश्यति तत्संसृतिचक्रं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

अनादि जगदादि विष्णु की भक्तिपूर्वक स्तुति करता हूं, जिसमें यह संसारचक्र इस प्रकार घूम रहा है और जिसके दर्शन से यह संसारचक्र नष्ट हो जाता है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

यस्यैकांशादित्थमशेषं जगदेतत्
प्रादुर्भूतं येन पिनद्धं पुनरित्थम् ।
येन व्याप्तं येन विबुद्धं सुखदुःखै-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जिसके एक अंश से यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ, जिसने फिर इसे नियम में बांधा, जो इसमें व्याप्त है और जिसने जीवरूप होकर इसे सुख दुःखों से अनुभव किया, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं ॥

सर्वज्ञो यो यश्च हि सर्वस्सकलो यो
यश्चानन्दोनन्तगुणो यो गुणधामा ।
यश्चाव्यक्तो व्यक्तसमस्तः सदसद्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जो सर्वज्ञ, सर्व, सकल (कलासहित), आनन्द, अनन्त गुणों वाला, गुणधाम, अव्यक्त, व्यस्त (व्यष्टिरूप), समस्त (समष्टिरूप) और सद् असद्रूप है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

यस्मादन्यन्नास्त्यपि नैवं परमार्थं
दृश्यादन्यो निर्विषयज्ञानमयत्वात् ।
ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनोऽपि सदा ज्ञ-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जिससे अन्य और सत्य कुछ नहीं है, जो निर्विषयज्ञानमक होने से दृश्य से अन्य है, ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय से रहित होने पर भी जो सदा चैतन्य है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

आचार्येभ्यो लब्धसुसूक्ष्माच्युततत्त्वा
वैराग्येणाभ्यासबलाच्चैव द्राढिम्ना ।
भक्त्यैकाग्र्यध्यानपरा यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जिन्होंने अतिसूक्ष्म अच्युतरूप (निर्विकार) ब्रह्म को आचार्यों से प्राप्त किया है ऐसे पुरुष भक्ति से एकाग्रचित्त हो कर वैराग्य और अभ्यास के बल से, दृढतापूर्वक जिस

ईश को जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं ।

प्राणानायम्योमितिचित्तं हृदि रुध्वा
नान्यत्स्मृत्वा तत्पुनरत्रैव विलाप्य ।
क्षीणे चित्ते भादृशिरस्मीति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

प्राणों को वश में करके "ॐ" इस प्रकार चित्त को हृदय में रोक कर और अन्य वस्तु का स्मरण न करके, फिर उस ओंकाराकार-चित्तवृत्ति का उसी परमात्मा में लय करके, चित्त के क्षीण होने पर "मैं प्रकाशरूप द्रव्य हूं" इस प्रकार जिसको जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं ।

यं ब्रह्माख्यदेवमनन्यं परिपूर्णं
हृत्स्थं भक्तैर्लभ्यमजं सूक्ष्ममतर्क्यम् ।
ध्यात्वात्मस्थं ब्रह्मविदो यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

अनन्य, परिपूर्ण, हृदय में स्थित, भक्तों करके प्राप्य, अज, सूक्ष्म और अतर्क्य आत्मा में स्थित ब्रह्मनामक देव का ध्यान करके ब्रह्मवेत्ता लोग जिस ईशको जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं ।

मात्रातीतं स्वात्मविकाशात्मविबोधं
ज्ञेयातीतं ज्ञानमयं हृद्युपलभ्यम् ।
भावग्राह्यानन्दमनन्यं च विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

इन्द्रियों से अतीत, स्वात्मप्रकाश, आत्मज्ञान, ज्ञेयता से रहित, ज्ञानमय, हृदय में प्राप्य, भावरूप से ग्राह्य (अथवा भक्त्याग्राह्य) और आनन्दरूप जिस अनन्य की उपासना भक्त लोग करते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

यद्यद्वेद्यं वस्तु सतत्त्वं विषयाख्यं
तत्तद्ब्रह्मैवेति विदित्वा तदहं च ।
ध्यायन्त्येवं यं सनकाद्या मुनयोऽजं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जो जो वेद्य वस्तु (ज्ञान का विषय) सत्तायुक्त और विषयरूप है, वह वह ब्रह्म ही है ऐसा जानकर "वह मैं हूं" इस प्रकार जिस अज परमात्मा को सनकादि मुनि ध्याते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

यद्यद्वेद्यं तत्तदहं नेति विहाय
स्वात्मज्योतिर्ज्ञानमयानन्दमवाप्य ।
तस्मिन्नस्मीत्यात्मविदो यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जो जो वेद्य है सो सो मैं नहीं हूं, इस प्रकार विषय को छोड़ कर स्वात्मप्रकाश, ज्ञानमय और आनन्दस्वरूप को पाकर आत्मवेत्ता लोग ('मैं उस में हूं' = अर्थात् मैं उसमें जीवरूप से अध्यस्त हूं, इस प्रकार) जिस परमात्मा को जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकारके नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

हित्वा हित्वा दृश्यमशेषं सविकल्पं
मत्वा शिष्टं भादृशिमात्रं गगनाभम् ।
त्यक्त्वा देहं यं प्रविशन्त्यच्युतभक्ता-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

समस्त सविकल्प दृश्य को छोड़ छोड़ कर और शेष को प्रकाशस्वरूप आकाशतुल्य द्रष्टामात्र जान कर, देह छोड़ने के अनन्तर हरि के भक्त जिसमें प्रवेश कर जाते हैं, उस संसार-रूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

सर्वत्रास्ते सर्वशरीरी न च सर्वः
सर्वं वेत्त्येवेह न यं वेत्ति च सर्वः ।
सर्वत्रान्तर्यामितयेत्थं यमयन्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जो सब में है और सबका शरीरी है, किन्तु सब नहीं है अर्थात् सब से भिन्न है, सबको जानता है, जिसे कोई नहीं जानता और जो अन्तर्यामी होकर सबको नियम में रखता है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

सर्वं दृष्ट्वा स्वात्मनि युक्त्या जगदेतद्
दृष्ट्वात्मानं चैवमजं सर्वजनेषु ।
सर्वात्मैकोस्मीति विदुर्यं जनहृत्स्थं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

युक्ति से इस जगत् को अपने आत्मा में देख कर और सब जीवों में अजरूप आत्मा को देखकर, सर्वमनुष्यों के

हृदयमें स्थित सब का "आत्मा मैं एक हूं" इस प्रकार जिसे जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

सर्वत्रैकः पश्यति जिघ्रत्यथ भुङ्क्ते
स्प्रष्टा श्रोता बुध्यति चेत्याहुरिमं यम्।
साक्षी चास्ते कर्तृषु पश्यन्निति चान्ये
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

सब जगह एक ही देखता है, सूंघता है, खाता, छूता, सुनता और जानता हैं, और सब कर्त्ताओंमें देखता हुआ साक्षीरूप है, जिसे ऐसा जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

पश्यन् शृण्वन्नत्र विजानन् रसयन् सन्
जिघ्रन्बिभ्रद्देहमिमं जीवतयेत्थम्।
इत्यात्मानं यं विदुरीशं विषयज्ञं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

देखता हुआ, सुनता हुआ, जानता हुआ, रसका अनुभव करता हुआ और सूंघता हुआ जीवरूप से इस देहको धारण कर रहा है, इस प्रकार विषयों के जानने वाले जिस आत्मा को ईशरूप से जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकारके नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

जाग्रद् दृष्ट्वा स्थूलपदार्थानथ मायां
दृष्ट्वा स्वप्नेथापि सुषुप्तौ सुखनिद्राम्।
इत्यात्मानं वीक्ष्य मुदाऽऽस्ते च तुरीये
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जो जाग्रत् अवस्था में स्थूल पदार्थों को देखकर, स्वप्न में माया को देखकर, सुपुप्ति में सुखनिद्रा को अनुभव करके और तुरीय अवस्था में आत्मा का साक्षात्कार करके उदासीन हो जाता है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

पश्यन् शुद्धोप्यक्षर एको गुणभेदा-
न्नानाकारान् स्फाटिकवद्भाति विचित्रः।
भिन्नश्छिन्नश्चायमजः कर्मफलैर्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

जो शुद्ध, अक्षर और एक होता हुआ भी आत्मा गुण-भेद से अनेक प्रकार के आकारों (पदार्थों) को देखने के कारण स्फटिक के समान विचित्र प्रतीत होता है और जो अज होता हुआ कर्मफलों से भिन्न और छिन्न हुआ सा प्रतीत होता है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

ब्रह्मा विष्णू रुद्रहुताशौ रविचन्द्रा-
विन्द्रो वायुर्यज्ञ इतीत्थं परिकल्प्य।
एकं सन्तं यं बहुधाहुर्मतिभेदा-
त्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, वायु और यज्ञ इस प्रकार कल्पना करके, बुद्धियों के भिन्न होने के कारण, एक प्रकार के जिस परमात्मा को अनेक प्रकार का बताते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

सत्यं ज्ञानं शुद्धमनन्तं व्यतिरिक्तं
शान्तं गूढं निष्कलमानन्दमनन्यम्।
इत्याहादौ यं वरुणोऽसौ भृगवेऽजं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

आदि में जिस अज आत्मा का वरुण ने अपने पुत्र भृगु के प्रति इस प्रकार निरूपण किया है कि वह सत्य, ज्ञान, शुद्ध, अनन्त, व्यतिरिक्त (भिन्न), शान्त, गूढ़, निष्कल (निरवयव), आनन्द और अनन्य है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

कोशानेतान् पञ्च रसादीनतिहाय
ब्रह्मास्मीति स्वात्मनि निश्चित्य दृशिस्थः।
पित्रादिष्टो वेद भृगुर्यं यजुरन्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

तैत्तिरीय उपनिषद् के अन्त में पिता से उपदेश किया गया भृगु अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पाञ्चकोशों को छोड़ कर "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा अपने जिस आत्मा के विषयमें निश्चय करके, दृक् (आत्मा) में स्थित हो गया, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

येनाविष्टो यस्य च शक्त्या यदधीनः
क्षेत्रज्ञोयं कारयिता जन्तुषु कर्तुः।
कर्त्ता भोक्तात्मात्र हि चिच्छक्त्यधिरूढ-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जिससे आविष्ट हुआ, जिसकी शक्तिसे, जिसके अधीन यह क्षेत्रज्ञ प्राणियों से कार्य्यों को करवाने वाला है, जिसको करने वालों का करने वाला मानते हैं, जिसकी चैतन्य शक्ति से व्याप्त हुआ जीव अपने आपको कर्त्ता और भोक्ता मानता है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

सृष्ट्वा सर्वं स्वात्मतयैवेत्थमतर्क्यं
व्याप्याथान्तः कृत्स्नमिदं सृष्टमशेषम् ।
सच्च त्यच्चाभूत्परमात्मा स य एक-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

इस प्रकार अपने स्वरूप से ही अनिर्वचनीय सब संसार को रच कर स्वयं इस सम्पूर्ण रचे हुए संसार में व्याप्त होगया और फिर जो एक परमात्मा "सत्" (स्थूल) और "त्यद्" (सूक्ष्म) हो गया, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं

वेदान्तैश्चाध्यात्मिकशास्त्रैश्च पुराणैः
शास्त्रैश्चान्यैः सात्वततन्त्रैश्च यमीशम् ।
दृष्ट्वाऽथान्तश्चेतसि बुध्वा विविशुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

वेदान्तों, आध्यात्मिक (आत्म सम्बन्धी) शास्त्रों, पुराणों और नारद-पञ्चरात्रादि तन्त्रों से जिस ईश को अपने चित्त में जान कर जिसके अन्दर तत्त्ववित् प्रवेश कर गये, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

श्रद्धाभक्तिध्यानशमाद्यैर्यतमानै-
र्ज्ञातुं शक्यो देव इहैवाशु य ईशः ।
दुर्विज्ञेयो जन्मशतैश्चाऽपि विना तै-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जो देव इसी जन्म में श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और शमादि से यत्न करने वाले पुरुषों द्वारा तत्काल जाना जा सकता है और विना इनके सैकड़ों जन्मों से भी जो नहीं जाना जा सकता, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

यस्यातर्क्यं स्वात्मविभूतेः परमार्थं
सर्वं खल्वित्यत्र निरुक्तं श्रुतिविद्भिः ।
तज्जादित्वादब्धितरङ्गोद्भवभिन्नं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

वेदवेत्ता पुरुषों ने "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस श्रुति प्रकरण में, जिस अपनी आत्मविभूति का अतर्क्य (तर्क का अविषय) यथार्थ स्वरूप तज्जादि हेतुओं से समुद्रतरङ्ग आदि दृष्टान्त दे कर निरूपण किया है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलानिति शान्त उपासीत" इस श्रुति का यह अर्थ है कि, यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मरूप है, क्योंकि ब्रह्म से ही उत्पन्न होता है ब्रह्म में ही स्थित है और उसी में लीन होता है। जैसे तरङ्ग समुद्र से उत्पन्न होता है, उसी में स्थित रहता है और उसी में लीन हो जाता है अतः तरङ्ग समुद्र रूप ही है, इसी प्रकार इस संसार को ब्रह्मरूप जानकर शान्त होकर उसके स्वरूप का ध्यान करे।

दृष्ट्वा गीतास्वक्षरतत्त्वं विधिनाऽजं
भक्त्या गुर्व्या लभ्यहृदिस्थं दृशिमात्रम् ।
ध्यात्वा तस्मिन्नस्म्यहमित्यत्र विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

गीता से "अक्षरतत्त्व" को जान कर विधिपूर्वक अत्यन्त भक्ति से प्राप्य, हृदय में विद्यमान, दृङ्मात्र (ज्ञानमात्र) जिस अज का ध्यान करके "मैं उसमें हूं" अर्थात् मैं उसमें जीवरूपेण काल्पत हूं इस प्रकार जिसको जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकारके नाश करनेवाले हरिकी स्तुति करताहूं।

क्षेत्रज्ञत्वं प्राप्य विभुः पञ्चमुखैर्यो
भुङ्क्तेऽजस्रं भोग्यपदार्थान् प्रकृतिस्थः ।
क्षेत्रे क्षेत्रेऽप्स्विन्दुवदेको बहुधाऽऽस्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जो विभु (व्यापक) जीवभाव को प्राप्त होकर पाञ्च मुखों (ज्ञानइन्द्रियों) से निरन्तर प्रकृति में स्थित हुआ भोग्य पदार्थों को भोगता है और जो अज एक होता हुआ भी क्षेत्र क्षेत्र (प्रति देह) में जलचन्द्र के समान अनेकाकार प्रतीत हो रहा है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करेन वाले हरि की स्तुति करता हूं।

युक्त्यालोड्य व्यासवचांस्यत्र हि लभ्यः
क्षेत्रक्षेत्रज्ञान्तरविद्भिः पुरुषाख्यः ।
योऽहं सोऽसौ सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

क्षेत्र (देह) और क्षेत्रज्ञ (साक्षी) के भेद को जानने वाले पुरुष, व्यास के वचनों को युक्तिपूर्वक विचार कर, जिस पुरुष को इसी जन्म में पाते हैं और जिसको "यो हं सो सौ, सोऽस्म्यहमेव" (जो मैं हूं वह (मैं) भी वही (ब्रह्म) है, और जो वह है सो मैं हूं) इस प्रकार जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

एकीकृत्यानेकशरीरस्थमिमं ज्ञं
यं विज्ञायेहैव स एवाशु भवन्ति ।
यस्मिंल्लीना नेह पुनर्जन्म लभन्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

अनेक शरीरों में रहने वाले ज्ञानस्वरूप जिस आत्मा को एकरूपेण जानकर, तत्काल तद्रूप (वही) हो जाते हैं और जिसमें लीन होकर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होते, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

द्वंद्वैकत्वं यच्च मधुब्राह्मणवाक्यैः
कृत्वा शक्रोपासनमासाद्य विभूत्या ।
योऽसौ सोऽहं सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

वाक्, प्राण आदि द्वन्द्व (मिथुन) द्वारा उद्गीथोपासना से, और मधुब्राह्मण-वाक्यों से उपासना करके, इन्द्रोपासना से, विभूति=सम्पदादिरूप उपासनाओं से, अन्तःकरणशुद्धि पूर्वक "जो वह है सो मैं हूं, जो मैं हूं सो वह है" इस प्रकार

हरिमीडे ।

जिसे जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

योऽयं देहे चेष्टयितान्तःकरणस्थः
सूर्ये चासौ तापयिता सोऽस्म्यहमेव ।
इत्यात्मैक्योपासनया यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जो अन्तःकरण में स्थित होकर देहमें चेष्टा कराने वाला है और जो सूर्य में ताप देने वाला है, वह मैं ही हूं, इस प्रकार जिस परमात्मा को आत्मैक्यरूप उपासना से जानते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

विज्ञानांशो यस्य सतः शक्त्यधिरूढो
बुद्धिर्बुध्यत्यत्र बहिर्बोध्यपदार्थान् ।
नैवान्तःस्थं बुध्यति यं बोधयितारं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जिस सद्रूप आत्मा के विज्ञान का अंश, शक्ति (माया, अन्तःकरण) से युक्त हुआ महत्तत्त्व और बुद्धि कहलाता है, जो बुद्धि भीतर और बाहर के वेद्य पदार्थों को जानती हैं, और जिस अन्तःस्थित बोध कराने वाले आत्मा को बुद्धि नहीं जानती, उस संसाररूपी अन्धकारके नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

कोऽयं देहे देव इतीत्थं सुविचार्य
ज्ञाता श्रोतानन्दयिता चैष हि देवः ।

इत्यालोच्य ज्ञांश इहास्मीति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

शरीर में यह देव कौन है ? इस प्रकार विचार के अनन्तर इस देव को ज्ञाता, श्रोता, आनन्द के देने वाला समझ कर, वह ज्ञाता का अंश मैं ही हूं ऐसा जिसको समझते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं ।

को ह्येवान्यादात्मनि न स्यादयमेष
ह्येवानन्दः प्राणिति चापानिति चेति ।
इत्यस्तित्वं वक्त्युपपत्त्या श्रुतिरेषा
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

यदि यह आनन्दरूप आत्मा न हो तो कौन श्वासोच्छ्वास लेवे, यह आत्माही है जिसकी सत्ता से प्राण अपान समान व्यान और उदान पाञ्चों चलते हैं, इस प्रकार श्रुति जिसकी सत्ता को युक्तिपूर्वक कहती है, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं ।

प्राणो वाऽहं वाक्श्रवणादीनि मनो वा
बुद्धिर्वाऽहं व्यस्त उताहोऽपि समस्तः ।
इत्यालोच्य ज्ञप्तिरिहास्मीति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

प्राण, वाणी, श्रवणादि, मन या बुद्धिरूप मैं हूं ? मैं व्यस्त (अकेला) हूं या समस्त हूं ? इस प्रकार अनेक विचार करके अन्ततः मैं ज्ञानस्वरूप मात्र हूं ऐसा जिसे समझते हैं,

उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

शरीर इन्द्रिय आदि में से एक एक को व्यस्त कहते हैं और शरीरादि के संघात को समस्त कहते हैं।

नाहं प्राणो नैव शरीरं न मनोहं
नाहं बुद्धिर्नाहमहङ्कारधियौ च।
योऽत्र ज्ञांशः सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

न मैं प्राण हूं न मैं शरीर हूं, न मन न बुद्धि, और न अहंकार हूं, इन सब में जो ज्ञानांश है वही मैं हूं ऐसा जिसे समझते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

सत्तामात्रं केवलविज्ञानमजं सत्
सूक्ष्मं नित्यं तत्त्वमसीत्यात्मसुताय।
साम्नामन्ते प्राह पिता यं विभुमाद्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

छान्दोग्य उपनिषद् के अन्त में पिता (उद्दालक) अपने पुत्र (श्वेतकेतु) के प्रति "तत्त्वमसि" महावाक्य से जिस विभु और आद्य परमात्मा के विषय में यह कहता है कि वह सत्तामात्र है, केवल विज्ञानस्वरूप है, अज है, सत् है, सूक्ष्म और नित्य है, मैं उस संसाररूपी अन्धकारके नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

मूर्त्तामूर्त्ते पूर्वमपोह्याथ समाधौ
दृश्यं सर्वं नेति च नेतीति विहाय।

चैतन्यांशे स्वात्मनि सन्तं च विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

पहले मूर्त्त और अमूर्त्त का निरूपण करके पश्चात् सब दृश्य "कुछ नहीं है नहीं है" इस प्रकार खण्डन करके जिसको उपनिषद् चैतन्यांश स्वात्मा और सद्रूप कहते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

ओतं प्रोतं यत्र च सर्वं गगनान्तं
योऽस्थूलानण्वादिषु सिद्धोक्षरसंज्ञः ।
ज्ञाताऽतोन्यो नेत्युपलभ्यो न च वेद्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जिसमें आकाशपर्य्यन्त सब संसार ओत प्रोत है, जो अस्थूल, अनणु (सूक्ष्म नहीं है) आदि प्रकरण में "अक्षर" नाम से प्रसिद्ध है, जिससे भिन्न और कोई ज्ञाता नहीं है और जो वेद्य नहीं है, इस प्रकार जिसकी उपलब्धि होती है, उस संसाररूपी अन्धकार को नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

तावत्सर्वं सत्यमिवाभाति यदेत-
द्यावत्सोऽस्मीत्यात्मनि यो ज्ञो नहि दृष्टः ।
दृष्टे तस्मिन् सर्वमसत्यं भवतीदं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

यह सब संसार तभी तक सत्य सा प्रतीत होता है जब तक कि "वह मैं हूं" इस प्रकार अपने मन में ज्ञाता को नहीं देखा, और जिसके साक्षात्कार होने पर यह सब संसार असत्य

कम्मादि को धरते तो कृ... मानसों के २॥
सुबराबर... ब्रह्माण्ड ... काया पाये जा सब...

... माय जा ...

हो जाता है, उस संसाररूपी अन्धकार को नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

रागामुक्तं लोहयुतं हेम यथाग्नौ
योगाष्टाङ्गैरुज्ज्वलितज्ञानमयाग्नौ ।
दग्ध्वात्मानं ज्ञं परिशिष्टं च विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जिस प्रकार लोहे से युक्त स्वर्ण अग्नि में शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार राग से युक्त जिस आत्मा को योग के आठ अङ्गों से प्रज्ज्वलित ज्ञानमय अग्नि में दाह करके शुद्ध ज्ञान-रूप से जान लेते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं।

यं विज्ञानज्योतिपमाद्यं सुविभान्तं
हृद्यर्केन्द्वग्न्योकसमीड्यं तडिदाभम् ।
भक्त्याराध्येहैव विशन्त्यात्मनि सन्तं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

जिस विज्ञानमय, ज्योतिःस्वरूप, हृदय में प्रकाशमान, आद्य, सुप्रकाशित, सूर्य चन्द्र में विद्यमान और बिजली के समान आत्मा का भक्ति से आराधन करके उपासक इसी जन्म में अपने स्वरूप में प्रवेश कर जाते हैं, उस संसाररूपी अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

पायाद्भक्तं स्वात्मनि सन्तं पुरुषं यो
भक्त्या स्तौतीत्याङ्गिरसं विष्णुरिमं माम् ।
इत्यात्मानं स्वात्मनि संहृत्य सदैक-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

ब्रह्म पुन्नामय पूजा भगवान व्यापके ...

— जो पुरुष भक्तिपूर्वक अपने अन्तःकरण में विद्यमान पुरुष की स्तुति करता है, उस मुझ भक्त वैष्णव की विष्णु रक्षा करे, मैं अपने आत्मा में आत्मा (मन) का संहार करके जो सदा एक है, उस संसाररूप अन्धकार के नाश करने वाले हरिकी स्तुति करता हूं।

इत्थं स्तोत्रम्भक्तजनेड्यम्भवतीति-
ध्वान्तार्काभं भगवत्पादीयमिदं यः।
विष्णोर्लोकं पठति शृणोति व्रजति ज्ञो
ज्ञानं ज्ञेयं स्वात्मनि चाप्नोति मनुष्यः॥

इस प्रकार भगवद्विषयक यह स्तोत्र भक्तजनों से स्तुति करने योग्य है और अन्धकार के लिये सूर्य के समान अज्ञान का नाशक है, इसको जो बुद्धिमान् पढ़ता है, सुनता है वह विष्णुलोक को प्राप्त होता है और अपने अन्तःकरण में ज्ञान और ज्ञेय को पाता है।

समाप्तम्।

" साधन-पञ्चकम् "

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम् ।
पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोनुसन्धीयता-
मात्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम् ॥

नित्य वेद को पढ़ो, उसमें कहे गये कर्म का अच्छे प्रकार अनुष्ठान करो, कर्मफल को भगवदर्पण कर के इसी कर्मानुष्ठान से ईश्वर की पूजा करो, काम्य-कर्मों की इच्छा का त्याग करो, पापसमूह को दूर करो, संसारसुख में दोषका चिन्तन करो, आत्मविषयक इच्छा को दृढ़ करो और अपने घरसे झटपट निकल जाओ ।

सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढा धीयतां
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु सन्त्यज्यताम् ।
सद्विद्वानुपसर्प्यतां प्रतिदिनं तत्पादुके सेव्यतां
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम् ॥

सत् पुरुषों का सङ्ग करो, भगवान् में दृढ़ भक्ति धारण करो, शान्ति आदि को दृढ़तापूर्वक बढ़ाओ, कर्मको झटपट छोड़ दो, श्रेष्ठ विद्वान् के पास जाओ, प्रतिदिन उसके चरणों की सेवा करो, एक अक्षर ब्रह्म की याच्ञा करो और वेदान्त-वाक्यों का श्रवण करो ।

वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षः समाश्रीयतां
दुस्तर्कात्सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोनुसन्धीयताम् ।
ब्रह्मैवास्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यतां
देहे हंमतिरुज्झ्यतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम् ॥

महावाक्यों के अर्थका विचार करो, वेदान्तपक्ष का आश्रय लो, कुतर्क से बचो, श्रुतिसम्मत तर्क से विचार करो, दिन रात " मैं ब्रह्म ही हूं " ऐसा विचार करो, अहंकार छोड़ दो, देह में 'अहं बुद्धि' का त्याग करदो और विद्वान लोगों के साथ विवाद मत करो।

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन सन्तुष्यताम् ।
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यता-
मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम् ॥

भूखरूपी रोग की चिकित्सा करो, प्रतिदिन भिक्षारूपी औषध खाओ, स्वादु अन्न मत मांगो, भाग्य से जो प्राप्त हो उसी में सन्तुष्ट रहो, शीत उष्ण का सहन करो, व्यर्थ बातोंका उच्चारण मत करो, उदासीनता की इच्छा करो, लोगों पर कृपा और निष्ठुरता (कठोरता) का त्याग करो।

मुमुक्षु पुरुषों के लिये कृपा आदि दैवी-सम्पदा का परित्याग भी निःश्रेयस्कर है।

एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम् ।
प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चिति बलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां
प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम् ॥

एकान्त में सुखपूर्वक बैठो, परमात्मा में चित्त को समाहित करो, पूर्ण आत्मा का साक्षात्कार करो, इस जगत् को उस से बाधित समझो, आत्मा में ज्ञानबल से सञ्चित कर्मों को लीन करो, भावी कर्मों से सम्बन्ध मत करो, प्रारब्ध का इस जन्म में भोग करलो और उसके पश्चात् परब्रह्मरूप से स्थिर हो जाओ।

यः श्लोकपञ्चकमिदं पठते मनुष्यः
सञ्चिन्तयत्यनुदिनं स्थिरतामुपेत्य।
तस्याशु संसृतिदवानलतीव्रघोर-
तापः प्रशान्तिमुपयाति चितिप्रसादात् ॥

जो पुरुष इन पाञ्च श्लोकों को पढ़ता है और प्रतिदिन शान्तिपूर्वक विचार करता है उसका संसाररूप-दावानल का तीव्र और घोरताप चेतन की कृपा से झटपट शान्त हो जाता है।

समाप्तम्

" मोह-मुद्गरम् । "

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु तनुबुद्धे मनसि वितृष्णाम् ।
यल्लभसे निजकर्म्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥

हे मूर्ख ! धन की प्राप्ति की इच्छा को त्याग, और हे अल्प बुद्धिवाले ! मन में लालच मत कर, जो कुछ अपने कर्मों के अनुसार धन मिले उसी से चित्त को प्रसन्न रख ।

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः ॥

धन को सदा अनर्थ समझ, सचमुच इस धन से सुख का लेश भी नहीं है, धनवालों को पुत्र से भी सदा भय रहता है, यही नीति सब पदार्थों के विषय में कही गई है ।

यावद्वित्तोपार्ज्जनशक्त स्तावन्निजपरिवारो रक्तः ।
तदनु च जरया जर्जरदेहे वार्त्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे ॥

पुरुष जब तक धन के कमाने में समर्थ होता है तभी तक उसका परिवार उसमें प्रीति रखता है, उसके पश्चात् बुढ़ापे से देहके जरजर होजाने पर घर में कोई भी उसकी बात नहीं पूछता ।

का तव कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः
कस्य त्वं वा कुत आयात स्तत्त्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः ॥

कौन तेरी स्त्री, कौन तेरा पुत्र, यह संसार अत्यन्त विचित्र

है, किसका तू है और कहांसे आया है, हे भाई ! इस तत्त्व का तू चिन्तन कर।

माकुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात् कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं प्रविशाऽऽशु विदित्वा ॥

धन, जन और यौवन का अहङ्कार मत कर, निमेषमात्र में काल सब को हर लेता है, इस समस्त मायामय संसार को छोड़ कर ज्ञान प्राप्त करके झटपट ब्रह्म-पद में प्रवेश कर जा।

नलिनीदलगतजलवत्तरलं तद्वज्जीवनमतिशयचपलम् ।
क्षणमपि सज्जनसङ्गतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका ॥

कमलिनी के पत्र पर पड़े हुए जलके समान जीवन अत्यन्त चपल है, क्षण भरके लिये सज्जन पुरुषों की एक सङ्गति ही संसारसमुद्र से पार उतरने के लिये नौका है।

कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वात्मानं पश्यत कोऽहम् ।
आत्मज्ञानविहीना मूढाः पच्यन्ते ते नरकनिगूढाः ॥

काम क्रोध लोभ और मोहको छोड़ कर आत्मा को जानो कि मैं कौन हूं, आत्मज्ञान से रहित मूर्ख पुरुष नरक में पड़े पड़े जलते हैं।

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दन्तविहीनं जातं तुण्डम् ।
करधृतकम्पितशोभितदण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम् ॥

शरीर गल गया, सिर (बाल) श्वेत हो गया, मुँह दांतों से रहित हो गया, हाथ में लिया हुआ कांपता हुआ दण्ड शोभा को प्राप्त हो रहा है तो भी आशा के पिण्ड (शरीर) को नहीं छोड़ता, अथवा आशा उसका पिण्ड नहीं छोड़ती।

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः ।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ॥

देव-मन्दिर या पेड़ की जड़ में निवास, भूमि ही शय्या मृग-चर्म ही कपड़ा, और सर्व प्रकार के धन धान्यादि का भोगों का त्याग, इस प्रकार का विराग किसे सुख नहीं देता ?

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम् ।

शत्रु, मित्र, पुत्र और बन्धु से लड़ाई और मेल का यत्न मत कर, यदि विष्णु-पद को शीघ्रता से चाहता है तो सर्वत्र समचित्त हो ।

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः
सर्वं पश्य हि मायाजालं सर्वत्रोत्सृज भेदज्ञानम् ॥

तुझ में, मुझ में और अन्य में एक ही विष्णु है, असहनशील होकर तू मुझ पर व्यर्थ क्रोध मत कर, सब को मायाजाल जान, सर्वत्र भेदज्ञान को छोड़ ।

बालस्तावत् क्रीडासक्त स्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ॥

बच्चा खेल में आसक्त है, युवा पुरुष युवती में रक्त है, बूढ़ा चिन्ता में मग्न है, परन्तु परब्रह्म में कोई भी लगा हुआ नहीं है ।

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायु स्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ॥

दिन और रात, सायं और प्रातः, शिशिर और वसन्त फिर फिर आये और गये, काल खेल रहा है, आयु बीत रही है, तो भी आशा की हवा नहीं छोड़ती ।

यावज्जननं तावन्मरणं तावज्जननीजठरे शयनम्।
इति संसारे स्फुटतरदोषः कथमिह मानव तव सन्तोषः॥

जब जब जन्म है तब तब मरण है और तभी तभी माता के गर्भ में आना है, इस प्रकार संसारमें बहुत ही प्रत्यक्षरूप से दोष हैं, हे मानव! फिर क्यों कर तुझे इसमें सन्तोष है।

अष्टकुलाचलसप्तसमुद्रा ब्रह्मपुरन्दरदिनकररुद्राः।
न त्वं नाहं नायं लोक स्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः॥

आठ कुल-पर्वत (हिमालय विन्ध्य आदि) और सात समुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, रुद्र नहीं है, न तू है न मैं हूं, और न यह लोक है, फिर भी किस लिये शोक करता है ?

शुष्के नीरे कः कासारः वित्ते क्षीणे कः परिवारः।
वयसि गते कः कामविकारः ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः॥

सूखे जलाशय में कमल कैसा? धन क्षीण हुए पर परिवार कैसा? आयु बीत जाने पर काम-विकार कैसा? ब्रह्मज्ञान के अनन्तर संसार कैसा?

षोडशपज्झटिकाभिरशेषः शिष्याणां कथितोऽभ्युपदेशः।
येषां नैष करोति विवेकं तेषां कः कुरुतामतिरकम्॥

सोलह "पज्झटिका" से शिष्योंके प्रति सम्पूर्ण उपदेश कह दिया गया, जिनको इस उपदेश से विवेक नहीं होता उनको और किससे ज्ञान होगा?

"पज्झटिका" प्रस्तुत छन्दका नाम है।

* समाप्तम् *

"भर्तृहरिः।"

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

जिन्हें न विद्या है, न जिन्होंने तप किया, और न दान ही दिया तथा जिन्हें न ज्ञान है, न शील है, न गुण है और न धर्म ही है, वे नरलोक (जन-समाज) में पृथिवी पर बोझ हैं और मनुष्य के रूप में पशु के समान फिरते हैं।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः॥

विद्या ही मनुष्य का सुन्दर रूप है तथा छिपा हुआ सुरक्षित धन है, विद्या भोगों के सम्पादन करने वाली है, यश और सुख को देने वाली है, विद्या गुरुओं का गुरु है, परदेश गमन में विद्या बन्धुजन है, विद्या परादेवता है, विद्या ही राजाओं से सुपूजित है, धन नहीं, अतः विद्या से शून्य पुरुष पशु है।

वाञ्छा सज्जनसङ्गतौ परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो महद्भ्यो नमः॥

सज्जनों की सङ्गति की इच्छा, दूसरे के गुणों पर प्रेम, गुरु (माता पिता आचार्य्य) के सामने नम्रता, विद्या में व्यसन, अपनी नारी से प्रीति, लोकनिन्दा का भय, महादेव में भक्ति, मनके वशीकरण में सामर्थ्य और दुष्टों की सङ्गति का त्याग, ये निर्मलगुण जिन पुरुषों में वास करते हैं उनको नमस्कार है।

कान्ताकटाक्षविशिखा न लुनन्ति यस्य
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः॥

स्त्री के कटाक्षरूपी तीर जिसके चित्त को छेदते नहीं, क्रोधाग्नि का ताप भी जिसको जलाता नहीं, लोभ के फाँसों से नाना प्रकार के विषय जिसके चित्तको दुःखित नहीं करते, ऐसा धीर पुरुष इस सम्पूर्ण त्रिलोकीको जय कर लेता है।

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्रज्ञेतरैः सङ्गतिः
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः।
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा कानुव्रता किं धनं
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम्॥

लाभ क्या है ? श्रेष्ठ गुणवाले पुरुषों की सङ्गति, दुःखका कारण क्या है ? मूर्खों की सङ्गति, हानि क्या है ? समय पर चूकना, चतुराई क्या है ? धर्म तत्त्व में प्रीति, शूर कौन है ? जिसने इन्द्रियों पर विजय पाया, प्रियतमा कौन है ? जो पतिव्रता हो, धन क्या है ? विद्या ही धन है, सुख क्या है ? परदेश गमन न करना, राज्य क्या है ? आज्ञा की सफलता।

आवर्त्तं संशयानामविनयभुवनं पत्तनं साहसानां
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।
स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डं
स्त्रीयन्त्रं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिलोकस्य पाशम् ॥

सन्देहों का भँवर, अशिष्टता का घर, अविचारित कर्मों की नगरी, दोषों को एकत्र करने का हेतु, सैकड़ों कपटों की मूर्ति, अविश्वासों का (खेत उत्पत्तिस्थान), स्वर्गद्वार का विघ्न, नरकपुरी का द्वारा, सब छल कपटों की पिटारी, विषरूप अमृतमय (देखने मात्र को अमृत प्रतीत होने वाला वस्तुतः विष) और प्राणियों का मोह पाश, यह स्त्री-यन्त्र किसने बनाया ?

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंचारजनितं
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदिति ।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते ॥

जब कामरूप तिमिर के संस्कारों से उत्पन्न हुआ अज्ञान विद्यमान था तब यह समस्त जगत् नारीमय दिखाई देता था और अब हमारी दृष्टि आत्मानात्म-विचार रूपी अँजन के आँजने से ब्रह्मीभूत होकर तीनों लोकों को ब्रह्म ही देखरही है।

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ।
मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दति योगीश्वराः ॥

आशा नाम वाली नदी है, मनोरथरूप जिसमें जल है, तृष्णारूपी तरङ्गों से जो क्षुब्ध है, जिसमें "राग" ही ग्राह है, कुतर्क ही जिसमें पक्षी हैं, जो धैर्यरूपी वृक्ष को उखाड़ने वाली है, जो मोह के भँवरों के कारण दुस्तर है, जो बहुत गहरी है, चिन्ता ही जिसका बड़ा ऊँचा ऊंचा किनारा है, ऐसी इस आशा-नामिका नदी को पार कर के शुद्धान्तःकरण योगीश्वर लोग ही आनन्द करते हैं।

अजानन् माहात्म्यं पततु शलभस्तीव्रदहने
स मीनोऽप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नातु पिशितम् ।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिला-
न्न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥

पतङ्ग अग्निके महात्म्य को न जानता हुआ तीव्र आग में पड़े, मछली भी अज्ञान से काण्टे से युक्त मांस को खाय, किन्तु हम यह जानते हुए भी कि कामनाएँ विपत्तियों के जाल से लिपटी हुई हैं, उन्हें नहीं छोड़ते, अहह ! मोह की महिमा कैसी प्रबल है !

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

भोग में रोग का भय है, कुल में पतन का भय है, धनमें राजा से भय है, मान में दीनता का भय है, बल में शत्रु का भय है, रूप में बुढ़ापे का भय है, शास्त्र में वाद का भय है, गुण में खलों से भय है, काय के विषय में यम का भय है, इस प्रकार सब वस्तुएँ भय से युक्त हैं, भूलोक में मनुष्यों के लिये वैराग्य ही अभय है।

भोगा भंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्येह कृते परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः।
आशापाशशतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां
कामोत्पत्तिवशात्स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः॥

ऐ लोगो! अनेक प्रकार के भोग, भङ्गुर-वृत्ति (विना
स्वभाव) हैं, और इन्हीं से यह संसार है, तो फिर किस
कारण संसारचक्र में भ्रमते हो? इनके लिये व्यापारों
बन्द करो, और यदि हमारा वचन श्रद्धास्पद है तो सैक
आशा के फाँसों की उपशान्ति से शुद्ध हुए चित्तको, काम
त्पत्ति के हरने हारे अपने धाम (स्वप्रकाश स्वात्मा)
समाहित करो।

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थगहनादायासकादाश्रय
श्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापारदक्षं क्षणात्।
स्वात्मीभावमुपेहि संत्यज निजां कल्लोललोलां गतिं
मा भूयो भज भङ्गुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना॥

हे चित्त! इस दुःखदायी इन्द्रिय-विषयरूपी घने वन
निवृत हो और सब दुःखोंके नाशकरणरूप व्यापार में चतु
कल्याणमार्ग को शीघ्र ही आश्रयण कर, शान्तभाव को प्रा
हो, अपनी तरङ्ग समान चञ्चल गति को छोड़ दे, नष्ट होने
वाली संसार की प्रीति को फिर स्वीकार मत कर और
चित्त! अब तू प्रसन्न होजा (शुद्ध होजा)।

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः।

मुक्त्वैकं भवदुःखभाररचनाविध्वंसकालानलं
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥

वेद, स्मृति, पुराणों के पठन और महाविस्तर शास्त्रों से क्या लाभ? और जिनका फल स्वर्गरूपी ग्राम की कुटी का निवास है ऐसे कर्म क्रिया के झगड़ों से भी क्या लाभ? जो उपाय संसाररूप बन्धन की रचना को नाश करने में कालाग्नि के समान है उस स्वात्मानन्दरूप स्थान में प्रवेश करने के उपाय को छोड़ कर शेष सब शास्त्रादि वणिक्वृत्तियाँ हैं।

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं
विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकचपलं तल्पमस्वल्पमुर्वी।
एषां निःसङ्गताङ्गीकरणपरिणतस्वात्मसन्तोषिणस्ते
धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति ॥

जिनका हाथ ही पवित्र पात्र है, भ्रमण करके मिला हुआ भिक्षा अन्न ही अक्षय्य अन्न है, आशा (दिशा) ही जिनके लिये विस्तीर्ण चपल वस्त्र है, पृथिवी ही जिन्हें बड़ा भारी बिछौना है, निःसङ्गता ही जिनकी अन्तःकरण की वृत्ति है, ऐसे स्वात्म-सन्तोषी धन्य हैं, और जिन्होंने याचनारूप दीनता के दुःखों के समूह को त्याग दिया है वे लोग कर्मजन्य बन्धनों को काट डालते हैं।

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने
तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथाः।
भोगः कोपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते
यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ॥

जिस परब्रह्मज्ञान के सामने त्रिलोकी का राज्य भी फीका है उस महाराज्य को पाकर आसन वस्त्र और मान से घटि भोगों में प्रीति मत कर, वह एक ही लोकोत्तर (श्रेष्ठ) नित्य प्राप्त (स्वात्मसाक्षात्काररूप) भोग वृद्धि को प्राप्त हो रहा कि जिस भोग के स्वाद के सामने त्रैलोक्य-राज्य आदि विषय भी नीरस हो जाते हैं।

समाप्तम्।

ॐ

"श्रीमद्भागवत एकादशोऽध्यायः."

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥

ईश्वर से विमुख पुरुष को ईश्वर की माया से द्वैताभिनिवेश (द्वैत में आग्रह बुद्धि) के कारण भय, विपरीत बुद्धि और आत्म-विस्मृति होती है, अतः गुरु और ईश्वर में आत्म-बुद्धि करके बुद्धिमान् एक-भक्ति से ईश्वर का भजन करे।

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो
ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा।
तत्कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो
बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥

द्वैत न होता हुआ भी भासता है जैसे ध्याता की बुद्धि (मन) से स्वप्न और मनोरथ भासते हैं, अतः पण्डित पुरुष यदि उस कर्म-विषयक संकल्प विकल्प करनेवाले मन का निरोध करे तो अभय हो जावे।

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः।
संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥

जो पुरुष निरन्तर हरिस्मरण के कारण, देह इन्द्रिय प्राण मन और बुद्धि इन पाँचों के जन्म मरण भूक प्यास भय और दुःख आदि संसार-धर्मों से विमोह को प्राप्त नहीं होता वह भगवद्-भक्तों में प्रधान है।

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥

जिसके चित्त में काम और कर्म तथा वासनाओं की उत्पत्ति नहीं होती, जिसका आधार केवल वासुदेव है, वह भगवद्-भक्तों में उत्तम है।

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥

जिस पुरुष का इस देह में जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम और जाति के कारण "अहंभाव" नहीं होता, वह हरि का प्यारा है।

नित्यार्त्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ।
गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥

नित्य दुःखों के देनेवाले, दुर्लभ तथा अपनी मृत्यु के कारण धन से संग्रह किये हुए क्षणिक घर, सन्तान, बन्धु और पशुओं से कैसी प्रीति ? अर्थात् ये प्रीति के योग्य नहीं हैं।

स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ।
देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन
संजीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ॥



जो इस संसार की स्थिति उत्पत्ति नाश का कारण है और स्वयं अजन्मा है, जो स्वप्न जागर और सुषुप्ति में सद्रूप (नित्य) तथा भीतर और बाहर विराजमान है, देह इन्द्रिय प्राण और मन जिससे जीवन को पाकर अपने अपने कर्मों में समर्थ होते हैं, हे नरेन्द्र ! वही परमात्मा है ।

यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ।
नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥

मन, वाणी, आँखों और कानों आदि इन्द्रियों से जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है उसे नाशवान् मायारूप और मनोरथ-मात्र जान, या माया और मन का विकार-मात्र जान ।

बुध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ।
लक्ष्यते स्थूलमतिभि रात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥

मोटी बुद्धिवाले पुरुषों को आत्मा देहादि व्यक्तियों में स्थित सा और देहादि में प्रविष्ट हुआ सा तथा स्वगत भेद वाला जान पड़ता है, जैसे सूर्य्य जलादि में प्रतिबिम्बित होकर एक होते हुए भी अनेक दिखाई देता है ।

जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गा—
न्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षतया वितन्वन् ।
स्वान्ते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः
सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥

जिस देह को, उसी (देह) की प्रीति पूर्ण करने की कामना से, स्त्री पुत्र धन पशु भृत्य घर तथा बन्धुवर्गों की वृद्धि द्वारा पुष्ट करते हैं, वही देह वृक्ष के समान मरणकाल में एक बार

ही श्रम से क्षीणशक्ति होकर अपने बीज (पुत्र आदि) को उत्पन्न करके नष्ट हो जाता है ।

बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ।
गुणस्य मायामूलत्वा न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥

बद्ध और मुक्त ये नाम गुण के सम्बन्ध से हैं, वस्तुतः मेरे नहीं, और गुणों का मूल माया है, अतः न मेरा मोक्ष है न बन्धन ।

शोकमोहौ सुखं दुःखं देहोत्पत्तिश्च मायया ।
स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥

शोक मोह सुख दुःख और देह की उत्पत्ति तथा विनाश मायाकृत हैं । जैसे आत्मा की माया से स्वप्न होता है ऐसे ही संसार है वास्तविक (सत्य) नहीं ।

एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ।
बन्धोऽस्याविद्ययाऽनादि र्विद्यया च तथेतरः ॥

हे महामते ! मेरे एक अंशरूप जीव का ही अविद्या से अनादि बन्ध है और विद्या से मोक्ष है ।

आत्मानमन्यं च स वेद विद्वा-
नपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ।
योऽविद्यया युक्स तु नित्यबद्धो
विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥

विद्वान् अपने आत्मा को देहादि से अन्य समझता है, अतः वह अपिप्पलाद (कर्म फल को न भोगने वाला) है

कर्म फल का भोक्ता नहीं। जो अविद्या से युक्त है वह नित्य बद्ध है और जो ज्ञानमय है वह नित्य मुक्त है।

देहस्थोपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद्यथोत्थितः।
अदेहस्थोपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग् यथा॥

स्वप्न से उठे हुए पुरुष के समान विद्वान्, देह में स्थित होता हुआ भी देह में स्थित नहीं है, और कुमति स्वप्नद्रष्टा के समान देह में स्थित न होता हुआ भी देह में स्थित है।

वैशारद्येक्षयाऽसङ्ग- शितया छिन्नसंशयः।
प्रतिबुद्ध इव स्वप्ना न्नानात्वाद्विनिवर्तते॥

असङ्ग से तीक्ष्ण की गई विवेकमयी चक्षु से छिन्न-संशय पुरुष स्वप्न से प्रतिबुद्ध (जागे हुए) मनुष्य के समान द्वैतभाव से निवृत्त हो जाता है।

न कुर्यान्न वदेत्किञ्चि न्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा।
आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः॥

न कुछ करे, न कुछ बोले, न बुरे भले का चिन्तन करे, इस वृत्ति से आत्माराम मुनि मूर्ख के सदृश विचरे।

कृपालुरकृतद्रोह स्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥
कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः॥
अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः॥

आज्ञायैवं गुणान्दोषा न्मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान्सन्त्यज्य यः सर्वा न्मां भजेत स सत्तमः॥

सब देहधारियों में दयालु, अद्रोही, तितिक्षु, बलवाला, पवित्र मनवाला, समदर्शी और सब पर उपकार करनेवाला, कामनाओं से अहतबुद्धि (जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं हुई हो उसे अहतबुद्धि कहते हैं), दान्त (जितेन्द्रिय), मृदु, शुचि, धन न रखने वाला, निष्काम, परिमित खानेवाला, शान्त, स्थिर, मेरी शरण ही में रहनेवाला और मनन-शील, प्रमाद रहित, गम्भीर हृदयवाला, धैर्यशाली। भूक, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु इन छः गुणों को जीता हुआ, निर्मान, मान देनेवाला, समर्थ, मैत्र, करुणावान् और ज्ञानवान्, इस प्रकार मुझ से कहे गये गुणों तथा दोषों को जान कर और अपने सब धर्मों को छोड़ कर जो मेरी भक्ति करता है वह अत्यन्त श्रेष्ठ साधु है।

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥

योग, सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तप, त्याग, इष्ट, आपूर्त्त, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नियम और यम—ये सबके सब मुझे ऐसा वस में नहीं करते, जैसा सब सङ्गों को नाश करने वाला सत्सङ्ग वश में करता है।

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः।
जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो महात्मनः॥

हे प्रजाओ ! गुण चित्त में प्रवेश कर जाते हैं और चित्त गुणों में प्रवेश कर जाता है, गुण और चित्त ये दोनों मिलकर जीवका देह (भोगायतन) हैं (और यह दोनों अध्यस्त उपाधि-रूप हैं, जीव का वास्तविक स्वरूप नहीं), जीव तो मदात्मक (ब्रह्मस्वरूप) है ।

जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ।
तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः॥

जागर स्वप्न और सुषुप्ति ये गुणकृत बुद्धि की ही वृत्तियाँ हैं, इन बुद्धिवृत्तियों से विलक्षण जीव इनका साक्षी विनिश्चित (ठीक ठीक) है, इसमें कोई संशय नहीं ।

अहङ्कारकृतं बन्ध मात्मनोऽर्थविपर्ययम् ।
विद्वान्निर्विद्य संसार चिन्तां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥

अहङ्कार (देहादि में "अहं" अभिमान) के कारण आत्मा का (अपना) बन्ध है और यह बन्ध अनर्थ का हेतु है, अतः ऐसे अनर्थ-हेतु बन्ध को जान कर इसमें वैराग्य करे और मुझ में ध्यान लगा कर संसार (विषयों की चिन्ता) को छोड़ देवे ।

यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्त्तेत युक्तिभिः ।
जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥

जब तक पुरुष की नानार्थ बुद्धि (देहादि नाना अर्थों में "अहं" इत्याकारक बुद्धि) गुरु से उपदेश की गई शास्त्रीय युक्तियों से निवृत नहीं होती तब तक वह अज्ञ पुरुष जागता हुआ भी स्वप्न देखनेवालों के समान है, जैसे स्वप्न में जागरण होता है ।

असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा ।
गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥

आत्मा से भिन्न देव मनुष्यादि पदार्थों के न होने के कारण उनसे होने वाला वर्णाश्रमादि भेद, गतियां (दक्षि उत्तरायणादि मार्ग) और इन गतियों के हेतु (कर्म), ये स इस आत्मा में झूठे अर्थात् अविद्या से कल्पित हैं, जैसे स्वप्न द्रष्टा के गति आदि कर्म मिथ्या होते हैं ।

यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान्
भुङ्क्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् ।
स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः
स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिन्द्रियेशः ॥

त्रिगुणवृत्ति-दृक् (जागरण आदि अवस्थात्रय का द्रष्टा) इन्द्रियों का स्वामी जो जागरण समय में क्षण क्षण में ना होने वाले (बाल्य यौवनादि अथवा विनाश वैरस्यादि ध वाले) बाह्य पदार्थों को सब इन्द्रियों से भोगता है, और स्वप्नावस्था में जागरावस्था के पदार्थों के समान हृदयगत वासनामय विषयों को भोगता है, और फिर सुषुप्ति अव स्था में उन सब विषयों को संस्कार-शेष बुद्धि में लीन कर लेता है वह स्मरण और अन्वय रूप हेतु से एक है ।

एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था
मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ।
संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्ण-
ज्ञानासिना भजत माऽखिलसंशयाधिम् ॥

इस प्रकार विचार कर ये तीनों अवस्थाएं गुणकृत (सत्त्व रजस्तम आदि गुणों के कारण होने वालीं) मनकी हैं, और मेरी माया से मेरे अंशभूत जीव में कल्पित हैं, वस्तुतः ये अवस्थाएं आत्मा की नहीं—इस प्रकार आत्मतत्त्व का निश्चय करके तुम लोग अनुमान, सद् युक्तियों, सत्पुरुषों के वचनों तथा श्रुतियों द्वारा तीक्ष्ण ज्ञान—खड्ग से मनोगत सब संशयों के मूल (अज्ञान) का छेदन करके मुझे भजो ।

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं
दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ।
विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया
स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥

पुरुष इस जगत् को भ्रमरूप समझे, क्योंकि यह मन का विलासमात्र है, और दृष्ट नष्ट है, तथा अतिचञ्चल अलात-चक्र के और स्वप्न के समान है, अतः एक विज्ञान ही अनेक प्रकार से प्रतीत हो रहा है, तीन प्रकार (देहेन्द्रियान्तःकरण-रूप) का जो यह गुण-रचना कृत भेद है वह माया और स्वप्नमात्र है।

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्ण-
स्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः ।
संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तु बुद्ध्या
त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात् ॥

अतः मायात्मक त्रिविध विकल्प से दृष्टि हटाकर (वैराग्य करके) तृष्णारहित (निराकाङ्क्ष) तथा तूष्णीम् हो रहे (अर्थात् मन वाणी तथा शरीर से कोई व्यापार न करे) और निज सुख

का ही अनुभव करता रहे, यद्यपि कभी कभी आवश्यक भोजन आदि समय में यह जगत् दिखाई सा देता है तथापि पहले "यह अवस्तु है" ऐसा जान कर इसका परित्याग हो चुका। अतः अब फिर यह (संसार) भ्रम या मोह का कारण नहीं हो सकता, चाहे देहनाश पर्यन्त संस्कारमात्र भासता भी रहे।

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

मय्यर्पितात्मा (मेरे में अर्पित है मन जिसका अर्थात् मेरा भक्त) न ब्रह्मलोक के स्वामीपन की इच्छा करता है, न स्वर्ग के राज्य की चाह रखता है, न सर्वभूमि के स्वामी होने का अभिलाषी होता है, न पातालादिलोकों के राजा बनने की कामना करता है, न योग की अणिमा आदि सिद्धियों की आकाङ्क्षा रखता है और न मोक्ष ही चाहता है—मेरे बिना अन्य कोई पदार्थ भी उसे अभीष्ट (भाता) नहीं।

त्वय्युद्भवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो
मायान्तरापतति नाद्यपवर्गयोर्यत्।
जन्मादयोऽस्य यदमी तव यस्य किं स्यु-
राद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये॥

हे उद्धव! जो यह तीन प्रकार का (देह-इन्द्रिय-अन्तःकरण रूप) विकार तेरे में प्रतीत हो रहा है यह मायामात्र है (परमार्थ से नहीं है) क्योंकि मध्य में ही (रस्सी में सर्प आदि के समान) प्रतीत होता है, आदि और अन्त में यह नहीं है. अतः इस देहेन्द्रियान्तःकरणरूप विकार के जो यह जन्मादि विकार हो रहे हैं उनसे तेरे (अधिष्ठानरूप) स्वरूप की क्या हानि है!

जैसे असत्स्वरूप सर्पादि के आदि तथा अन्त में जो रज्जु आदि विद्यमान रहता है, वही मध्य में भी होता है।

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्य मनुमानं चतुष्टयम्।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद्व विकल्पात् स विरज्यते॥

श्रुति, प्रत्यक्ष, इतिहास और अनुमान इन चारों प्रमाणों से प्रपञ्च की नश्वरता या अनिर्वचनीयता का निश्चय करके विकल्प (प्रपञ्च) से वैराग्य करे।

कर्मणां परिणामित्वा दाविरिञ्चादमङ्गलम्।
विपश्चिन्नश्वरं पश्ये ददृष्टमपि दृष्टवत्॥

बुद्धिमान् स्वर्गादि के साधक यज्ञादि कर्मों के परिणामी (नाशवान्) होने के कारण ब्रह्मलोक पर्य्यन्त अदृष्ट पदार्थों को दृष्ट पदार्थों के समान अमङ्गल (दुःख से दूषित) तथा नाशवान् समझे।

धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम्।
गुणेष्वसङ्गो वैराग्य मैश्वर्यं चाणिमादयः॥

जो मेरे विषय में भक्ति उपजावे वह धर्म है, जो ऐकात्म्य-दर्शन (सर्वत्र अभेद दृष्टि) है यह ज्ञान कहाता है, गुणों (विषयों) में आसक्ति न करना वैराग्य है और अणिमा आदि सिद्धियां ही ऐश्वर्य हैं।

यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा।
स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः॥

जैसे मनोरथ-बुद्धि पुरुष का विषयानुभव मिथ्या होता है और स्वप्न में दिखाई देने वाले पदार्थ मिथ्या होते हैं ऐसे ही

हे दाशार्ह ! आत्मा का संसार (देहादि में आत्माध्यास) भी मिथ्या है ।

अर्थे ह्यविद्यमानेपि संसृतिर्न निवर्त्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥

जैसे स्वप्न में विषयों का ध्यान करने मात्र से इस पुरुष के अनर्थ की निवृत्ति नहीं होती, इसी प्रकार जागरण में पदार्थों के न होने पर भी संसार की निवृत्ति नहीं होती ।

नायं जनो मे सुखदुःखहेतु र्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः।
मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥

ये लोग मेरे सुख दुःख के हेतु नहीं हैं, और देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म, काल भी मुझे सुख दुःख के देने वाले नहीं, परन्तु यह मन ही सुख दुःख का देने वाला है जो संसारचक्र को घुमा रहा है ।

देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः ।
एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥

अन्धधी (लुप्तविवेकदृष्टि) मनुष्य इस भ्रममात्र देह को "मैं मेरी" इस प्रकार मान कर "यह मैं हूं यह दूसरा है" इस भ्रम से दुरन्तर-पार घोर अन्धकार में घूमते रहते हैं ।

यदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः ।
देहेऽभयं मनोऽसङ्गं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥

जब चित्त शान्त हो जाय विषयों से इन्द्रियों का उपराम हो जाय, देह में रोगादि का भय न रहे, मन सब सङ्गों से

रहित हो जावे, तब मेरी उपलब्धि (ज्ञान) के कारण सत्त्व गुण को बढ़ा हुआ समझे।

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ।
वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥

मिथ्यारूप द्वैत का क्या स्तुतियोग्य है और क्या निन्दा-योग्य है? वाणी से कहा गया (तथा चक्षु आदिसे ग्रहण किया गया) और मन से ध्याया गया जो कुछ भी (भद्र अभद्र) है वह सब झूठा ही है।

छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः ।
एवं देहादयो भावा यच्छन्त्यामृत्युतो भयम् ॥

छाया (मुख आदि का प्रतिबिम्ब), प्रतिध्वनि, आभास (रज्जु सर्प आदि) के समान (अर्थात् जैसे यह असद्रूप हो कर भी भय लोभादि कार्यों के हेतु होते हैं ऐसे ही) देह आदि पदार्थ भी मृत्युपर्य्यन्त अथवा प्रलयपर्यन्त संसाररूप भय को देते हैं।

यावद्देहेन्द्रियप्राणै रात्मनः सन्निकर्षणम् ।
संसारः फलवांस्ताव दपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥

जब तक अज्ञानी के आत्मा का सम्बन्ध देह इन्द्रिय प्राण से है तब तक ही आत्मा में अविद्यमान भी देहादि अथवा सुख दुःख आदि संसार स्फुरण हो रहा है।

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥

अर्थ (देव मनुष्यादि पदार्थ) यद्यपि (आत्मामें) अवि-

समान भी हैं तो भी (अनेक प्रकार से) विषयों का ध्या
करने वाले जीव का सुख दुःख आदि संसार निवृत्त न
होता जैसे स्वप्न में (वस्तुतः शरीर आदि के न होते हुए भी
सिर का कटना आदि रूप अनर्थ प्राप्त होता है ।

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ।
स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥

जैसे अप्रतिबुद्ध (स्वप्नों को देखते हुए) पुरुष का प्रस्वा
(स्वप्न में देखे गये पदार्थ) बहुत से (शिरश्छेदादि) अनर्थों
देता है और वही (स्वप्न का पदार्थ) जागे हुए को मोह
कारण नहीं होता। (ऐसे ही अज्ञ को ही अनर्थ की प्राप्ति
ज्ञानी को नहीं)।

यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ।
तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानाऽपदेशैरहमस्य तद्वत् ॥

जैसे स्वकृत (कुण्डल आदि अभी जिसके नहीं बने ऐसा
सुवर्ण, सब हिरण्मयों (सोने के विकार कुण्डलादि)
उत्पत्ति से पहले और नाश के पीछे "जो" है वही मध्य में
कटक कुण्डल आदि नाना नामों से व्यवहार को प्राप्त हो क
भी रहता है। इसी प्रकार इस संसार का कारण भूत मैं
आद्यन्तरूप हूँ और सृष्टि काल में भी नाना व्यवहारों
आश्रय भी मैं ही हूँ मुझ से पृथक् संसार नहीं है।

नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि देवा ह्यसुर्वायुर्जलं हुताशः ।
मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्त्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम् ॥

पृथ्वी का विकार होने से शरीर आत्मा नहीं, इन्द्रिय
और इन्द्रियों के अनुग्राहक सूर्य्यादि देवता, प्राण, वायु, जल,

अग्नि—ये भी आत्मा नहीं, जड़ होने से। मन भी आत्मा नहीं; अन्न का विकार होने से। बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, आकाश और पृथिवी भी आत्मा नहीं, अन्न का विकार तथा जड़ होने से। अर्थ (शब्दादि पाञ्च) और साम्य (तीन गुणों की साम्यावस्था प्रकृति) भी आत्मा नहीं, जड़ होने से।

यदि स्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं नानानुमानेन विरुद्धमन्यत।
न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥

यदि कभी समाधि भङ्ग होने पर ज्ञानवान् पुरुष बहिर्मुख-इन्द्रियों से अनेक प्रकार के शब्द आदि विषयों को देखता भी है तो भी "नाना अनुमानों" से आत्मा से भिन्न पदार्थों को मिथ्या जान कर सच्चे नहीं मानता, जैसे पुरुष स्वप्न से जाग कर अपने आप तिरोधान को प्राप्त हुए स्वप्न के पदार्थों को सत्य नहीं मानता, चाहे वे संस्कारमात्र स्फुरण भी होते हों।

एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः।
एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥

यह आत्मा स्वयं ज्योतिः, अप्रमेय (प्रत्यक्षादि प्रमाणों से न जानने योग्य), अज (जन्म आदि विकारों से रहित), अनन्त ज्ञान ऐश्वर्य आदि वाला, सबका साक्षी एक और अद्वितीय है, वाणियों के विराम होने पर भी जो स्वयं ज्योतिः है, जिससे प्रेरे जाने पर वाणी प्राण और इन्द्रिय अपने अपने विषयों में प्रवृत्त होते हैं।

एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले।
आत्मन्नृते स्वमात्मानः मवलम्बो न यस्य हि ॥

जो केवल (अभिन्न) आत्मा में भेदबुद्धि है बस इतना ही

मन का भ्रम है, क्योंकि अपने आत्मा के बिना इस भेद [illegible] कोई अधिष्ठान ही नहीं।

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम्।
ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः॥

शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष आकाश के समान मु[illegible] आत्मा को ही बाहर भीतर परिपूर्ण, आवरण-शून्य, सब भू[illegible] में और अपने आपमें स्थित देखे।

यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः॥

जब तक सब भूतों में भगवद्भाव का निश्चय न हो जावे त[illegible] तक मन वाणी और शरीर से इसी प्रकार उपासना करे।

समासम्

"वाक्य-सुधाकरः ।"

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक्तु मानसम् ।
दृश्या धीवृत्तयः साक्षी दृगेव न तु दृश्यते ॥

रूप दृश्य है, नेत्र द्रष्टा है। नेत्र दृश्य है, मन द्रष्टा है। बुद्धिवृत्तियाँ दृश्य हैं, साक्षी द्रष्टा ही है, दृश्य नहीं है।

नीलपीतस्थूलसूक्ष्म ह्रस्वदीर्घादिभेदतः ।
नानाविधानि रूपाणि पश्येल्लोचनमेकधा ॥

एक नेत्र ही नील पीत स्थूल ह्रस्व दीर्घादि भेदों से अनेक प्रकार के रूपों को देखता है।

आन्ध्यमान्द्यपटुत्वेषु नेत्रधर्मेषु चैकधा ।
सङ्कल्पयेन्मनः श्रोत्र त्वगादौ योज्यतामिदम् ॥

एक मन ही अन्धत्व मन्दत्व पटुत्वरूप नेत्रधर्मों के विषय में संकल्प करता है। श्रोत्र त्वचा आदिकों में भी यही न्याय जानना चाहिए।

कामः सङ्कल्पसन्देहौ श्रद्धाऽश्रद्धे धृतीतरे ।
ह्रीर्धीर्भीरित्येवमादीन् भासयत्येकधा चितिः ॥

काम, संकल्प, सन्देह, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति (धैर्य), अधृति, ह्री (लज्जा), धी (बुद्धि), भी (भय) इत्यादि मन के धर्मों को एक चिति (आत्मा) प्रकाश करती है। इसका

तात्पर्य्य यह है कि इन तीनों पद्यों में दृश्य के नाना होने पर भी द्रष्टा एक ही है।

नोदेति नास्तमेत्येषा न वृद्धिं याति न क्षयम्।
स्वयं विभात्यथान्यानि भासयेत्साधनं विना॥

यह चिति न उदय और न अस्त होती है, न वृद्धि को प्राप्त होती है न क्षय को, स्वयंप्रकाशमान है और बिना साधन के औरों को प्रकाश करती है।

चिच्छायाऽऽवेशतो बुद्धौ भानं धीस्तु द्विधा स्थिता।
एकाहंकृतिरन्या स्या दन्तःकरणरूपिणी॥

बुद्धि में चिति की छाया के प्रवेश से ज्ञान होता है, बुद्धि दो प्रकार की है एक अहङ्कार और दूसरी अन्तःकरण।

छायाहङ्कारयोरैक्यं तप्तायःपिण्डवन्मतम्।
तदहङ्कारतादात्म्या देहश्चेतनतामगात्॥

छाया और अहङ्कार की एकता से देह चेतनता को प्राप्त हुआ है, छाया और अहङ्कार का तपे हुए लोहे की तरह तादात्म्य सम्बन्ध है।

अहङ्कारस्य तादात्म्यं चिच्छायादेहसाक्षिभिः।
सहजं कर्मजं भ्रान्ति जन्यं च त्रिविधं क्रमात्॥

चिच्छाया, देह और साक्षी के साथ अहङ्कार का सहज (स्वाभाविक), कर्मजन्य और भ्रान्तिजन्य क्रमसे तीन प्रकार का तादात्म्य सम्बन्ध है।

सम्बन्धिनोः सतोर्नास्ति निवृत्तिः सहजस्य तु।
कर्मक्षयात्प्रबोधाच्च निवर्तेते क्रमादुभे॥

दोनों सम्बन्धियों के रहते हुए स्वाभाविक तादात्म्य की तो निवृत्ति नहीं होती, परन्तु दूसरे दोनों तादात्म्य तो क्रम से कर्मों के नाश और ज्ञान से निवृत्त हो जाते हैं।

अहङ्कारलये सुप्तौ भवेद्देहोऽप्यचेतनः ।
अहङ्कारविकासार्धः स्वप्नः सर्वस्तु जागरः ॥

सुषुप्ति अवस्था में अहङ्कार का लय हो जाने पर देह भी अचेतन हो जाता है, अहङ्कार का आधा प्रकाश स्वप्न है, और जाग्रत् तो पूरा ही प्रकाश है।

अन्तःकरणवृत्तिश्च चितिच्छायैक्यमागता ।
वासनाः कल्पयेत्स्वप्ने बोधेऽक्षैर्विषयान्बहिः ॥

अन्तःकरण की वृत्ति, चितिछाया (चित्प्रतिबिम्ब) के साथ एकता को प्राप्त होकर स्वप्न में वासनाओं की कल्पना करती है, जाग्रत् में इन्द्रियों से बाहर विषयों की कल्पना करती है।

मनोऽहंकृत्युपादानं लिङ्गमेकं जडात्मकम् ।
अवस्थात्रयमन्वेति जायते म्रियते तथा ॥

मन और अहङ्कार का उपादान कारण जड़रूप एक लिङ्ग (माया, अज्ञान) तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होता है, और जन्मता मरता है।

यहाँ पर 'लयं गच्छति मनआदि यस्मिन् तल्लिङ्गमज्ञान-मितियावत्' इस प्रकार व्याख्यान करके लिङ्ग शब्द का अर्थ माया लेना।

शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृतिरूपकम् ।
विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादि ब्रह्माण्डान्तं जगत्सृजेत् ॥

माया की विक्षेप और आवरणरूप दो शक्तियाँ हैं, विक्षेप शक्ति, लिङ्ग (सूक्ष्म शरीर) से लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त जगत् उत्पन्न करती है।

सृष्टिर्नाम ब्रह्मरूपे सच्चिदानन्दवस्तुनि ।
अब्धौ फेनादिवत्सर्व नामरूपप्रसारणा ॥

समुद्र के फेन आदि की तरह ब्रह्मरूप सच्चिदानन्द वस्तु में समस्त नामरूप की उत्पत्ति को "सृष्टि" कहते हैं।

अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेदं बहिश्च ब्रह्मसर्गयोः ।
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम् ॥

दूसरी आवरणशक्ति अन्दर द्रष्टा और दृश्य के भेद को बाहर ब्रह्म और सृष्टि के भेद को आवरण करती है, वह संसार का कारण है।

साक्षिणः पुरतो भातं लिङ्गं देहेन संयुतम् ।
चितिच्छायासमावेशा जीवः स्याद्व्यावहारिकः ॥

साक्षी के सामने स्फुरण होता हुआ और स्थूल देह के साथ मिला हुआ चिति की छाया के प्रवेश से यह सूक्ष्मशरीर व्यावहारिक जीव कहलाता है।

अस्य जीवत्वमारोपात्साक्षिण्यप्यवभासते ।
आवृतौ तु विनष्टायां भेदे भातेऽपयाति तत् ॥

इसका जीवभाव आरोप से साक्षी में भी भासता है, आवरण के नष्ट हो जाने पर 'भेद का भान' (भेद-ज्ञान) होने से वह जीवभाव जाता रहता है।

तथा सर्गब्रह्मणोश्च भेदमावृत्य तिष्ठति ।
या शक्तिस्तद्वशाद् ब्रह्म विकृतत्वेन भासते ॥

वैसे ही जो शक्ति सृष्टि और ब्रह्म के भेद को आवरण करके स्थित है, उसके प्रभाव से ब्रह्म विकारी सा होकर भासता है।

अत्राप्यावृतिनाशेन विभाति ब्रह्मसर्गयोः ।
भेदस्तयोर्विकारः स्या त्सर्गे न ब्रह्मणि क्वचित् ॥

यहाँ पर भी आवरण का नाश होने से, ब्रह्म और सृष्टि के भेद का ज्ञान होता है, उन दोनों में से विकार सृष्टि में है ब्रह्म में नहीं ।

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् ।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥

अस्ति, भाति, प्रिय, रूप और नाम, ये पाँच ही अंश हैं। पहले तीन ब्रह्म के रूप हैं, पिछले दो जगत् के ।

खवाय्वग्निजलोर्वीषु देवतिर्यङ्नरादिषु ।
अभिन्नाः सच्चिदानन्दा भिद्येते रूपनामनी ॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, देवता, तिर्यक् (पशु पक्ष्यादि) और मनुष्यादि में सत्, चित्, आनन्द (अस्ति भाति प्रिय) तीनों अभिन्न हैं, रूप और नाम भिन्न भिन्न हैं ।

उपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानन्दतत्परः ।
समाधिं सर्वदा कुर्यात् हृदये वाथवा बहिः ॥

नाम, रूप दोनों की उपेक्षा करके सत् चित् आनन्द में तत्पर होकर हृदय में अथवा बाहर सदा समाधि को करे ।

सविकल्पो निर्विकल्पः समाधिर्द्विविधो हृदि।
दृश्यशब्दानुवेधेन सविकल्पः पुनर्द्विधा॥

हृदय में सविकल्प और निर्विकल्प दो प्रकार का समाधि होता है, उनमें से सविकल्प समाधि, दृश्य और शब्द के अनुवेध (सम्बन्ध) से दो प्रकार का है।

कामाद्याश्चित्तगा दृश्या स्तत्साक्षित्वेन चेतनम्।
ध्यायेद्दृश्यानुविद्धोयं समाधिः सविकल्पकः॥

कामादि दृश्य चित्त के धर्म हैं, चेतन को उनके साक्षी भाव से (अर्थात् चेतन उनका साक्षी है, इस प्रकार) ध्यान करे। यह दृश्यानुविद्ध (दृश्य के सम्बन्धवाला) सविकल्प समाधि है।

असङ्गः सच्चिदानन्दः स्वप्रभो द्वैतवर्जितः।
अस्मीतिशब्दविद्धोयं समाधिः सविकल्पकः॥

मैं असङ्ग सच्चिदानन्द स्वयंप्रकाश अद्वितीय हूँ, यह शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

स्वानुभूतिरसावेशाद्द दृश्यशब्दानुपेक्षितुः।
निर्विकल्पः समाधिः स्या न्निवातस्थितदीपवत्॥

दृश्य और शब्द की उपेक्षा करनेवाले योगी को अपने अनुभव के रस के आवेश से निवातस्थित दीप की तरह निर्विकल्प समाधि होता है।

हृदीव बाह्यदेशेऽपि यस्मिन्कस्मिंश्च वस्तुनि।
समाधिराद्यः सन्मात्रा न्नामरूपपृथक्कृतिः॥

हृदय की तरह बाहर के देश में भी जिस किसी वस्तु में सत् मात्र से नाम रूप का पृथक् करना दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

अखण्डैकरसं वस्तु सच्चिदानन्दलक्षणम् ।
इत्यविच्छिन्नचिन्तेयं समाधिर्मध्यमो भवेत् ॥

सच्चिदानन्द रूप वस्तु अखण्ड एकरस है, यह चिन्तन लगातार करना शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

स्तब्धीभावो रसास्वादात् तृतीयः पूर्ववन्मतः ।
एतैः समाधिभिः षड्भि र्नयेत्कालं निरन्तरम् ॥

रसास्वाद से स्तब्ध (निश्चल) हो जाना पहले की तरह निर्विकल्प समाधि है, इन छ समाधियों से काल को निरन्तर व्यतीत करे।

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥

देहाभिमान के नष्ट हो जाने पर और परमात्मा के ज्ञात हो जाने पर जहाँ जहाँ मन जाता है वहाँ वहाँ समाधि ही है।

भिद्यते हृदयग्रन्थि श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

उस परावर को देख लेने पर हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सब संशय कट जाते हैं, और सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। पर = ब्रह्मा आदि भी, अवर = निकृष्ट हैं जिससे, उसे 'परावर' कहते हैं।

अवच्छिन्नश्चिदाभास स्तृतीयः स्वप्नकल्पितः।
विज्ञेयस्त्रिविधो जीव स्तत्राद्यः पारमार्थिकः॥

अवच्छिन्न, चिदाभास, और स्वप्नकल्पित यह तीन प्र के जीव हैं, इनमें से पहला पारमार्थिक (सत्य) है।

अवच्छेदः कल्पितः स्या दवच्छेद्यन्तु वास्तवम्।
तस्मिन् जीवत्वमारोपाद् ब्रह्मत्वं तु स्वभावतः॥

अवच्छेद (सम्बन्ध) कल्पित है, अवच्छेद्य (सम्बन्धवा वास्तव है, उस अवच्छेद्यमें जीवभाव कल्पित है, ब्रह्म स्वभावसे है।

अवच्छिन्नस्य जीवस्य पूर्णेन ब्रह्मणैकताम्।
तत्त्वमस्यादि वाक्यानि जगुर्नेतरजीवयोः॥

तत्त्वमसि आदि वाक्य अवच्छिन्न जीव की पूर्ण ब्रह्म साथ एकता को कहते हैं, दूसरे दोनों जीवों की एकता नहीं कहते।

ब्रह्मण्यवस्थिता माया विक्षेपावृतिरूपिणी।
आवृत्याखण्डतां तस्मिन् जगज्जीवौ प्रकल्पयेत्॥

ब्रह्म में स्थित आवरण और विक्षेपशक्ति वाली मा ब्रह्म की अखण्डता का आवरण करके स्वप्न में उसमें ज और जीव की कल्पना करती है।

जीवो धीस्थचिदाभासो भवेद्भोक्ता हि कर्मकृत्।
भोज्यरूपमिदं सर्वं जगत्स्याद् भूत भौतिकम्॥

बुद्धि में स्थित चिदाभासरूप जीव ही भोक्ता और कर्म कर्ता है, भूत भौतिक यह सारा जगत् भोग करने योग्य है।

अनादिकालमारभ्य मोक्षात्पूर्वमिदं द्वयम् ।
व्यवहारे स्थितं तस्मा दुभयं व्यावहारिकम् ॥

अनादि काल से आरम्भ करके मोक्ष से पूर्व, यह दोनों अवच्छिन्न और चिदाभास जीव व्यवहार में स्थित हैं, इस लिये दोनों व्यावहारिक हैं।

चिदाभासस्थिता निद्रा विक्षेपावृतिरूपिणी ।
आवृत्य जीवजगती पूर्वे नूत्ने तु कल्पयेत् ॥

चिदाभास में स्थित आवरण विक्षेप शक्तिवाली निद्रा, पूर्व के जगत् और जीव को आवरण करके नये स्वप्न में जीव और जगत् की कल्पना करती है।

प्रतीतिकाल एवैते स्थितत्वात्प्रातिभासिके ।
नहि स्वप्नप्रबुद्धस्य पुनः स्वप्ने स्थितिस्तयोः ॥

प्रतीतिकाल ही में रहने के कारण यह दोनों (स्वप्न के जीव और जगत्) प्रातिभासिक हैं, स्वप्न से जगे हुए पुरुष के फिर दूसरे स्वप्न में पहले स्वप्न के जीव तथा जगत् की स्थिति नहीं होती।

प्रातिभासिकजीवो य स्तज्जगत्प्रातिभासिकम् ।
वास्तवं मन्यतेऽन्यस्तु मिथ्येति व्यावहारिकः ॥

प्रातिभासिक जो जीव है वह प्रातिभासिक जगत् को वास्तव समझता है: और व्यावहारिक-जीव तो उसको मिथ्या समझता है।

व्यावहारिकजीवोय स्तज्जगद्व्यावहारिकम् ।
सत्यं प्रत्येति मिथ्येति मन्यते पारमार्थिकः ॥

जो व्यावहारिक-जीव है वह व्यावहारिक जगत् को वास्तव समझता है, पारमार्थिक-जीव तो उसको मिथ्या समझता है।

पारमार्थिकजीवस्तु ब्रह्मैक्यं पारमार्थिकम् ।
प्रत्येति वीक्षते नान्य द्वीक्षते त्वनृतात्मना ॥

पारमार्थिक-जीव तो ब्रह्म की एकता को पारमार्थिक समझता है, दूसरी वस्तु को देखता नहीं और यदि देखता है तो मिथ्यारूप से ही देखता है।

माधुर्यद्रवशैत्यानि नीरधर्मास्तरङ्गके ।
अनुगम्याथ तन्निष्ठे फेनेप्यनुगता यथा ॥

जैसे जल के धर्म मधुरता द्रवत्व और शीतता तरङ्ग में अनुगत होकर, तरङ्ग में रहनेवाले फेन में भी अनुगत होते हैं।

साक्षिस्थाः सच्चिदानन्दाः सम्बन्धा व्यावहारिके ।
तद्द्वारेणानुगच्छन्ति तथैव प्रातिभासिके ॥

वैसे ही साक्षी में स्थित सत् चित् आनन्द गुण, व्यावहारिकजीव में अनुगत होकर उसके द्वारा प्रातिभासिक में भी अनुगत होते हैं।

लये फेनस्य तद्धर्माः द्रवाद्याः स्युस्तरङ्गके ।
तस्यापि विलये नीरे तिष्ठन्त्येते यथा पुरा ॥

फेन का लय हो जाने पर उसके द्रवत्वादिक धर्म तरङ्ग में रहते हैं, और तरङ्ग का भी लय हो जाने पर पूर्ववत् जल में ठहर आते हैं।

प्रातिभासिकजीवस्य लये स्युर्व्यावहारिके ।
तल्लये सच्चिदानन्दाः पर्यवस्यन्ति साक्षिणि ॥

इसी प्रकार प्रातिभासिक-जीव का लय होने पर सत् चित् आनन्द धर्म व्यावहारिकजीव में ठहरते हैं, और उसका भी लय हो जाने पर साक्षी में पर्यवसन्न (समाप्त) होते हैं।

समाप्तम्

"लघु-वाक्यवृत्तिः ।"

जागरस्वप्नयोरेव बोधाभासविडम्बना ।
सुप्तौ तु तल्लये बोधः शुद्धो जाड्यं प्रकाशयेत् ॥

शुद्धज्ञान का जागर और स्वप्नमें ही असत्-ज्ञान… अनुकरण है, सुषुप्ति अवस्था में ज्ञानाभास के लय हो जाने… शुद्धज्ञान ही अज्ञान को प्रकाशित करता है।

श्रद्धालुर्ब्रह्मतां स्वस्य चिन्तयेद् बुद्धिवृत्तिभिः ।
वाक्यवृत्त्या यथाशक्ति ज्ञात्वाद्धाभ्यस्यतां सदा ॥

ब्रह्माकार बुद्धि की वृत्तियों से श्रद्धालु अपनी ब्रह्मरू… का चिन्तन करे और वाक्यवृत्तिग्रन्थ से उस तत्त्व को ज… कर यथाशक्ति सदा अच्छे प्रकार अभ्यास करे।

तच्चिन्तनं तत्कथनं मन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥

"उसका चिन्तन, कथन, एक दूसरे को उसका जना… और उसी एक में तत्पर रहना" इसी चर्य्या को पण्डित… ब्रह्माभ्यास कहते हैं।

देहात्मधीवद्ब्रह्मात्म धीदार्ढ्ये कृतकृत्यता ।
यदा तदायं म्रियतां मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ॥

जैसे देह में आत्मबुद्धि है ऐसे ही जब ब्रह्म में दृढ़ आत्म… बुद्धि हो जाय तब कृतकृत्य हुआ समझा जाय। जब … कृत्यता हो जाय तो भले ही मर जाय, वह मुक्त ही है… इसमें कोई संशय नहीं।

॥ समाप्तम् ॥

"अपरोक्षाऽनुभूतिः ।"

स्ववर्णाश्रमधर्म्मेण तपसा हरितोषणात् ।
साधनञ्च भवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम् ॥

अपने अपने वर्ण और आश्रमों के धर्मों और तपों से हरि को प्रसन्न करने से पुरुषों को वैराग्यादि चार साधनों की प्राप्ति होती है ।

ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु वैराग्यं विषयेष्वनु ।
यथैव काकविष्ठायां वैराग्यं तद्धि निर्म्मलम् ॥

ब्रह्मलोक से लेकर स्थावर (पाषाण) पर्य्यन्त विषयों में जैसा काकविष्ठा में वैराग्य होता है, ऐसा जो वैराग्य है, वह निर्मल वैराग्य है ।

नित्यमात्मस्वरूपं हि दृश्यं तद्विपरीतगम् ।
एवं यो निश्चयः सम्य ग्विवेको वस्तुनः स वै ॥

आत्मा ही नित्य वस्तु है, दृश्य अनित्य वस्तु है, ऐसा जो निश्चय है वही वस्तु का ठीक ठीक विवेक है अर्थात् सत्यासत्य विवेक है ।

नोत्पद्यते विना ज्ञानं विचारेणान्यसाधनैः ।
यथा पदार्थभानं हि प्रकाशेन विना क्वचित् ॥

विना विचार के अन्य साधनों से ज्ञान उत्पन्न नहीं होता जैसे प्रकाश के विना पदार्थों की प्रतीति कभी नहीं होती ।

नाहं भूतगणो देहो नाहं चाक्षगणस्तथा।
एतद्विलक्षणः कश्चि द्विचारः सोऽयमीदृशः॥

मैं भूतों का (पृथ्वी जल तेज वायु आकाश) समूह देह नहीं हूं, और न इन्द्रियों का समूह ही हूं, किन्तु इन न्द्रिय प्राण मन बुद्ध्यादि से विलक्षण हूँ–इत्यादि प्र विचार का है।

आत्मा प्रकाशकः स्वच्छो देहस्तामस उच्यते।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमः परम्॥

आत्मा प्रकाशक और स्वच्छ है, देह तामस अर्थात् घ दि के समान जड़ है, जो इन दोनों को एक समझ रहे हैं– से बढ़ कर अज्ञान क्या होगा?

ब्रह्मैवाहं समः शान्तः सच्चिदानन्दलक्षणः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः॥

मैं (प्रत्यगात्मा) सम (सत्ता और स्फुरण अंश के का सबसे अभिन्न), शान्त, सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म ही हूं मिथ्या देह रूप मैं नहीं हूं, विद्वान् लोग इस प्रकार के निश्च को ज्ञान कहते हैं।

निर्विकारो निराकारो निरवद्योऽहमव्ययः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः॥

मैं विकार से रहित, आकार से शून्य, आध्यात्मि आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों तापों से रहित, और न होने वाला हूं असद् रूप देह नहीं हूं—ऐसी बुद्धि को लोग "ज्ञान" कहते हैं। ज्वर आदि शरीर सम्बन्धी दुःखों

आध्यात्मिक दुःख कहते हैं, राजचौरव्याघ्र आदि भूतों से उत्पन्न दुःखों को आधिभौतिक और अतिवृष्टि भूकम्प आदि दैवी दुःखों को आधिदैविक दुःख कहते हैं।

स्वात्मानं शृणु मूर्ख त्वं श्रुत्या युक्त्या च पूरुषम् ।
देहातीतं सदाकारं सुदुर्दर्शं भवादृशैः ॥

हे मूर्ख ! तू श्रुति तथा युक्ति से आत्मा का श्रवण कर, जो आत्मा पुरुष (सर्व शरीरों में परिपूर्ण) है, देह से भिन्न है, सद् अर्थात् सत्ता ही जिसका स्वरूप है, आप जैसे देहात्म वादियों के लिये जो अत्यन्त दुर्दर्शनीय है।

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम् ।
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत् ॥

जिस प्रकार सुवर्ण से बने हुए सब गहने सोना रूप ही हैं, ऐसे ही ब्रह्म से उत्पन्न हुआ यह जगत् भी ब्रह्मरूप ही है।

यस्मिन्सर्वाणि भूतानि ह्यात्मत्वेन विजानतः ।
न वै तस्य भवेन्मोहो न च शोकोऽद्वितीयतः ॥

आत्मसाक्षात्कारदशा में जिस तत्त्ववेत्ता पुरुष की दृष्टि में सर्वभूत आत्मस्वरूप ही हो गये हैं, उसको न मोह होता है न शोक, क्योंकि वह अद्वैतरूप हो गया है।

अनुभूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽपि सन् ।
असद्रूपो यथा स्वप्न उत्तरक्षणबाधितः ॥
स्वप्नो जागरणेऽलीकः स्वप्नेऽपि जागरो नहि ।
द्वयमेव लये नास्ति लयोऽपि ह्युभयोर्नच ॥

यद्यपि यह लोक प्रतीत होता है, तथा व्यवहार के क… में समर्थ भी है तो भी स्वप्न के समान यह मिथ्या है। … जागरण काल में स्वप्न का मिथ्यापन देखा जाता है, … में जागरणकाल का अभाव होता है, और निद्रावस्… स्वप्न जागरण दोनों का अभाव हो जाता है, ऐसे ही … वस्था भी इन दोनों कालों में नहीं रहती।

यद्वन्मृदि घटभ्रान्ति शुक्तौ वा रजतस्थितिम्।
तद्वद् ब्रह्मणि जीवत्वं वीक्ष्यमाणे न पश्यति ॥

जैसे मिट्टी में घड़े का भ्रम है या सीप में चांदी… भ्रान्ति है, ऐसे ही ब्रह्म में जीवत्व का भ्रम है, विचारने… जीवपन नहीं रहता।

यथैव व्योम्नि नीलत्वं यथा नीरं मरुस्थले।
पुरुषत्वं यथा स्थाणौ तद्वद्विश्वं चिदात्मनि ॥

जैसे आकाश में नीलता, या मरुभूमि में जल, अ… स्थाणु में पुरुषकी प्रतीति होती है ऐसे ही यह जगत् चिदा… में न होता हुआ भी प्रतीत होता है।

घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः।
जगन्नाम्ना चिदाभाति ज्ञेयं तत्तद्भावतः ॥

जैसे पृथ्वी घट नाम से या तन्तु पट नाम से प्रतीत है… है, ऐसे ही चिदात्मा 'जगत्' नाम से प्रतीत होता है, और… घट पट के अभाव में पृथिवी तथा तन्तु ही शेष रह जाते हैं… ऐसे ही जगत् के अभाव में एक चिदात्मा ही शेष रहता है।

गृह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिकायाति वै बलात्।
वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चेऽपि ब्रह्मैवाभाति भासुरम्॥

जैसे घट को ग्रहण करने से मिट्टी बलात् चली आती है—ऐसे ही प्रपञ्च को देखने से स्वतः स्फूर्तिमान् ब्रह्म अपने आप दिखाई देने लगता है।

सर्पत्वेन यथा रज्जू रजतत्वेन शुक्तिका।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता॥

जैसे मूढ़ पुरुष रस्सी को सांप अथवा सीप को चान्दी समझ लेता है, ऐसे ही उसने देह को आत्मा समझ रखा है।

चक्षुर्भ्यां भ्रमशीलाभ्यां सर्वं भाति भ्रमात्मकम्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः॥

जैसे घूमनेसे नेत्रों द्वारा यह सब संसार घूमता हुआ प्रतीत होता है, ऐसे ही अज्ञान के कारण देह में आत्मत्व-प्रतीति होती है।

यथा शशी जले भाति चञ्चलत्वेन कस्यचित्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः॥

जैसे किसी को जलगत चान्द, जल की चञ्चलता के कारण चञ्चल प्रतीत होता है—ऐसे ही अज्ञान के कारण देह में आत्मबुद्धि होती है।

तत्त्वज्ञानोदयादूर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते।
देहादीनामसत्त्वात्तु यथा स्वप्नो विबोधतः॥

जैसे जागने पर स्वप्न नहीं रहता, ऐसे ही तत्त्वज्ञान पश्चात् देह आदि का अभाव हो जाने पर प्रारब्ध भी न रहता।

कर्म जन्मान्तरीयं यत् प्रारब्धमिति कीर्तितम्।
तत्तु जन्मान्तराभावात् पुंसो नैवास्ति कर्हिचित्॥

पूर्वजन्मों में किये गये कर्मों को प्रारब्ध कहते हैं, तत्त्ववेत्ता की दृष्टि में जन्मान्तर ही नहीं तब प्रारब्ध भी कहाँ

स्वप्नदेहो यथाध्यस्त स्तथैवायं हि देहकः।
अध्यस्तस्य कुतो जन्म जन्माभावे हि तत्कुतः॥

जैसे स्वप्न का देह आरोपित है, ऐसे ही यह देह अध्यस्त है, कल्पितवस्तु का जन्म कैसा? और जन्म के अभाव में प्रारब्ध कहाँ?

यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात्।
तद्वत्सत्यमविज्ञाय जगत्पश्यति मूढधीः॥

मनुष्य भ्रमसे जैसे रस्सी को सांप मान लेता है, वैसे ही मूर्ख सत्य आत्मा को न जान कर जगत् को मान रहा है

रज्जुरूपे परिज्ञाते सर्पखण्डो न तिष्ठति।
अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चः शून्यतां गतः॥

जैसे रस्सी को जान लेने से साँप नहीं रहता, वैसे ही अधिष्ठान ब्रह्म को जान लेने से प्रपञ्च भी नहीं रहता।

नित्याभ्यासादृते प्राप्ति र्न भवेत्सच्चिदात्मनः।
तस्माद्ब्रह्म निदिध्यासे ज्जिज्ञासुः श्रेयसे चिरम्॥

नित्यप्रति अभ्यास के बिना सच्चिदात्मा की प्राप्ति नहीं

हो सकती, इसलिये कल्याण की कामना वाला पुरुष, जब तक आत्मसाक्षात्कार न हो तब तक ब्रह्म का निदिध्यासन करे।

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत्।
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी॥

ज्ञानमयी दृष्टि से जगत् को ब्रह्मरूप देखे, यही दृष्टि सबसे उत्तम है, नासिका के अग्रभाग में जो दृष्टि का लगाना है वह उत्तम नहीं।

इमं चाकृत्रिमानन्दं तावत्साधु समभ्यसेत्।
वश्यो यावत्क्षणात्पुंसः प्रयुक्तः स भवेत्स्वयम्॥

पुरुष इस स्वाभाविक आनन्द का तब तक अच्छे प्रकार अभ्यास करे; जब तक किया गया अभ्यास अपने आप क्षण भर में वश में न हो जाय।

भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता।
ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत्॥

घट पट आदि पदार्थों की वृत्ति से बुद्धि भी घट-पट आदि रूप हो जाती है, शून्याकार चित्तवृत्ति का अभ्यास करने से शून्यता की प्राप्ति होती है, और ब्रह्माकारवृत्ति के अभ्यास से ब्रह्मभाव की प्राप्ति हो जाती है, इसलिये ब्रह्माकार वृत्ति का ही अभ्यास करे।

येषां वृत्तिः समा वृद्धा परिपक्वा च सा पुनः।
ते वै सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्दवादिनः॥

जिन पुरुषों की ब्रह्माकारवृत्ति अखण्ड तथा उत्तर उत्तर बढ़ती हुई और परिपक्व हो जाती है-वे पुरुष ही सद्ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। शब्द-मात्र से अपने आपको ब्रह्म कहनेवाले नहीं।

निमेषार्द्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना ।
यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः ॥

जो पुरुष ब्रह्माकारवृत्ति के बिना आधा निमेष भर भी न रहते, तथा ब्रह्मा आदि, सनक आदि और शुक आदि समान सदा ब्रह्माकार वृत्ति में रहते हैं, वे ही ब्रह्मत्व प्राप्त होते हैं।

अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यद्वै वाचामगोचरम् ।
द्रष्टव्यं मृद्धटेनैव दृष्टान्तेन पुनः पुनः ॥

इस प्रकार विचार करने से मन वाणी का अविषय शुद्ध ब्रह्म है वही शेष रह जाता है, मिट्टी तथा घड़े के दृष्टान्त से इस बात का बार बार चिन्तन करना चाहिए।

भावितं तीव्रवेगेन यद्वस्तु निश्चयात्मना ।
पुमांस्तद्धि भवेच्छीघ्रं ज्ञेयं भ्रमरकीटवत् ॥

निश्चितमन होकर जिस वस्तु का चिन्तन तीव्र वेग से किया जाय, पुरुष शीघ्र उसी का रूप हो जाता है, इस बात को भ्रमर-कीट के दृष्टान्त से जान लेना।

अदृश्यं भावरूपञ्च सर्वमेव चिदात्मकम् ।
सावधानतया नित्यं स्वात्मानं भावयेद्बुधः ॥

प्रत्यक्ष, परोक्ष, द्रष्टा, दृश्य तथा दर्शन रूप जितना संसार है वह सब चिदात्मरूप है—इस प्रकार विद्वान् पुरुष अपने आत्मा का सावधान होकर नित्य विचार करे।

॥ समाप्तम् ॥

निज सुख बिनु मन ... ॥
... अपने सुख ... ॥

"वाक्यवृत्तिः ।"

सर्गस्थितिप्रलयहेतुमचिन्त्यशक्तिं,
विश्वेश्वरं विदितविश्वमनन्तमूर्तिम् ।
निर्मुक्तबन्धनमपारसुखाम्बुराशिं
श्रीवल्लभं विमलबोधघनं नमामि ॥

मैं उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के हेतु, अचिन्त्यशक्ति, विश्वेश्वर, विश्व के जाननेवाले, अनन्त-मूर्त्ति, बन्धनों से रहित, अपार सुख-सागर और विमल ज्ञानमय श्री विष्णुजी को नमस्कार करता हूँ ।

यस्य प्रसादादहमेव विष्णु र्मय्येव सर्वं परिकल्पितं च ।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं तस्याङ्घ्रिपद्मं प्रणतोस्मि नित्यम् ॥

जिसकी कृपा से "मैं ही विष्णु हूँ और सब मुझमें ही कल्पित हैं" इस प्रकार जिस सदात्मरूप को जानता हूँ, उसके चरण-कमलों को नित्य प्रणाम है ।

तापत्रयार्कसन्तप्तः कश्चिदुद्विग्नमानसः ।
शमादिसाधनैर्युक्तः सद्गुरुं परिपृच्छति ॥

कोई पुरुष आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक

तीनों तापरूप सूर्य से तपा हुआ, व्याकुल चित्तवाला, श
दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धारूप साधनों
युक्त होकर सद्गुरु से पूछता है ।

अनायासेन येनास्मा न्मुच्येयं भवबन्धनात् ।
तन्मे संक्षिप्य भगवन् केवलं कृपया वद ॥

भगवन् ! मैं जिस उपाय से बिना कष्ट के इस संस
बन्धन से छूट जाऊँ, उस उपाय को मेरे प्रति कृपा क
संक्षेप से कहिये ।

साध्वी ते वचनव्यक्तिः प्रतिभाति वदामि ते ।
इदं तदितिविस्पष्टं सावधानमनाः शृणु ॥

हे शिष्य ! तुम्हारा वचन साधु प्रतीत होता है, इसलि
"वह यह है" इस प्रकार स्पष्ट रूप से तुमको कहता हूँ, सा
धान-मन होकर सुनो ।

तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थं यज्जीवपरमात्मनोः ।
तादात्म्यविषयं ज्ञानं तदिदं मुक्तिसाधनम् ॥

तत्त्वमस्यादि वाक्यों से उत्पन्न जो जीव और ईश्वर क
तादात्म्य (ऐक्य) ज्ञान है वही मुक्ति का साधन है ।

को जीवः कः परश्चात्मा तादात्म्यं वा कथं तयोः ।
तत्त्वमस्यादिवाक्यं वा कथं तत्प्रतिपादयेत् ॥

जीव कौन है और ईश्वर कौन है तथा उनका तादात्म्य
किस प्रकार का है और तत्त्वमस्यादि वाक्य उनका कि
प्रकार प्रतिपादन करते हैं ?

अत्र ब्रूमः समाधानं कोन्यो जीवस्त्वमेव हि ।
यस्त्वं पृच्छसि मां कोहं ब्रह्मैवासि न संशयः ॥

इस प्रश्न का समाधान कहते हैं, अन्य कौन जीव है, तू ही तो है। जो तू मुझे पूछता है कि मैं कौन हूँ ? सो तू ब्रह्म ही है इसमें कोई संशय नहीं।

पदार्थमेव जानामि नाद्यापि भगवन् स्फुटम् ।
अहं ब्रह्मेतिवाक्यार्थं प्रतिपद्ये कथं वद ॥

हे भगवन् ! जब मैं पदों के अर्थों को ही स्पष्ट रूप से नहीं जानता तो फिर "अहं ब्रह्म" इस वाक्य के अर्थ को कैसे समझ सकता हूँ ?

सत्यमाह भवानत्र विज्ञानं नैव विद्यते ।
हेतुः पदार्थबोधो हि वाक्यार्थावगतेरिह ॥

तुम ठीक कहते हो, इस विषय में तुमको ज्ञान नहीं है, वाक्य के अर्थ को जानने के लिए पदों के अर्थों का जानना आवश्यक है, क्योंकि वाक्यार्थ-बोध के प्रति पदार्थ-बोध कारण है।

अन्तःकरणतद्वृत्ति साक्षी चैतन्यविग्रहः ।
आनन्दरूपः सत्यः सन् किं नात्मानं प्रपद्यसे ॥

अन्तःकरण और उसकी वृत्तियों के साक्षी, चैतन्य रूप, आनन्दमय, सत्य और सद्रूप अपने आत्मा को क्यों नहीं जानता ?

सत्यानन्दस्वरूपं धी साक्षिणं बोधविग्रहम् ।
चिन्तयात्मतया नित्यं त्यक्त्वा देहादिगां धियम् ॥

देह आदि में आत्मबुद्धि को छोड़ कर सत्यानन्द ए बुद्धि के साक्षी और ज्ञानस्वरूप को नित्य आत्मरू चिन्तन कर।

रूपादिमान्यतः पिण्ड स्ततो नात्मा घटादिवत्
वियदादिमहाभूत विकारत्वाच्च कुम्भवत् ॥

क्योंकि शरीर रूपादिमान् है, इसलिये आत्मा नहीं जैसे घटादि रूपवाले होने से आत्मा नहीं हैं। और आ आदि महाभूतों का विकार होने से भी शरीर, घट की आत्मा नहीं है।

अनात्मा यदि पिण्डोय मुक्तहेतुबलान्मतः।
करामलकवत्साक्षा दात्मानं प्रतिपादय ॥

हे गुरो! उक्त हेतु के बल से यदि शरीर अनात्मा है करामलकवत् साक्षात् आत्मा का प्रतिपादन करो।

घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः सर्वथा न घटो यथा।
देहद्रष्टा तथा देहो नाहमित्यवधारय ॥

हे शिष्य! जैसे घट का द्रष्टा सर्वथा घट से भिन्न घट रूप नहीं है, इसी प्रकार देह का द्रष्टा भी देह से भि है, अतः मैं देह नहीं हूँ ऐसा समझो।

एवमिन्द्रियदृङ् नाह मिन्द्रियाणीति निश्चिनु।
मनोबुद्धिस्तथा प्राणो नाहमित्यवधारय ॥

इसी प्रकार मैं इन्द्रियों का द्रष्टा हूँ इन्द्रिय रूप नहीं ऐसा निश्चय करो और ऐसे ही मैं बुद्धि तथा प्राण भी नहीं

संघातोपि तथा नाह मितिदृश्यविलक्षणम् ।
द्रष्टारमनुमानेन निपुणं संप्रधारय ॥

इसी प्रकार मैं संघातरूप भी नहीं हूँ और दृश्य से विलक्षण हूँ, ऐसे ही मुझ द्रष्टा को अनुमान से अच्छे प्रकार निर्णय करो ।

देहेन्द्रियादयो भावा हानादिव्यापृतिक्षमाः ।
यस्य सन्निधिमात्रेण सोहमित्यवधारय ॥

जिसकी समीपतामात्र से देह इन्द्रियादि पदार्थ छोड़ने तथा पकड़ने आदि व्यापार में समर्थ होते हैं, वही मैं हूँ—ऐसा जानो ।

अनापन्नविकारः स न्नयस्कान्तवदेव यः ।
बुद्ध्यादींश्चालयेत्प्रत्यक् सोहमित्यवधारय ॥

जो विकार को न प्राप्त होकर चुम्बक के समान बुद्ध्यादि को चलाता है, वह प्रत्यक् स्वरूप मैं हूँ—ऐसा जानो ।

अजडात्मवदाभान्ति यत्सान्निध्याज्जडा अपि ।
देहेन्द्रियमनःप्राणाः सोहमित्यवधारय ॥

जिसकी समीपता से जड़ देह, इन्द्रिय, मन और प्राण भी चेतन के समान प्रतीत होने लगते हैं, वह मैं हूँ—ऐसा जानो ।

अगमन्मे मनोन्यत्र साम्प्रतं च स्थिरीकृतम् ।
एवं यो वेत्ति धीवृत्तिं सोहमित्यवधारय ॥

मेरा मन कहीं अन्यत्र गया था और अब स्थिर कर लिया गया है जो इस प्रकार की बुद्धिवृत्ति को जानता है, वह मैं हूँ—ऐसा जानो ।

स्वप्नजागरिते सुप्तिं भावाभावौ धियां तथा।
यो वेत्त्यविक्रियः साक्षा त्सोऽहमित्यवधारय॥

जो विकार को प्राप्त न होकर स्वप्न, जागरित और
तथा बुद्धियों के भाव और अभाव को साक्षात् जान
वह मैं हूँ—ऐसा जानो।

घटावभासको दीपो घटादन्यो यथेष्यते।
देहावभासको देही तथाहं बोधविग्रहः॥

जैसे घट का प्रकाशक दीपक, घट से भिन्न होता है
प्रकार मैं देहका प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा देह से भिन्न

पुत्रवित्तादयो भावा यस्य शेषतया प्रियाः।
द्रष्टा योऽसौ प्रियतमः सोऽहमित्यवधारय॥

जिसके लिये पुत्र वित्तादि पदार्थ प्रिय हैं, वह
प्रिय द्रष्टा (आत्मा) मैं हूँ—ऐसा जानो।

परप्रेमास्पदतया मा न भूवमहं सदा।
भूयासमिति यो द्रष्टा सोऽहमित्यवधारय॥

मेरा अभाव न हो, मैं सदा बना रहूँ, इस प्रकार
प्रेम का विषय जो द्रष्टा है, वह मैं हूँ—ऐसा जानो।

यः साक्षिलक्षणो बोध स्त्वंपदार्थः स उच्यते।
साक्षित्वमपि बोद्धृत्व मविकारितयात्मनः॥

जो साक्षिस्वरूप ज्ञान है, वह 'त्वं' पद का अर्थ है
आत्मा का साक्षीपन भी अविकार-भाव से ज्ञानरूप मात्र

देहेन्द्रियमनःप्राणा हङ्कृतिभ्यो विलक्षणः ।
प्रोज्झिताशेषषड्भाव विकारस्त्वंपदाभिधः ॥

देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और अहङ्कार से विलक्षण तथा जन्म, सत्ता, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय और विनाश छः प्रकार के भावविकारों से रहित आत्मा, "त्वं" पद का अर्थ है।

त्वमर्थमेवं निश्चित्य तदर्थं चिन्तयेत्पुनः ।
अतद्व्यावृत्तिरूपेण साक्षाद्विधिमुखेन च ॥

इस प्रकार "त्वं" पद के अर्थ का निश्चय करके "तत्" पद के अर्थ का ब्रह्म से भिन्न पदार्थ के निषेध द्वारा या साक्षात् विधिमुख से चिन्तन करे।

निरस्ताशेषसंसार दोषोऽस्थूलादिलक्षणः ।
अदृश्यत्वादिगुणकः पराकृततमोमलः ॥
निरस्तातिशयानन्दः सत्यप्रज्ञानविग्रहः ।
सत्तास्वलक्षणः पूर्णः परमात्मेति गीयते ॥

संसार के सब दोषों से रहित, अस्थूलादि लक्षणवाला, अदृश्यत्व आदि गुणवाला, तमोरूप-मल से रहित, निरतिशय-आनन्दमय, सत्य ज्ञानस्वरूप, सद्रूप और पूर्ण आत्मा को "परमात्मा" कहते हैं।

सर्वज्ञत्वं परेशत्वं तथा सम्पूर्णशक्तिता ।
वेदैः समर्थ्यते यस्य तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥

जिसकी सर्वज्ञता, परमेश्वरपन तथा सम्पूर्ण-शक्तिता वेदों से कथन की जाती है, वह ब्रह्म है—ऐसा जानो।

यज्ज्ञानात्सर्वविज्ञानं श्रुतिषु प्रतिपादितम् ।
मृदाद्यनेकदृष्टान्तैस्तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥

श्रुतियों में मृत्तिका आदि अनेक दृष्टान्तों द्वारा जिसके से सर्ववस्तु का ज्ञात होना प्रतिपादन किया गया है ब्रह्म है–ऐसा जानो।

यदानन्त्यं प्रतिज्ञाय श्रुतिस्तत्सिद्धये जगौ ।
तत्कार्यत्वं प्रपञ्चस्य तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥

श्रुति जिसकी अनन्तता की प्रतिज्ञा करके उसकी के लिये सब प्रपञ्च को उसका कार्य कहती है, वह ब्र ऐसा जानो।

विजिज्ञास्यतया यच्च वेदान्तेषु मुमुक्षुभिः ।
समर्थ्यतेतियत्नेन तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥

उपनिषदों में मुमुक्षुओं के लिये जिसकी जिज्ञासा समर्थन अतियत्न से किया गया है, वह ब्रह्म है–ऐसा जा

जीवात्मना प्रवेशश्च नियन्तृत्वं च तान् प्रति ।
श्रूयते यस्य वेदेषु तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥

जिसका वेदों द्वारा जीवात्मरूप से प्रवेश और जीवों नियन्तापने का श्रवण करते हैं, वह ब्रह्म है–ऐसा जानो।

कर्मणां फलदातृत्वं यस्यैव श्रूयते श्रुतौ ।
जीवानां हेतुकर्तृत्वं तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥

जिसको श्रुति में कर्मों के फल का देनेवाला और जीवों "हेतुकर्त्ता" (प्रेरक) कहा गया है, वह ब्रह्म है–ऐसा जानो।

तत्त्वंपदार्थौ निर्णीतौ वाक्यार्थश्चिन्त्यतेधुना।
तादात्म्यमत्र वाक्यार्थ स्तयोरेव पदार्थयोः॥

"तत्" और "त्वं" पद के अर्थों का निर्णय हो चुका, अब वाक्यार्थ का विचार करते हैं, यहाँ इन दोनों पदार्थों का "तादात्म्य" (अभेद) वाक्यार्थ है।

संसर्गोवा विशिष्टोवा वाक्यार्थो नात्र संमतः।
अखण्डैकरसत्वेन वाक्यार्थो विदुषां मतः॥

यहाँ संसर्ग या विशिष्ट वाक्यार्थ सम्मत नहीं है, किन्तु विद्वानों को अखण्डैक-रसरूप वाक्यार्थ सम्मत है।

प्रत्यग्बोधो य आभाति सोद्वयानन्दलक्षणः।
अद्वयानन्दरूपश्च प्रत्यग्बोधैकलक्षणः॥

यह जो प्रत्यक् (निज) बोधरूप भासता है वही अद्वय आनन्द स्वरूप है और जो अद्वयानन्दरूप है वही "प्रत्यक्-बोधैक" (केवल प्रत्यग् ज्ञानस्वरूप) रूप है।

इत्थमन्योन्यतादात्म्य प्रतिपत्तिर्यदा भवेत्।
अब्रह्मत्वं त्वमर्थस्य व्यावर्तेत तदैव हि॥
तदर्थस्य च पारोक्ष्यं यद्येवं किं ततः शृणु।
पूर्णानन्दैकरूपेण प्रत्यग्बोधोऽवतिष्ठते॥

जिस समय इस प्रकार "अन्योन्य तादात्म्यज्ञान" (परस्पर अभेद ज्ञान) होवे उसी समय "त्वं" पदार्थ की अब्रह्मता और "तत्" पदार्थ की परोक्षता निवृत्त हो जायगी। यदि ऐसा है तो फिर क्या हुआ? सुनो! तब प्रत्यक् आत्मा (जीव) केवल पूर्णानन्दरूप हो जाता है।

तत्त्वमस्यादिवाक्यं च तादात्म्यप्रतिपादने।
लक्ष्यौ तत्त्वंपदार्थौ द्वावुपादाय प्रवर्तते॥

"तत्त्वमस्यादि" वाक्य अभेद को प्रतिपादन क लिये, "तत्, त्वं" पदों के दोनों लक्ष्य अर्थों को लेकर होता है।

हित्वा द्वौ शबलौ वाच्यौ वाक्यं वाक्यार्थबोधने।
यथा प्रवर्ततेऽस्माभि स्तथा व्याख्यातमादरात्॥

उक्त वाक्य, वाक्यार्थ के बोधन में, दोनों विरुद्ध वाच को छोड़ कर जिस प्रकार प्रवृत्त होता है, वैसा हमने आ पूर्वक व्याख्यान कर दिया।

आलम्बनतया भाति योऽस्मत्प्रत्ययशब्दयोः।
अन्तःकरण-संभिन्नो बोधः स त्वंपदाभिधः॥

ता "अहं" शब्द का मुख्यार्थ और "अहं" प्रतीति का वि अन्तःकरण से युक्त जो "बोध" स्फुरण होता है, वह पद का वाच्य अर्थ है।

मायोपाधिर्जगद्योनिः सर्वज्ञत्वादिलक्षणः।
पारोक्ष्यशबलः सत्याद्यात्मकस्तत्पदाभिधः॥

माया उपाधि से युक्त, जगत् का कारण और सर्वज्ञत्व लक्षणवाला, पारोक्ष्य धर्म से युक्त और सच्चिदानन्द "तत्" पद का वाच्य अर्थ है।

प्रत्यक्परोक्षतैकस्य सद्वितीयत्वपूर्णता।
विरुध्यते यतस्तस्मा ल्लक्षणा संप्रवर्त्तते॥

अपरोक्षता और परोक्षता तथा परिच्छिन्नता और पूर्णता, एक ही आत्मा में दोनों विरुद्ध धर्म हो नहीं सकते, इसलिए लक्षणा करनी पड़ती है।

मानान्तरविरोधे तु मुख्यार्थस्य परिग्रहे।
मुख्यार्थेनाविनाभूते प्रतीतिर्लक्षणोच्यते॥

जहाँ मुख्यार्थ के ग्रहण करने में प्रमाणान्तर का विरोध हो, वहाँ मुख्यार्थ सम्बन्धी अन्य पदार्थ की प्रतीति जिससे होती है उसे 'लक्षणा' कहते हैं।

तत्त्वमस्यादिवाक्येषु लक्षणा भागलक्षणा।
सोऽहमित्यादिवाक्यस्थ पदयोरिव नापरा॥

तत्त्वमस्यादि वाक्यों में "सोऽहम्" इत्यादि वाक्य के पदों के समान "भागलक्षणा" ही मानी गई है।

अहं ब्रह्मेति वाक्यार्थ बोधो यावद्दृढी भवेत्।
शमादिसहितस्तावदभ्यसेच्छ्रवणादिकम्॥

जब तक "अहं ब्रह्म" इस वाक्य के अर्थ का ज्ञान दृढ़ न हो जाय तबतक शमदमादि साधनों से युक्त होकर श्रवणादि का अभ्यास करे।

श्रुत्याचार्यप्रसादेन दृढो बोधो यदा भवेत्।
निरस्ताशेषसंसार निदानः पुरुषस्तदा॥

जब श्रुति और आचार्य के अनुग्रह से दृढ़ ज्ञान हो जायगा तब पुरुष के संसार का अशेष कारण (अज्ञान) नष्ट हो जायगा।

विशीर्णकार्यकरणो भूतसूक्ष्मैरनावृतः।
विमुक्तकर्मनिगडः सद्य एव विमुच्यते॥

॥ उरप्रेरक रघुवंश विभूषन ॥ यह रघुवं
जी कह्यो प्रेरक है क्यों के वह रनवं के ॥ पं

 प्रेरक है ॥

स्वाधीन
शरीर और इन्द्रियों से रहित, सूक्ष्म भूतों के आवर
शून्य और कर्म के फाँसों से विमुक्त होकर पुरुष त
मोक्ष को प्राप्त हो जाता है ।

> प्रारब्धकर्मवेगेन जीवन्मुक्तो यदा भवेत् ।
> किंचित्कालमनारब्ध कर्मबन्धस्य संक्षये ॥
> निरस्तातिशयानन्दं वैष्णवं परमं पदम् ।
> पुनरावृत्तिरहितं कैवल्यं प्रतिपद्यते ॥

पुरुष ज्ञान से सञ्चित कर्मों के विनाश के पश्चात् प्रा
कर्म के वेग से कुछ काल तक जीवन्मुक्त हो जाता है।
प्रारब्धकर्मरूप-बन्धन के नष्ट हो जाने पर निरतिशय आ
आवागमन से रहित, कैवल्यरूप वैष्णव परम पद को
होता है।

(margin: रघु है ... जब चाहेंगे तब शरीर त्याग कर सकेंगे ॥ ... २९ ... बीते हैं)

७१ चौकड़ी युग का एक मन्वंतर १४ म
न्वंतर का एक कल्प ॥ ब्रह्मा का दिन है ॥ रघु
च मनुष्य शरीर

समाप्तम्

प्रयुम्न के धारण ॥ तब प्र
करते हैं ॥ शोक मोह भ्रम नहीं ॥ संग
विराग योग विज्ञाना ये सब पुरुष रघु
पुरुष त्याग सब नाहिं जो विरक्त मति
धीर ॥ ... कामी विषयन विवश विमु
जो पद रघुवीर ॥ सुनहु तात यह ...
कहानी ॥ समुझत बनै न जाइ बखानी ॥

"अद्वैताऽनुभूतिः।"

अहमानन्दसत्यादि लक्षणः केवलः शिवः।
सदानन्दादिरूपं य त्तेनाहमचलोऽद्वयः॥

मैं आनन्द, सत्य आदि लक्षणों वाला हूँ, केवल शिव और सदा आनन्द आदि रूप हूँ अतएव अचल अद्वय हूँ।

अक्षिदोषाद्यथैकोपि द्वयवद्भाति चन्द्रमाः।
एकोप्यात्मा तथा भाति द्वयवन्मायया मृषा॥

जैसे एक ही चन्द्रमा नेत्रके दोष से दो सा प्रतीत होता है, ऐसे ही एक ही आत्मा माया-दोष से दो के समान झूठा ही भासता है।

मेघयोगाद्यथा नीरं करकाकारतामियात्।
मायायोगात्तथैवात्मा प्रपञ्चाकारतामियात्॥

जैसे जल, मेघ के योग से ओले के आकार में परिणत होता है ऐसे ही आत्मा माया के सम्बन्ध से प्रपञ्चाकार हो जाता है।

वर्षोपल इवाभाति नीरमेवाभ्रयोगतः।
वर्षोपलविनाशेन नीरनाशो यथा न हि॥

यथा बुद्बुदनाशेन जलनाशो न कर्हिचित् ।
तथा प्रपञ्चनाशेन नाशः स्यादात्मनो न हि ॥

जैसे जल, मेघ के योग से वर्षा के ओले के समान होता है, और जैसे वर्षा के ओले के नाश से जल का नहीं होता, तथा जैसे बुलबुले के नाश से जल का नाश नहीं होता, ऐसे ही प्रपञ्च के नाश से आत्मा का भी नहीं होता ।

अहिनिर्ल्वयनीनाशा दहेर्नाशो यथा न हि ।
देहत्रयविनाशेन नात्मनाशस्तथा भवेत् ॥

जैसे साँप की केंचुली के नाश से साँप का नाश होता, ऐसे ही देहत्रय (स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर) विनाश से आत्मा का विनाश नहीं होता ।

दाहको नैव दाह्यं स्या दाह्यं तद्वन्न दाहकः ।
नैवात्मायमनात्मा स्या दनात्मायं न चात्मकः ।

जैसे दाहक (जलानेवाला) दाह्य (काष्ठादि) नहीं सकता और दाह्य दाहक नहीं हो सकता, ऐसे ही यह आत्मा अनात्मा नहीं हो सकता और अनात्मा (देहादि) आत्मा हो सकते ।

यथा घटेषु नष्टेषु घटाकाशो न नश्यति ।
तथा देहेषु नष्टेषु नैव नश्यामि सर्वगः ॥

जैसे घड़ों के नष्ट होने से घटाकाश नष्ट नहीं होता, ही देहों के नष्ट होने पर सर्वगत मैं भी नष्ट नहीं होता ।

सर्वं जगदिदं नाहं विषयत्वादिदंधियः ।
अहं नाहं सुषुप्त्यादौ अहमः साक्षितः सदा ॥

यह सारा जगत् इदं-बुद्धि का विषय होने से मेरा रूप नहीं है और मैं, "मैं-रूप" (अहंकाररूप) भी नहीं हूँ, क्योंकि सुषुप्ति आदि में "अहम्" (अहंकार) का भी साक्षी हूँ ।

उपाधिनीलरक्ताद्यैः स्फटिको नैव लिप्यते ।
तथात्मा कोशजैः सर्वैः कामाद्यैर्नैव लिप्यते ॥

जैसे पुष्प आदि उपाधि के नील लाल आदि रंगों से स्फटिक लिप्त नहीं होता ऐसे ही पञ्चकोशों से होनेवाले सब कामादि दोषों से आत्मा लिप्त नहीं होता ।

देहत्रयमिदं नित्य मात्मत्वेनाभिमन्यते ।
यावत्तावदयं मूढो नानायोनिषु जायते ॥
स्वप्नभोगे यथैवेच्छा प्रबुद्धस्य न विद्यते ।
असत्स्वर्गादिके भोगे नैवेच्छा ज्ञानिनस्तथा ॥

जब तक यह मूढ़ पुरुष इस देहत्रय को अपना आत्मा मान रहा है तभी तक वह नाना योनियों में जन्म लेता है । जैसे जागे हुए मनुष्य को स्वप्न के भोगों में इच्छा नहीं होती ऐसे ही ज्ञानी को मिथ्या स्वर्ग आदिक भोगों की इच्छा नहीं होती ।

ज्ञस्य नास्त्येव संसारो यद्वदज्ञस्य कर्मिणः ।
जानतो नैव भीर्यद्व द्रज्जुसर्पमजानतः ॥
सैन्धवस्य घनो यद्व जलयोगाज्जलं भवेत् ।
स्वात्मयोगात्तथा बुद्धि रात्मैव ब्रह्मवेदिनः ॥

जैसे अज्ञानिकर्मी को संसार प्रतीत होता है, ऐसे ज्ञानवान् को नहीं, रज्जुसर्प को न जानते हुए पुरुष को जितना भय होता है उतना जानते हुए को नहीं, जैसे जल के योग से सेंधा नमक जलरूप ही हो जाता है, वैसे ही आत्मा के योग से ब्रह्मवित् की दृष्टि में बुद्धि भी आत्मरूप ही हो जाती है।

सर्वप्रकाशको भानुः प्रकाश्यैर्नैव दूष्यते ।
सर्वप्रकाशको ह्यात्मा सर्वैस्तद्वन्न दूष्यते ॥

जैसे सब का प्रकाशक सूर्य्य, प्रकाश्यों (घटादि) से दूषित नहीं होता, ऐसे ही सबका प्रकाशक आत्मा सब से दूषित नहीं होता ।

मुकुरस्थस्य नाशेन मुखनाशो भवेत्कथम् ।
बुद्धिस्थाभासनाशेन नाशो नैवात्मनः क्वचित् ॥

जैसे दर्पणगत प्रतिबिम्ब के नाश से मुख का नाश नहीं होता, ऐसे ही बुद्धिगत आभास के नाश से आत्मा का कभी नाश नहीं होता ।

स्फटिके रक्तता यद्व दुपाधेर्नीलताम्बरे ।
यथा जगदिदं भाति तथा सत्यमिवाद्वये ॥

जैसे रक्त फूल की लाली बिल्लौर में और आकाश में नीलता भासती है, ऐसे ही यह जगत् अद्वय आत्मा में सत्य सा भासता है ।

लिङ्गस्य धारणादेव शिवोऽयं जीवतां व्रजेत् ।
लिङ्गनाशे शिवस्यास्य जीवतावेशता कुतः ॥

शिव एव सदा जीवो जीव एव सदा शिवः ।
वेत्त्यैक्यमनयोर्यस्तु स आत्मज्ञो न चेतरः ॥

यह शिव लिङ्गशरीर के धारण से ही जीवभाव को प्राप्त होता है, लिङ्ग के नाश होने पर इस शिव का जीवपन नहीं रहता, जीव सदा शिव ही है और शिव सदा जीव ही है। जो पुरुष इनकी एकता को जानता है, वही आत्मज्ञ है।

क्षीरनीरविवेकज्ञो हंस एव न चेतरः ।
आत्मानात्मविवेकज्ञो यतिरेव न चेतरः ॥

दूध और जल को पृथक् करने के प्रकार को जाननेवाला, हंस से अतिरिक्त दूसरा नहीं। आत्मा और अनात्मा के भेद को जाननेवाला भी यति ही है, दूसरा नहीं।

ज्ञाते स्थाणौ कुतश्चोर श्चोराभावे भयं कुतः ।
ज्ञाते स्वस्मिन्कुतो विश्वं विश्वाभावे कुतोऽखिलम् ॥

स्थाणु को जानने से चोर कहाँ? चोर के अभाव में भय कहाँ? अपने स्वरूप को जान लेने से विश्व कहाँ और विश्व के अभाव में संसार कहाँ? (विश्व नाम जाग्रदभिमानी आत्मा का है, विश्व उपलक्षक तैजस, प्राज्ञ का भी है)।

देहत्रयमिदं भाति यस्मिन्ब्रह्मणि सत्यवत् ।
तदेवाहं परं ब्रह्म देहत्रयविलक्षणः ॥

जिस ब्रह्म में यह देहत्रय (स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर) सत्य सा प्रतीत हो रहा है, वह देहत्रय से विलक्षण परब्रह्म मैं हूँ।

जाग्रदादित्रयं यस्मि न्प्रत्यगात्मनि सत्यवत् ।
स एवाहं परं ब्रह्म जाग्रदादिविलक्षणः ॥

जिस प्रत्यगात्मा में जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, ये अवस्थाएँ सत्य सी भासती हैं वह जाग्रत् आदि से वि[लक्षण] परब्रह्म मैं हूँ ।

विश्वादिकत्रयं यस्मि न्परमात्मनि सत्यवत् ।
स एव परमात्माहं विश्वादिकविलक्षणः ॥

जिस परमात्मा में विश्व, तैजस और प्राज्ञ ये तीनों [सत्य] से भासते हैं, वह विश्व आदि से विलक्षण परब्रह्म मैं हूँ ।

विराडादित्रयं भाति यस्मिन्साक्षिणि सत्यवत् ।
स एव सच्चिदानन्द लक्षणोऽहं स्वयंप्रभः ॥

विराड् हिरण्यगर्भ और ईश्वर ये तीनों जिस सा[क्षी में] सत्यवत् भासमान हैं वह सच्चिदानन्द स्वरूप स्वयंप्रकाश [मैं हूँ] ।



उसका प्रकाश है तब भ्रमसे जो भेद बुद्धि हो रही पद्धति पापने को और इस को पृथक् जानना जो संसार का मूल है उसका नाश हो जाता है ॥८

ॐ

"उपदेश—सहस्री ।"

विद्यैवाज्ञानहानाय न कर्माप्रतिकूलतः ।
नाज्ञानस्याप्रहाणे हि रागद्वेषक्षयो भवेत् ॥ १

ज्ञान ही अज्ञान के नाश के लिए समर्थ है, कर्म नहीं, क्योंकि कर्म अज्ञान का विरोधी नहीं है और बिना अज्ञान के नष्ट हुए रागद्वेष का क्षय किसी प्रकार नहीं हो सकता।

नेति नेतीति देहादी नपोह्यात्मावशेषितः ।
निर्विशेषात्मभानार्थं तेनाविद्या निवर्तिता ॥ २

"नेति नेति" इस श्रुति ने, देहादि को खण्डन करके निर्विशेष (अखण्ड) आत्मा के ज्ञानार्थ केवल आत्मा को शेष रक्खा है, और इसी आत्मज्ञानसे अविद्याकी निवृत्तिका कथन किया है।

मूत्राशङ्को यथोदङ्को नाग्रहीदमृतं यथा ।
कर्मनाशभयाजन्तो रात्मज्ञानाग्रहस्तथा ॥ ३

जैसे उदङ्क ने मूत्र की आशङ्का से अमृत ग्रहण नहीं किया था, ऐसे ही कर्मनाश के भय से अज्ञानी पुरुष आत्मज्ञान को ग्रहण नहीं करते।

नौस्थस्य प्रातिलोम्येन नगानां गमनं यथा ।
आत्मनः संसृतिस्तद्वत् ध्यायतीवेति हि श्रुतिः ॥

जैसे नौका में बैठे हुए पुरुष को वृक्षों का चलना
प्रतीत होता है ऐसे ही आत्मा में संसार प्रतीत हो
अतएव "ध्यान करता हुआ सा प्रतीत होता है" इस
श्रुति कहती है ।

विकारित्वमशुद्धत्वं भौतिकत्वं न चात्मनः ।
अशेषबुद्धिसाक्षित्वाद् बुद्धिवच्चाल्पवेदना ॥

विकार, अशुद्धि और भूतों से उत्पत्ति—ये धर्म आ
नहीं हैं, क्योंकि आत्मा सम्पूर्ण बुद्धियों का साक्षी है,
बुद्धि के समान अल्पज्ञता भी आत्मा में नहीं है ।

अविवेकात्पराभावं यथा बुद्धिरवेत्तथा ।
विवेकात्तु परादन्यः स्वयं चापि न विद्यते ॥

जैसे बुद्धि अज्ञानदशा में परब्रह्म के अभाव को
है ऐसे ही ज्ञानकाल में परब्रह्म से भिन्न बुद्धि की अपनी
भी नहीं रहती ।

विमुच्य मायामयकार्यतामिह प्रशान्तिमायाह्यसदीहितात्म
अहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तिम- त्तथाजमेकं द्वयवर्जितं

माया के कार्य जगत् को छोड़कर, मिथ्या वस्तु
कामना से हट कर, तू प्रशान्ति को प्राप्त हो, क्योंकि तू
परब्रह्म, मुक्तस्वरूप, अज, एक और द्वैत से रहित है ।

भूतदोषैः सदास्पृष्टं सर्वभूतस्थमीश्वरम् ।
नीलं व्योम यथा बालो दुष्टं मां वीक्षते जनः ॥

जैसे मूर्ख लोग आकाश को नीले रंग का समझते हैं

ही अज्ञानी लोग सब भूतों के दोषों से रहित तथा सब भूतों में विद्यमान मुझ ईश्वर को दोषयुक्त समझते हैं।

शरीरबुद्धीन्द्रियदुःखसन्तति र्न मे न चाहं मम निर्विकारतः।
असत्त्वहेतोश्च तथैव सन्ततेरसत्त्वमस्याः स्वपतो हि दृश्यवत् ॥

मैं शरीर, बुद्धि और इन्द्रियात्मक दुःख-समुदायरूप नहीं हूँ और न इनका मेरे साथ कोई सम्बन्ध है, क्योंकि मैं निर्विकार हूँ, और यह समुदाय मिथ्या है क्योंकि यह असद्रूप है. सुषुप्ति अवस्था में घटादि दृश्य के समान इस समुदाय का भी अभाव प्रसिद्ध है।

इदं तु सत्यं मम नास्ति विक्रिया विकारहेतुर्न हि मेऽद्वयत्वतः।
न पुण्यपापे न च मोक्षबन्धने न चास्ति वर्णाश्रमताशरीरतः॥

यह सत्य है कि मैं विकार से रहित हूँ क्योंकि विकार के हेतु द्वैत से शून्य हूँ। मुझ में न पुण्य पाप हैं, न मोक्ष बन्धन हैं, न वर्ण आश्रम हैं—क्योंकि मैं शरीर से रहित हूँ।

यदद्वयं ज्ञानमतीवनिर्मलं महात्मनां तत्र न शोकमोहता।
तयोरभावे न हि जन्म कर्म वा भवेदयं वेदविदां विनिश्चयः॥

जो अद्वय ज्ञान अत्यन्त निर्मल है, उसे पाकर महात्माओं को न शोक होता है न मोह, और शोक मोह के अभाव में न जन्म है न कर्म, यह वेदवेत्ता पुरुषों का निश्चय है।

सुषुप्तवज्जाग्रति यो न पश्यति
द्वयं तु पश्यन्नपि चाद्वयत्वतः।
तथा च कुर्वन्नपि निष्क्रियश्च यः
स आत्मविन्नान्य इतीह निश्चयः॥

अद्वयभाव को प्राप्त होने के कारण जो जागते सम को देखते हुए भी सोये हुए पुरुष के समान द्वैत को देखता है, और जो कर्म करते हुए भी निष्क्रिय है, आत्मवेत्ता है, अन्य नहीं, ऐसा निश्चय है।

स्वप्नः सत्यो यथाबोधा देहात्मत्वं तथैव च।
प्रत्यक्षादेः प्रमाणत्वं जाग्रत्स्यादात्मवेदनात्॥

जैसे निद्रासमय में जागने से पहले स्वप्न सत्य सा होता है, ऐसे ही जाग्रदवस्था में आत्मज्ञान से पहले देहात्मता सत्य प्रतीत होती है तथा प्रत्यक्षादि की प्रमाणता।

नामरूपक्रियाभ्योऽन्यो नित्यमुक्तस्वरूपवान्।
अहमात्मा परं ब्रह्म चिन्मात्रोऽहं सदाद्वयः॥

मैं नाम, रूप और क्रिया से रहित हूँ, और नित्य आत्मा, परब्रह्म, चिन्मात्र सदा अद्वयरूप हूँ।

अहं ब्रह्मास्मि कर्त्ता च भोक्ता चास्मीति ये विदुः
ते नष्टा ज्ञानकर्मभ्यां नास्तिकाः स्युर्न संशयः॥

"मैं ब्रह्म हूँ और कर्त्ता तथा भोक्ता हूँ"—इस प्रकार जिनका ज्ञान है वे लोग नष्ट हुए समझे जाने चाहिएँ, समुच्चित ज्ञान और कर्म से मोक्ष समझ रहे हैं, वे नास्तिक हैं—इसमें कोई संशय नहीं।

अमृतं चाभयं नार्तं नेतीत्यात्मा प्रियो मम।
विपरीतमतोऽन्यच्च त्यजेत्तत्सक्रियं ततः॥

अमृत, अभय, आनन्दमय और 'नेति नेति' जो मेरा है वही प्रिय है, इससे विपरीत तथा भिन्न जो जो सक्रिय

हैं पुरुष उन्हें अनात्मा समझ कर छोड़ देवे। अथवा इस आत्मा से भिन्न जो जो वस्तु है वह इससे विपरीत (मरण धर्मवाली, भयरूप, दुःखमय और अप्रिय) है, अतः आत्मा से भिन्न वस्तु को छोड़ दे।

देहाभिमानिनो दुःखं न देहस्य स्वभावतः।
स्वापवत्तत्प्रहाणाय तत्त्वमित्युच्यते दृशेः॥

देहाभिमानी को दुःख है, स्वभाव से देह को नहीं, स्वप्न के तुल्य उस देह के अभिमान आदि को छुड़ाने के लिए श्रुति आत्मविषयक-तत्त्व का उपदेश करती है।

देहात्मबुद्ध्यपेक्षत्वा दात्मनः कर्तृता मृषा।
नैव किञ्चित्करोमीति सत्या बुद्धिः प्रमाणजा॥

कर्तापन देहात्मबुद्धि के अधीन है अतः आत्मा में कर्तृता झूठी है, "मैं कुछ नहीं करता हूँ" यह बुद्धि सत्य है, क्योंकि प्रमाण से उत्पन्न हुई है।

नित्यमुक्तस्य शुद्धस्य कूटस्थस्याविचालिनः।
अमृतस्याक्षरस्यैव मशरीरस्य सर्वदा॥

अकर्तृत्व बुद्धि का विषय नित्यमुक्त, शुद्ध कूटस्थ, अविचाली, अमृत, अक्षर, अशरीर और सनातन आत्मा है।

अहं ब्रह्मास्मि सर्वोऽस्मि शुद्धोबुद्धोऽस्म्यतः सदा।
अजः सर्वत एवाह मजरश्चाक्षयोऽमृतः॥

मैं ब्रह्म हूँ, सर्वरूप हूँ, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, अज, सर्वव्यापक अजर, अक्षय और अमृत हूँ।

नाम कर्म धर्म व्रतदान संयम नि
यज्ञ जप ना ना" भूत दया द्विज

आत्मज्ञस्यापि यस्य स्या द्धानोपादनता यदि।
न मोक्षार्हः स विज्ञेयो वान्तोऽसौ ब्रह्मणा ध्रुव

यदि किसी आत्मवेत्ता को भी त्याग और ग्रहण करने बुद्धि होती हो तो उसे मोक्ष का अधिकारी नहीं सम चाहिए, निश्चय ही उसे ब्रह्म ने वमन कर दिया है।

आत्मा ह्यात्मीय इत्येप भावोऽविद्याप्रकल्पितः।
आत्मैकत्वे ह्यसौ नास्ति बीजाभावे कुतः फलम्

"यह देहादि आत्मा है, यह आत्मसम्बन्धी वस्तु है" विचार अविद्या से ही कल्पित है, ज्ञानदशा में यह नहीं रहता, बीज बिना फल कहाँ ?

स्थावरं जङ्गमं चैव ज्ञप्त्यादिक्रियायुतम् ।
सर्वमक्षरमेवातः सर्वस्यात्माक्षरं खहम् ॥

ज्ञान-क्रियायुक्त सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम जगत् अक्षर है, और अक्षर आत्मा मैं हूँ।

परलोकभयं यस्य नास्ति मृत्युभयं तथा ।
तस्यात्मज्ञस्य शोच्याःस्युः सब्रह्मेन्द्रा अपीश्वराः

जिसको न परलोक का भय है, न मृत्यु का भय है, आत्मवेत्ता की दृष्टि में ब्रह्मा, इन्द्र आदि ईश्वर भी शोचनीय

दृशिस्वरूपेण हि सर्वदेहिनां वियद्यथा व्याप्य मनांस्यवस्थि
अतो न तस्मात्परोऽस्ति वेदिता परोऽपि तस्मादत एक ईश्वरः

आत्मा आकाश के समान ज्ञानरूप से सब देहधारि के मनों में व्याप्त होकर स्थित हो रहा है, उससे भिन्न पर कर कोई ज्ञाता नहीं, अतः वह एक ईश्वररूप है।

सोइ धन धर्म की ...

यथा विशुद्धं गगनं निरन्तरं न सज्जते नापि च लिप्यते तथा।
समस्तभूतेषु सदैव तेष्वयं समः सदात्मा ह्यजरोऽमरोऽभयः॥

अखण्ड और विशुद्ध आकाश के समान यह आत्मा किसी वस्तु से न सङ्ग रखता है और न किसीसे लिप्त होता है, तथा सब भूतों और देवताओं में यह आत्मा सम, अजर, अमर और सदा अभयरूप है।

द्रष्टुश्चान्यद्भवेद्दृश्यं दृश्यत्वाद्घटवत्सदा।
दृश्याद्द्रष्टा सजातीयो न धीवत्साक्षितान्यथा॥

जैसे घटादि पदार्थ दृश्य होने के कारण द्रष्टा से भिन्न हैं, ऐसे ही देहेन्द्रियादि–दृश्य भी द्रष्टा से भिन्न हैं, दृश्य से द्रष्टा विलक्षण है, अन्यथा बुद्धि के समान आत्मा में साक्षीपन कैसे हो? अर्थात् द्रष्टा यदि दृश्य का सजातीय हो तो बुद्धि के समान आत्मा में साक्षीपन भी नहीं हो।

वासुदेवो यथाश्वत्थे स्वदेहे चाब्रवीत्समम्।
तद्वद्वेत्ति य आत्मानं समं स ब्रह्मवित्तमः॥

जैसे भगवान् वासुदेव, पीपल और अपने देह में आत्मा को "सम" बतलाते हैं, इसी प्रकार जो पुरुष आत्मा को सर्वत्र "सम" जानता है—वह ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ है।

व्यस्तं नाहं समस्तं वा भूतमिन्द्रियमेव वा।
ज्ञेयत्वात्करणत्वाच्च ज्ञातान्योऽस्माद्घटादिवत्॥

मैं व्यस्त (पृथक् पृथक्) अथवा समस्त (समुदायरूप से) पृथिवी आदि भूत या इन्द्रिय आदि स्वरूप नहीं हूँ, क्योंकि ये

सच्चिदानंदघन, परमेश्वर के नाम ... में कारक करने ... "

सब घट आदि के समान ज्ञान के विषय और साधन इनसे भिन्न और इनका ज्ञाता हूँ ।

विविच्यास्मात्स्वमात्मानं विन्द्याच्छुद्धं परं पदं
द्रष्टारं सर्वभूतस्थं समं सर्वभयातिगम् ॥

पुरुष को चाहिए कि इन देहेन्द्रियादि से भिन्न आत्मा को जान कर शुद्ध परमपद को प्राप्त होवे, वह द्रष्टा, सर्वभूतों में स्थित, सम और सर्व भय से रहित ।

नान्येन ज्योतिषा कार्यं रवेरात्मप्रकाशने ।
स्वबोधान्नान्यबोधेच्छा बोधस्यात्मप्रकाशने ॥

जैसे सूर्य्य को अपने प्रकाशन के लिए अन्य ज्योति की अपेक्षा नहीं है, ऐसे ही ज्ञान को अपने प्रकाशन के लिये से अन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं है ।

न तस्यैवान्यतोपेक्षा स्वरूपं यस्य यद्भवेत् ।
प्रकाशान्तरदृश्यो न प्रकाशो ह्यस्ति कश्चन ॥

जिस वस्तु का जो स्वरूप होता है, वह अपने इस को जानने के लिए अन्य की अपेक्षा नहीं रखती, क्योंकि प्रकाश अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं रखता ।

ममाहमित्येतदपोह्य सर्वतो विमुक्तदेहं पदमम्बरोपमं
सुदृष्टशास्त्रानुमितिभ्य ईरितं विमुच्यतेऽस्मिन्यदि निश्चितो

यदि इस ब्रह्म में पुरुष निष्ठावान् हो तो "मेरा" "मैं" को सर्व प्रकार से छोड़ कर, देह से रहित आकाश समान ब्रह्मपद को) जिसे श्रुति, स्मृति और अनुमिति शास्त्रों में कहा गया है) जान कर मुक्त हो जाय ।

अज्ञानं कल्पनामूलं संसारस्य नियामकम् ।
हित्वात्मानं परं ब्रह्म विन्द्यान्मुक्तं सदाभयम् ॥

कल्पित अज्ञान ही संसार का नियामक (मूल) है, इसको त्याग कर सदा मुक्त अभय परब्रह्म को प्राप्त करो।

सदसत्सदसच्चेति विकल्पात्प्राग्यदिष्यते ।
तदद्वैतं समत्वात्तु नित्यं चान्यद्विकल्पितात् ॥

जैसा स्वरूप सत्, असत् और सदसत् रूप विकल्प से पूर्व प्रतीत होता है वही अद्वैत है, वह सम होने से नित्य है और कल्पित संसार से भिन्न है।

विकल्पोद्भवतो सत्त्वं स्वप्नदृश्यवदिष्यताम् ।
द्वैतस्य प्रागसत्त्वाच्च सदसत्त्वादिकल्पनात् ॥

स्वप्न के पदार्थों के समान अज्ञान से उत्पन्न होने के कारण, सृष्टि से पूर्व न होने से, तथा सद्, असद्, या सद् असद् दोनों रुप से विकल्प का विषय न होने के कारण, द्वैत (जगत्) मिथ्या है।

आत्मलाभः परोलाभ इति शास्त्रोपपत्तयः ।
अलाभोऽनात्मलाभस्तु त्यजेत्तस्मादनात्मताम् ॥

आत्मा का लाभ ही सब से उत्तम लाभ है—यह बात शास्त्र तथा युक्ति द्वारा सिद्ध है। अनात्मलाभ ही अलाभ है अतः अनात्मता को पुरुष परित्याग करे।

अनेकजन्मान्तरसञ्चितैर्नरो विमुच्यतेऽज्ञाननिमित्तपातकैः ।
इदं विदित्वा परमं च पावनं न लिप्यते व्योमवदेव कर्मभिः ॥

इसी परम पावन ब्रह्म को जान कर मनुष्य अनेक ज सञ्चित तथा अज्ञान—निमित्तक पातकों से छूट जाता है। आकाश के समान आगामी कर्मों से भी लिप्त नहीं होता।

दृष्टं चापि यथा रूपं बुद्धेः शब्दाय कल्पते ।
एवमेतज्जगत्सर्वं भ्रान्तिबुद्धिविकल्पितम् ॥

जैसे देखा गया रूप, बुद्धि के शब्द-व्यवहार के। कल्पना किया जाता है, इसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् भ्र बुद्धि से कल्पना किया गया है।

कल्प्योपाधिभिरेवैत द्भिन्नं ज्ञानमनेकधो-
पाधिभेदाद्यथा भेदो मणेरेकस्य जायते ॥

जैसे उपाधि के भेद से एक मणि में कई भेद हो ज ऐसे ही यह ज्ञान कल्पित-उपाधियों से ही अनेक प्र भेदवाला हो रहा है।

अविद्याप्रभवं सर्वं मसत्तस्मादिदं जगत् ।
तद्धत्ता दृश्यते यस्मा त्सुषुप्ते न च गृह्यते ॥

इस सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति अज्ञानसे दिखाई दे और सुषुप्ति में यह प्रतीत नहीं होता, अतः अविद्या से होने के कारण यह जगत् असत्य है।

अदृश्योऽपि यथा राहु श्चन्द्रे बिम्बं यथाम्भसि
सर्वगोऽपि तथैवात्मा बुद्धावेव स गृह्यते ॥

जैसे अदृश्य राहु चन्द्र में दिखाई देता है और सु का प्रतिबिम्ब जल आदि में ही प्रतीत होता है, इसी सर्वव्यापक आत्मा भी बुद्धि में ही प्रतीत होता है।

न हि दीपान्तरापेक्षा यद्वद्दीपप्रकाशने ।
बोधस्यात्मस्वरूपत्वा न्न बोधोऽन्यस्तथेष्यते ॥

जैसे एक दीपक को प्रकाशन करने के लिये दूसरे दीपक की अपेक्षा नहीं होती, ऐसे ही आत्मस्वरूप होने के कारण बोध को दूसरे बोध की आवश्यकता नहीं होती ।

स बाह्याभ्यन्तरो जीर्णो जन्ममृत्युजरातिगः ।
अहमात्मेति यो वेत्ति कुतो न्वेव बिभेति सः ॥

बाहर भीतर वर्त्तमान, पुरातन, जन्म मृत्यु और बुढ़ापे से रहित आत्मा मैं हूँ—जिसको ऐसा बोध है उसे भय किसका ?

यत्कामस्तत्क्रतुर्भूत्वा कृतं स्वज्ञः प्रपद्यते ।
यदा स्वात्मदृश्यः कामाः प्रमुच्यन्तेऽमृतस्तदा ॥

अज्ञानी पुरुष जैसी कामना करता है उसी के अनुसार कर्म करके अपने किये हुए को पाता है, और जिस समय स्वात्मा का साक्षात्कार हो जाता है तब सब काम छूट जाते हैं और अमर हो जाता है ।

प्राणाद्येव त्रिकं हित्वा तीर्णोऽज्ञानमहोदधिम् ।
स्वात्मस्थो निर्गुणः शुद्धो बुद्धो मुक्तः स्वतो हि सः ॥

स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों प्रकार के शरीरों में अहन्ता ममता का त्याग करके तथा अज्ञानसमुद्र को तैर कर, अपने स्वरूप में स्थित शुद्ध बुद्ध निर्गुण पुरुष स्वयं ही मुक्त है ।

नीरात्सर्पिर्यथोद्धृत्य क्षिप्तं तस्मिन्न पूर्ववत् ।
बुद्ध्यादेर्ज्ञस्तथा सत्या न्न देही पूर्ववद्भवेत् ॥

जैसे दूध से निकाला गया घी फिर दूध में पहले नहीं मिलता, ऐसे ही बुद्धि आदि से भिन्न करके जाना वह आत्मा, सत्य होने के कारण पहले की तरह बुद्धि के तादात्म्य को प्राप्त नहीं होता ।

भारूपत्वाद्यथा भानो नाहोरात्रे तथैव तु ।
ज्ञानाज्ञाने न मे स्यातां चिद्रूपत्वाविशेषतः ॥

जैसे प्रकाशरूप सूर्य्य के लिए दिन और रात नहीं हैं, प्रकार मुझ चित्स्वरूप के लिए ज्ञान और अज्ञान नहीं है

हित्वा जात्यादिसम्बन्धं वाचोऽन्याः सहकर्मभिः
ओमित्येवं सदात्मानं सर्वं शुद्धं प्रपद्यथ ॥

कर्मसहित जाति आदि सम्बन्धों को तथा आत्म-सम्ब कथाओं से भिन्न बातों को छोड़ कर ॐकार का ध्यान हुए सत्य, सर्वरूप और शुद्ध आत्मा को प्राप्त हो ।

बन्धं मोक्षं च सर्वं यत इदमुभयं हेयमेकं द्वयं च
ज्ञेयाज्ञेयाभ्यतीतं परममधिगतं तत्त्वमेकं विशुद्धम्
विज्ञायैतद्यथावच्छ्रुतिमुनिगदितं शोकमोहावतीतः
सर्वज्ञः सर्वकृत्स्याद्भवभयरहितो ब्राह्मणोऽवाप्तकृत्यः

बन्ध, मोक्ष, ज्ञान और अज्ञान—सब को छोड़ना चाहि जिस पुरुष ने ज्ञेय और अज्ञेय से रहित, एक परम वि तत्त्व को प्राप्त किया है, तथा श्रुति स्मृति में कहे गये तत्त्व को यथावत् जान कर जो शोक मोह के पार हु वही पुरुष सर्वज्ञ, सर्वकर्म-कृत, संसार-भय से रहित कृतकृत्य ब्राह्मण है ।

कर्ता भोक्तेति यच्छास्त्रं लोकबुद्ध्यनुवादि तत् ।
सदस्मीति श्रुतेर्जाता बाध्यतेऽन्या तथैव धीः ॥

जो शास्त्र आत्मा में कर्तृत्व और भोक्तृत्व का प्रतिपादन करता है, वह लोकसिद्ध कर्तृत्वादि का अनुवादक है, और "सदस्मि" (मैं सद्रूप हूँ) इत्यादि श्रुति से "मैं नहीं हूँ"—इस बुद्धि का बाध हो जाता है ।

जातिकर्मादिमत्त्वाद्धि तस्मिञ्शब्दस्त्वहङ्कृतिः ।
न कश्चिद्वर्तते शब्द स्तदभावात्स्व आत्मनि ॥

जाति कर्मादिवाला होने से अन्तःकरण या तद्विशिष्टात्मा में अहम्-शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु आत्मा, जाति कर्म गुण आदि से शून्य है, अतः आत्मा किसी शब्द (व्यवहार) का विषय नहीं है ।

आभासान्मुखमप्येव मादर्शाननुवर्तनात् ।
अहङ्कृत्यात्मनिर्भासो मुखाभासवदिष्यते ॥

इसी प्रकार दर्पण का अनुवर्त्ती न होने के कारण मुख भी मुखाभास से भिन्न है, और मुखाभास के समान "अहङ्कार" (जीवात्मा) भी शुद्धात्मा से भिन्न है ।

मुखवत्स्मृत आत्मान्योऽ विविक्तौ तौ तथैव च ।
संसारी च स इत्येक आभासो यस्त्वहङ्कृतिः ॥

आत्मा मुख के समान है, वह उपाधि से भिन्न है, उपाधि और आत्मा का विवेकज्ञान नहीं है, अतः उपाधि और आभास मिल कर ही संसारी कहाता है और आभास ही अहङ्कार-रूप है ।

मुखेन व्यपदेशात्स मुखस्यैवेति चेन्मतम्।
नादर्शानुविधानाच्च मुखे सत्यप्यभावतः॥

लोग दर्पणगत मुखाभास को "मुख" कह कर पुका
अतः मुखाभास मुखसम्बन्धी ही है—यदि ऐसा कहो तो
नहीं, क्योंकि दर्पण के होने से दर्पण में मुखाभास हो
दर्पण के अभाव में नहीं होता, अतः उपाधि-सम्ब
मुखाभास है, और ऐसा अन्वयव्यतिरेक मुख के
आभास का नहीं है, क्योंकि मुख आदि के होते हुए भी
में अभास का अभाव देखा जाता है।

अविद्यामात्र एवातः संसारोऽस्त्वविवेकतः।
कूटस्थेनात्मना नित्य मात्मवानात्मनीव सः॥

अतः संसार अविवेक से ही है और अविद्या-मा
कूटस्थात्मा में कल्पित होने के कारण सत्यसा प्रतीत हो र

आभासे परिणामश्चे न रज्ज्वादिनिभत्ववत्।
सर्पादेश्च तथावोच मादर्शे च मुखत्ववत्॥

यदि कहो कि आभास मानने से आत्मा में परिणा
जायगा तो यह कहना उचित नहीं, जैसे रज्ज्वादि में
आदि हैं, अथवा आदर्श में मुख है, इसी प्रकार अन्तःकर
आभास है, यह आत्मा का परिणाम नहीं हो सकता।

प्रबोधेन यथा स्वाप्नं सर्वदुःखं निवर्तते।
प्रत्यगात्मधिया तद्वद् दुःखित्वं सर्वदात्मनः॥

जैसे जागने से स्वप्न के सब दुःख नष्ट हो जाते हैं,
प्रकार प्रत्यगात्मा के ज्ञान से अपने सब दुःख निवृ
जाते हैं।

शास्त्राद्ब्रह्मास्मि नान्योऽह मितिबुद्धिर्भवेद्दृढा ।
यदा युक्ता तदैवं धी र्यथा देहात्मधीरिति ॥

जब शास्त्र द्वारा "मैं ब्रह्म हूँ, अन्य नहीं हूँ"—, यह बुद्धि दृढ़ हो जाय तब जैसे अज्ञानावस्था में देह में आत्मबुद्धि है, इसी प्रकार आत्मा में ब्रह्मबुद्धि का हो जाना युक्त ही है।

यो हि यस्माद्विरक्तः स्या न्नासौ तस्मै प्रवर्तते ।
लोकत्रयाद्विरक्तत्वा न्मुमुक्षुः किमितीहते ॥

जो पुरुष जिस वस्तु से विरक्त हो जाता है वह उसके लिए प्रवृत्त नहीं होता, अतः लोकत्रय से विरक्त, मुमुक्षु पुरुष किस वस्तु की इच्छा करे ?

प्रयुज्य तृष्णाज्वरनाशकारणं चिकित्सितं ज्ञानविरागभेषजम् ।
न याति कामज्वरसंनिपातजां शरीरमालाशतयोगदुःखिताम् ॥

यदि तृष्णा-रूप ज्वर के नाश करनेवाली ज्ञान-विरागरूप औषध के प्रयोग से चिकित्सा की जाय तो मनुष्य फिर काम-ज्वर के सन्निपात की और सैकड़ों शरीरों के सम्बन्ध से होने वाले दुःखों को प्राप्त नहीं होता।

षडूर्मिमालाभ्यतिवृत्त एव यः स एव चात्मा जगतश्च नः श्रुतेः ।
प्रमाणतश्चापि मया प्रवेद्यते मुधैव तस्माच्च मनस्तवेहितम् ॥

जो छ ऊर्मिमालाओं (सुख दुःख, भूख प्यास, जन्म मरण) से रहित है वही जड़ और जङ्गम का आत्मा है, ऐसा हम लोगों की श्रुति से सिद्ध है, और अन्यान्य प्रमाणों से भी अच्छे प्रकार तुम्हें जताया जाता है, तथापि हे मन ! तू वृथा ही भटकता है।

अभावरूपस्त्वमसीह हे मनो
निरीक्ष्यमाणे न हि युक्तितोऽस्तिता ।
सतो ह्यनाशादसतोऽप्यजन्मतो
द्वयं च चेतस्तव नास्तितेष्यते ॥

हे मन ! तू अभाव-रूप है, विचार करने से तेरी स सिद्ध नहीं होती, क्योंकि सत् का नाश नहीं होता। असत् का जन्म नहीं होता, तेरे जन्म और नाश दोनों हैं। हे मन ! तेरी अभावरूपता हुए है

समाप्तम् ।

"तत्त्वोपदेशः ।"

न त्वं देहोऽसि दृश्यत्वा दुपजात्यादिमत्त्वतः ।
भौतिकत्वादशुद्धत्वा दनित्यत्वात्तथैव च ॥

तू देह नहीं है, क्योंकि देह दृश्य है, जन्मादि वाला है, पृथिव्यादि भूतों से बना है, अशुद्ध है, अनित्य है और तू तो इन धर्मों से रहित है अतः तू देह नहीं ।

अदृश्यो रूपहीनस्त्वं जातिहीनोऽप्यभौतिकः ।
शुद्धोनित्योऽसि दृग्रूपो घटो यद्वन्न दृग्भवेत् ॥

तू अदृश्य है, रूपहीन है, जन्मादि से रहित है, अभौतिक है, शुद्ध है, नित्य है और ज्ञानस्वरूप है । जैसे घट ज्ञानस्वरूप नहीं हो सकता, ऐसे ही देह भी आत्मा नहीं हो सकता ।

विश्वमात्मानुभवति तेनासौ नानुभूयते ।
विश्वं प्रकाशयत्यात्मा तेनासौ न प्रकाश्यते ।

आत्मा सब जगत् को अनुभव करता है, जगत् आत्मा को अनुभव नहीं करता, और आत्मा सब जगत् को प्रकाशित करता है, जगत् आत्मा को प्रकाशित नहीं करता ।

ईदृशं तादृशं नैत न परोक्षं सदेव यत्।
तद्ब्रह्म त्वं न देहादि दृश्यरूपोऽसि सर्वदृक्॥

तू "ऐसा" या "वैसा" नहीं, प्रत्यक्ष नहीं, पर जो सद्रूपमात्र है वह ब्रह्म तू है और देहादिदृश्य है, परन्तु दृक्रूप है।

देहेन्द्रियादिधर्मान्यः स्वात्मन्यारोपयन्मृषा।
कर्तृत्वाद्यभिमानी च वाच्यार्थस्त्वंपदस्य सः॥

जो देह इन्द्रिय आदि के धर्मों को आत्मा में मिथ्या करके कर्तृत्व आदि अभिमान करता है, वह "त्वं" वाच्य अर्थ है।

देहेन्द्रियादिसाक्षी य स्तेभ्यो भाति विलक्षणः।
स्वयं बोधस्वरूपत्वा ल्लक्ष्यार्थस्त्वंपदस्य सः॥

जो देहादि का साक्षी, देहादि से विलक्षण, स्वके स्वरूप होकर प्रकाशमान है, वह "त्वं" पद का लक्ष्यार्थ

वेदान्तवाक्यसंवेद्यं विश्वातीताक्षराद्वयम्।
विशुद्धं यत्स्वसंवेद्यं लक्ष्यार्थस्तत्पदस्य सः॥

वेदान्त वाक्यों से जानने योग्य, सम्पूर्ण धर्मों से अद्वैत, विशुद्ध जो स्वसंवेद्य (अपने अनुभव का वि वह "तत्" पद का लक्ष्य अर्थ है।

सामानाधिकरण्यं हि पदयोस्तत्त्वमोर्द्वयोः।
सम्बन्धस्तेन वेदान्तै र्ब्रह्मैक्यं प्रतिपाद्यते॥

"तत्" और "त्वं" इन दोनों पदों का परस्पर

धिकरण्य" सम्बन्ध है, वेदान्त इसी सम्बन्ध से ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हैं ।

तथैव प्रकृते तत्त्व मसीत्यत्र श्रुतौ शृणु ।
प्रत्यक्त्वादीन्परित्यज्य जीवधर्मास्त्वमः पदात् ॥
सर्वज्ञत्वपरोक्षादी न्परित्यज्य ततः पदात् ।
शुद्धं कूटस्थमद्वैतं बोधयत्यादरात्परम् ॥
तत्त्वमोः पदयोरैक्य मेवं तत्त्वमसीत्यलम् ।
इत्थमैक्यावबोधेन सम्यग्ज्ञानं दृढं नयैः ॥

इस प्रकार प्रकरणागत "तत्त्वमसि" श्रुति में भी सुनो कि "त्वम्" पद के प्रत्यक्त्वादि जीवधर्मों को और "तत्" पद के सर्वज्ञत्व तथा परोक्षत्वादि ईश्वर-धर्मों को छोड़ कर बड़े आदर से यह श्रुति, शुद्ध कूटस्थ अद्वैत को बोधन करती है। "तत्त्वमसि" यह वाक्य "तत्" और "त्वम्" पदों की एकता के बोधन में ही शक्त है, इस प्रकार न्यायों से ऐक्य-बोधन द्वारा यथार्थज्ञान दृढ़ होता है ।

प्रतिपाद्यं तदेवात्र वेदान्तैर्न द्वयं जडम् ।
सुखरूपं चिदद्वैतं दुःखरूपमसज्जडम् ॥

इस शास्त्र में यह एकत्व ही वेदान्तों के वचनोंसे प्रतिपादन किया गया है, जड़द्वैत प्रतिपाद्य नहीं। चिद्रूप अद्वैत सुखरूप है, असत् जड़ वस्तु दुःखरूप है ।

प्रविष्टो जीवरूपेण स एवात्मा भवान्परः ।
सच्चिदानन्द एव त्वं विस्मृत्यात्मतया परम् ॥

जीवभावमनुप्राप्तः स एवात्मासि बोधतः।
अद्वयानन्दचिन्मात्रः शुद्धः साम्राज्यमागतः॥

आप परब्रह्म ही इस शरीर में जीवरूप से प्रवि
हैं, आप सच्चिदानन्द स्वरूप ही हैं, परन्तु भूलकर जीव
प्राप्त हो रहे हैं। "मैं वही शुद्ध आत्मा हूँ"—पुरुष इस
अद्वय आनन्द चिन्मात्र शुद्ध साम्राज्य को प्राप्त होता है

वस्तुतो निष्प्रपञ्चोऽसि नित्यमुक्तः स्वभाव
न ते बन्धविमोक्षौ स्तः कल्पितौ तौ यतस्त्व

तू वस्तुतः निष्प्रपञ्च है, स्वभाव से नित्यमुक्त है
बन्ध और मोक्ष नहीं हैं, क्योंकि बन्ध और मोक्ष तेरे
में कल्पित हैं।

समाप्तम्

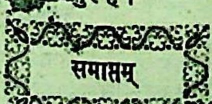
"माया-पञ्चकम् ।"

अपगतगुणवर्णजातिभेदे सुखचिति विप्रविडाद्यहंकृतिं च ।
स्फुटयति सुतदारगेहमोहं लघटितघटनापटीयसी माया ॥

माया अघटितघटनापटीयसी है, गुण वर्ण और जाति भेद से रहित सुख चित् आत्मा में ब्राह्मण वैश्य आदि रूप अहङ्कार को और पुत्र स्त्री तथा घर में मोह को उत्पन्न करा देती है। माया अघटित = जो न बन सके उसकी घटना, रचना में पटीयसी = अत्यन्त चतुर है।

विधिहरिहरविभेदमप्यखण्डे बत विरचय्य बुधानपि प्रकामम् ।
भ्रमयति हरिहरभेदभावा नघटितघटनापटीयसी माया ॥

अखण्ड आत्मा में ब्रह्मा विष्णु और महादेव के भेद को बना देती है, और जिनकी बुद्धि हरि हर के भेद से युक्त है ऐसे पण्डितों को संसार-चक्र में खूब घुमाती है। माया अघटित के घटन में अत्यन्त चतुर है।



"स्वात्म-निरूपणम्।"

स्वयमेवानुभवत्वा ग्रग्रप्येतस्य नानुभाव्यतम्।
सकृदप्यभावशङ्का न भवेद्बोधस्वरूपसत्तायाः॥

यद्यपि यह आत्मा स्वयं ही अनुभवस्वरूप है, तथा... अनुभव का विषय नहीं है, तथापि बोधस्वरूप ... अभाव की एक बार भी शङ्का नहीं होती। जो वस्तु कि... का विषय नहीं होती उसके होने में भी कोई प्र... होता है—इस प्रकार ज्ञेयत्वाभाव प्रयुक्त असद्भाव श... आत्मा के विषय में नहीं हो सकती क्योंकि आत्मा स्व... स्वरूप तथा सद्रूप है।

सति सकलदृश्यबाधे न किमप्यस्तीति लोकसिद्धं...
यत्न किमपीति सिद्धं ब्रह्म तदेवेति वेदतः सिद्धम्।

यदि यह अर्थ लोक से सिद्ध है कि सम्पूर्ण दृश्य ... होने से कुछ भी नहीं रहता, तो जो वस्तु "कुछ भी नहीं" है वही ब्रह्म है ऐसा वेद से सिद्ध है। तात्पर्य यह है कि ... "कुछ भी नहीं" इत्याकारक ज्ञान या इस ज्ञान के अनुभव क... का निषेध लोग कैसे कर सकेंगे? अतः सब पदार्थों ... कर देने पर भी आत्मा का बाध नहीं हो सकता—य... श्रुति में निर्णीत है।

अद्वैतं सुखरूपं दुःसहदुःखं सदा भवेद्द्वैतम् ।
यत्र प्रयोजनं स्यात्प्रतिपादयति श्रुतिस्तदेवासौ ॥

अद्वैत सुखरूप है, द्वैत सदा असह्य दुःखरूप है, जिसमें मनुष्य का प्रयोजन हो वही ब्रह्म है, ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है।

रज्ज्वादेरुरगाद्यैः सम्बन्धवदस्य दृश्यसम्बन्धः ।
सततमसङ्गोऽयमिति श्रुतिरप्यमुमर्थमेव साधयति ॥

जैसे रज्जु आदि का सर्प आदि के साथ कल्पित सम्बन्ध है, इसी प्रकार आत्मा का भी दृश्य के साथ कल्पित सम्बन्ध है, अतः "आत्मा सदा असङ्ग है" यह श्रुति इस बात को ही सिद्ध करती है।

तस्मिन्ब्रह्मणि विदिते विश्वमशेषं भवेदिदं विदितम् ।
कारणमृदि विदितायां घटकरकाद्या यथावगम्यन्ते ॥

उस ब्रह्म को जान लेने से इस सम्पूर्ण जगत् का ज्ञान हो जाता है, जैसे मट्टीरूप कारण को जान लेने से घट, करवा आदि कार्यों का ज्ञान हो जाता है।

चिन्मात्रममलमक्षय मद्वयमानन्दमनुभवारूढम् ।
ब्रह्मैवास्ति तदन्य न्न किमप्यस्तीति निश्चयो विदुषाम् ॥

चिन्मात्र, अमल, अक्षय, अद्वय, आनन्द, अनुभवस्वरूप ब्रह्म ही एक सत्य वस्तु है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं, ऐसा विद्वानों का निश्चय है।

अन्तरविमोहतिमिर प्रकरप्रध्वंसभानुनिकरोऽहम् ।
घटिकावासररजनी वत्सरयुगकल्पकालभेदोऽहम् ॥

निरोधे तस्मादपि रुणद्धि ष्टते। ततः समाधि
प्रज्ञा। ततः प्रज्ञा कृताः सं

इति नवो
नव:
संस्का
रा ऽऽश
यो जा
यते।
ततः
प्रज्ञा
ततश्च
संस्कारा
इति॥
अथ मनो
कारा
निरो
पूर्वचि
तं सा
ऽधिका
रं नैक
रिष्यति
इति।

मैं अत्यन्त सघन अज्ञान-रूप अन्धकार-पुञ्ज को [नष्ट]
करनेवाले सूर्य्यों का समुदाय रूप हूँ और घड़ी, दि[न]
वर्ष, युग और कल्परूप जो कालविशेष हैं सो मैं ही [हूँ]।

जलजासनादिगोचर पञ्चमहाभूतमूलभूतोऽह[म्]
जगदानन्दकरोऽहं जन्मजरामरणरोगरहितोऽ[हम्]

जो पञ्च महाभूत ब्रह्मा आदि के अधीन हैं इन [के]
मूल मैं हूँ, मैं जगत् को आनन्द करने वाला हूँ तथा
जरा, मरण और रोगों से रहित हूँ।

बद्धो भवामि नाहं वन्धान्मुक्तस्तथापि नैवा[हम्]
बोध्यो भवामि नाहं बोधोऽहं नैव बोधको ना[हम्]

मैं बद्ध नहीं हूँ, तथा वन्ध से मुक्त भी नहीं हूँ,
नहीं हूँ, न ज्ञान हूँ और न ज्ञाता हूँ।

बहुभिः किमेभिरुक्तै रहमेवेदं चराचरं विश्वम्
शीकरफेनतरङ्गाः सिन्धोरपराणि न खलु [भवन्ति]

इन बहुत वचनों के कहने से क्या? यह चराचर [विश्व]
रूप मैं ही हूँ, जैसे शीकर (फुंसार), फेन और तरङ्ग, सा[गर से]
जुदा वस्तु नहीं हैं।

मयि सुखवोधपयोधौ महति ब्रह्माण्डबुद्बुदसह[स्राणि]
मायामयेन मरुता भूत्वा भूत्वा मुहुस्तिरोधत्ते॥

सहस्रों ब्रह्माण्डरूप बुलबुले मायामयवायुसे उत्प[न्न हो]
कर मुझ महासुखबोधसमुद्र में बार बार विनष्ट होते [हैं]।

इति। नते प्रज्ञाकृताः * समाप्तम् * संस्कार
केशाद्य रेतुत्वाच्चित्तमधिकारविशिष्टं कु
र्वन्ति। चित्तं हीति चक्रार्थाय कसंदर्य...

"आत्म-बोधः ।"

तपोभिः क्षीणपापानां शान्तानां वीतरागिणाम् ।
मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽय मात्मबोधो विधीयते ॥

जिनके पाप तप से क्षीण हो चुके हैं, तथा जो शान्त वीतराग और मुमुक्षु हैं उनके लिए यह "आत्मबोध" कहा जाता है।

बोधोऽन्यसाधनेभ्योहि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ।
पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिध्यति ॥

अन्य साधनों की अपेक्षा ज्ञान साक्षात् मोक्ष का साधन है, जैसे अग्नि पाक का साधन है। ज्ञान के बिना मोक्ष सिद्ध नहीं होता।

अविरोधितया कर्म नाविद्यां विनिवर्तयेत् ।
विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसङ्घवत् ॥

कर्म, अविरोधी होने से अविद्या की निवृत्ति नहीं कर सकता, जैसे अन्धकार के समूह को प्रकाश नष्ट कर देता है, ऐसे ही विद्या अविद्या का नाश कर देती है।

परिच्छिन्न इवाज्ञाना त्तन्नाशे सति केवलः ।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ॥

=

आत्मा अज्ञान से परिच्छिन्न के समान और उसके ना[श हो] जाने पर केवल स्वयंप्रकाश प्रतीत होता है, जैसे मेघ[...] हो जाने पर सूर्य स्वतः प्रकाशमान होता है ।

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्धि निर्मलम् ।
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥

ज्ञान के अभ्यास से अज्ञान से मलिन जीव के निर्म[ल हो] जाने पर ज्ञान स्वयं नष्ट हो जाता है, जैसे निर्मली का[...] जल की गाद को बैठाकर स्वयं भी बैठ जाता है ।

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसङ्कुलः ।
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्यसद्भवेत् ॥

रागद्वेषादि से युक्त संसार स्वप्न के तुल्य है, अपने[...] में सत्य सा प्रतीत होता है और प्रबोध होने पर असत्य[...] जाता है ।

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा ।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥

जगत् शुक्तिरजत के समान, तभी तक सत्य सा भा[...] है जब तक कि सब का आश्रयभूत अद्वय ब्रह्म नहीं जाना जा[...]

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः ।
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥

स्वर्ण में कङ्कण कुण्डलादि की कल्पना के समान, स[...] स्वरूप, अनुगत, नित्य विष्णु में सब वस्तुएँ कल्पित हैं ।

यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः ।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः ॥

जैसे व्यापक आकाश अनेक प्रकार की उपाधियों से भिन्न भिन्न प्रकार का प्रतीत होता है और उन उपाधियों के दूर हो जाने पर केवल आकाशमात्र रह जाता है, ऐसे ही आत्मा भी अनेक प्रकार की उपाधियों के कारण नाना प्रकार का प्रतीत हो रहा है और उन उपाधियों के अभाव में केवल आत्मरूप रह जाता है।

नानोपाधिवशादेव जातिवर्णाश्रमादयः ।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत् ॥

जल में रस, वर्ण के भेद के समान आत्मा में नाना उपाधियों के कारण जाति वर्ण और आश्रमादि भेद कल्पित हैं।

पञ्चीकृतमहाभूत सम्भवं कर्मसञ्चितम् ।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ॥

पञ्चीकृत महाभूतों से उत्पन्न, कर्मों से सञ्चित, सुख दुःखों के भोगने का स्थान स्थूल शरीर कहलाता है।

पञ्चप्राणमनोबुद्धि दशेन्द्रियसमन्वितम् ।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ॥

पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दश इन्द्रियों से युक्त अपञ्चीकृत भूतों से उत्पन्न, भोगों के साधन को "सूक्ष्म-शरीर" कहते हैं।

अनाद्यविद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ।
उपाधित्रितयादन्य मात्मानमवधारयेत् ॥

अनादि अनिर्वचनीया अविद्या का नाम कारण शरीर है,

आत्मा को इन तीनों उपाधियों (स्थूल सूक्ष्म और का
शरीरों) से रहित समझो।

पञ्चकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः।
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादि योगेन स्फटिको यथा॥

जिस प्रकार स्फटिकमणि नीले कपड़े आदि के संयोग नीला आदि प्रतीत होता है, ऐसे ही शुद्ध आत्मा पाञ्चकोश के सम्बन्ध से उसी प्रकार का प्रतीत हो रहा है।

वपुस्तुषादिभिः कोशै र्युक्तं युक्त्यावघाततः।
आत्मानमन्तरं शुद्धं विविच्यात्तण्डुलं यथा॥

जैसे तुषआदि से युक्त धानों को कूटने से शुद्ध चा निकल आते हैं, ऐसे ही शरीरादि से युक्त आत्मा युक्ति पृथक् किया गया शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है।

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते।
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत्॥

आत्मा नित्य और सर्वगत होता हुआ भी सब जगह न भासता केवल बुद्धि में ही भासता है, जैसे स्वच्छ वस्तु ही प्रतिबिम्ब पड़ता है।

देहेन्द्रियमनोबुद्धि प्रकृतिभ्यो विलक्षणम्।
तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्या दात्मानं राजवत्सदा॥

जैसे राजा, मन्त्री आदि उच्च पदाधिकारियों से विलक्ष और उनके कार्यों का साक्षी होता है, ऐसे आत्मा भी इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा अविद्या से विलक्षण और उन वृत्तियों का साक्षी है।

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम्।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी॥

जैसे मूर्ख लोग मेघों के चलने पर चन्द्रमा को चलता हुआ मानते हैं, ऐसे ही अज्ञानियों को इन्द्रियों के व्यापारवान् होने पर आत्मा व्यापारवाला प्रतीत होता है।

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः।
स्वकीयार्थेषु वर्त्तन्ते सूर्यालोके यथा जनाः॥

जैसे लोग सूर्य का प्रकाश पाकर अपने अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, ऐसे ही आत्मचैतन्य का आश्रयण करके देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि अपने अपने कार्य्यों में प्रवृत्त होते हैं।

देहेन्द्रियगुणान्कर्मा ण्यमले सच्चिदात्मनि।
अध्यस्यन्त्यविवेकेन गगने नीलतादिवत्॥

अज्ञानी पुरुष निर्मल सच्चिदात्मा में देह और इन्द्रियों के गुणों और कर्मों को आकाश में नीलता आदि के समान अज्ञान से कल्पना कर लेते हैं।

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि।
कल्प्यन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादि यथाम्भसः॥

जैसे जलगत चन्द्र में जल के चलना—आदि धर्म कल्पना किये जाते हैं, ऐसे ही आत्मा में अज्ञान से अन्तःकरणोपाधि के कर्तृत्वादिधर्म कल्पना किये गये हैं।

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः॥

राग, इच्छा, सुख और दुःखादि, बुद्धि के होने पर हैं, सुषुप्ति में बुद्धि के नाश हो जाने से उनका भी नाश जाता है, इसलिये ये बुद्धि के ही धर्म हैं आत्मा के नहीं।

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता।
स्वभावः सच्चिदानन्द नित्यनिर्मलताऽऽत्मनः।

सूर्य के प्रकाश, जल की शीतलता और अग्नि की उ के समान आत्मा का "सच्चिदानन्द नित्य निर्मलता" स्वभाव

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम्।
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते॥

आत्मा का सच्चित् अंश और बुद्धि की वृत्ति इन दोनों मिला कर पुरुष अविवेक से "जानता हूँ" ऐसा कहता है

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जातिः
जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्त्ता द्रष्टेति मुह्यति॥

आत्मा में विकार नहीं है, बुद्धि को ज्ञान नहीं है। इन सबको मानकर कर्त्ता और द्रष्टा होकर मोह को होता है।

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत्।
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत्॥

जैसे रज्जु को सर्प जान कर भय होता है, ऐसे ही आ को जीव मान कर भय होता है, मैं जीव नहीं हूँ किन्तु आत्मा हूँ इस प्रकार यदि जान ले तो निर्भय हो जाय।

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनीन्द्रियाणि हि।
दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभासते॥

जैसे दीपक घटादि को प्रकाशित करता है ऐसे—एक आत्मा ही बुद्धि आदि इन्द्रियों को प्रकाशित करता है, परन्तु आत्मा उन जड़ बुद्धि आदिकों से प्रकाशित नहीं होता।

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मनः ।
न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मप्रकाशने ॥

जैसे दीपक को अपने प्रकाशन के लिये अन्य दीपक की आवश्यकता नहीं होती इसी प्रकार स्वात्मरूप ज्ञान के लिये अन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती, क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है और स्वयं प्रकाशमान है।

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेतीतिवाक्यतः ।
विद्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥

"नेति नेति" इस वाक्य से सब उपाधियों का निषेध करके महावाक्यों से जीव और परमात्मा की एकता को जानो।

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत् क्षरम् ।
एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥

अविद्या से कल्पित शरीरादि दृश्य, बुलबुलों के समान नाशवान् हैं, इनसे विलक्षण "अहं ब्रह्म" इस प्रकार निर्मल आत्मा को जानो।

देहान्यत्वान्न मे जन्म जराकार्श्यलयादयः ।
शब्दादिविषयैः सङ्गो निरिन्द्रियतया न च ॥

मैं देह से भिन्न हूँ इसलिये मेरा जन्म, बुढ़ापा, दुर्बलता मरणादि नहीं हैं, और निरिन्द्रिय होने से शब्दादि विषयों के साथ मेरा सम्बन्ध भी नहीं है।

अमनस्त्वान्न मे दुःख रागद्वेषभयादयः ।
अप्राणोह्यमनाः शुभ्र इत्यादि श्रुतिशासनात् ॥

"प्राण से रहित, मन से शून्य और शुद्ध" इत्यादि के उपदेश से मैं मन से रहित हूँ, इसलिये दुःख राग भय आदि मुझ में नहीं हैं ।

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जन
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः

मैं निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य निर्विकल्प, निरञ्जन, निर्विकार निराकार, नित्यमुक्त और निर्मल हूँ ।

अहमाकशवत्सर्व बहिरन्तर्गतोच्युतः ।
सदा सर्वसमः शुद्धो निःसङ्गो निर्मलोऽचलः ॥

मैं आकाश के समान सब के बाहर भीतर व्याप्त अच्युत, सब में तुल्य, शुद्ध, निःसङ्ग, निर्मल और अचल ।

नित्यशुद्धविमुक्तैक मखण्डानन्दमद्वयम् ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत् परं ब्रह्माहमेव तत् ॥

नित्य, शुद्ध, विमुक्त, एक, अखण्ड, आनन्द, अद्वय, सत्य ज्ञान और अनन्त जो परब्रह्म है—वह मैं ही हूँ ।

एवं निरन्तराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना ।
हरत्यविद्याविक्षेपान् रोगानिव रसायनम् ॥

जैसे रसायन रोगों को नष्ट करती है वैसे ही "मैं ब्रह्म हूँ"—यह वासना निरन्तर अभ्यस्त की हुई अविद्या विक्षेपों को हरती है ।

विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेन्द्रियः ।
भावयेदेकमात्मानं तमनन्तमनन्यधीः ॥

एकान्त देश में बैठ कर विरक्त पुरुष इन्द्रियों को जीत कर तथा मन को एकाग्र करके अनन्तस्वरूप एक आत्मा का चिन्तन करे।

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः ।
भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ॥

बुद्धिमान् पुरुष बुद्धि से सम्पूर्ण दृश्य को आत्मा में लीन करके, आकाश के समान एक निर्मल आत्मा का चिन्तन करे।

रूपवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित् ।
परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते ॥

तत्त्ववेत्ता पुरुष रूप वर्ण आदि सब धर्मों को छोड़ कर परिपूर्ण चिदानन्द स्वरूप में स्थित रहता है।

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परमात्मनि न विद्यते ।
चिदानन्दैकरूपत्वा दीप्यते स्वयमेव हि ॥

आत्मा में ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप भेद नहीं है तथा चिदानन्दैकरूप होने के कारण अपने आप ही प्रकाशित है।

एवमात्मारणौ ध्याने मथने सततं कृते ।
उदितावगतिज्वाला सर्वाज्ञानेन्धनं दहेत् ॥

इस प्रकार आत्मरूप अरणी पर, ध्यान का लगातार मथन करने से उत्पन्न हुई ज्ञानरूप ज्वाला समस्त अज्ञानरूप ईंधन को जला देती है।

अरुणेनेव बोधेन पूर्वसन्तमसे हृते ।
तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥

जैसे अरुण (बाल सूर्य्य) पहले अन्धकार को दूर क है और फिर सूर्य्य अपने आप उदय हो जाता है, इसी ज्ञान से पहले अज्ञान नष्ट हो जाता है और फिर अपने आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है ।

आत्मा तु सततं प्राप्तो ऽप्यप्राप्तवदविद्यया ।
तन्नाशे प्राप्तवद्भाति स्वकण्ठाभरणं यथा ॥

अपने गले के हार के समान आत्मा सदा प्राप्त है अज्ञान से अप्राप्त सा प्रतीत होता है, और अज्ञान के प्राप्तवत् प्रतीत होता है ।

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रान्त्या कृता ब्रह्मणि जीव
जीवस्य तात्त्विके रूपे तस्मिन् दृष्टे निवर्तते ॥

स्थाणु में पुरुष-बुद्धि के समान, ब्रह्म में भ्रान्ति से बुद्धि हो रही है, जीव के वास्तविक रूप को जान जीवपन निवृत्त हो जाता है ।

तत्त्वस्वरूपानुभवा दुत्पन्नं ज्ञानमञ्जसा ।
अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत् ॥

तत्त्वस्वरूप के अनुभव से उत्पन्न हुआ ज्ञान "अहं रूप अज्ञान को दिशा के भ्रम के समान शीघ्र नष्ट कर दे

सम्यग्विज्ञानवान् योगी स्वात्मन्येवाखिलं
एकं च सर्वमात्मान मीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥

सम्यक् विज्ञानवान् योगी अपने आत्मा में ही सर्व संसार को विद्यमान देखता है और ज्ञानचक्षु से एक और सर्वमय आत्मा का साक्षात्कार करता है ।

आत्मैवेदं जगत्सर्वं मात्मनोऽन्यन्न विद्यते ।
मृदो यद्वद्घटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते ॥

जैसे सब घटआदि मृद्विकार मृत्तिका से भिन्न नहीं हैं, ऐसे ही यह सब जगत् आत्मा ही है, उससे भिन्न नहीं है, इस लिये ज्ञानी सब संसार को अपना स्वरूप ही समझता है ।

जीवन्मुक्तस्तु तद्विद्वान् पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत् ।
सच्चिदानन्दरूपत्वा द्भवेद्‌ भ्रमरकीटवत् ॥

आत्मा को जाननेवाला जीवन्मुक्त, पूर्व उपाधि के गुणों को छोड़ देता है, और भ्रमरकीट के समान सच्चिदानन्द रूप हो जाता है ।

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान् ।
योगी शान्तिसमायुक्तो ह्यात्मारामो विराजते ॥

अज्ञान-समुद्र को तैर कर तथा रागद्वेषादि राक्षसों को मार कर शान्ति से युक्त योगी आत्मा में ही मग्न होकर विराजता है ।

उपाधिस्थोपि तद्धर्मैं र्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः ।
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठे दसक्तो वायुवच्चरेत् ॥

सर्वज्ञ मुनि उपाधि में स्थित होता हुआ भी आकाश के समान उसके धर्मों से लिप्त न होकर मूर्ख सा बन कर रहता है और निःसङ्ग होकर वायु के समान विचरता है ।

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्मसुखनिर्वृतः ।
घटस्थदीपवत् स्वच्छः स्वान्तरेव प्रकाशते ॥

योगी पुरुष बाह्य, अनित्य सुखों में आसक्ति को
आत्मसुख से शान्त होकर, घटस्थदीप के समान, स्व
अपने अन्दर ही प्रकाशमान होता है ।

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः ।
जले जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसि वा यथा ॥

मुनि सम्पूर्ण रूप से उपाधि के नष्ट हो जाने पर
प्रवेश कर जाता है, जैसे जल में जल, आकाश में
तथा तेज में तेज मिल जाता है ।

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम्
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥

जिसकी प्राप्ति से बढ़ कर अन्य प्राप्ति नहीं, जिस
से बढ़ कर दूसरा सुख नहीं तथा जिसके ज्ञान से
दूसरा ज्ञान नहीं है, वही ब्रह्म है ऐसा निश्चय करो ।

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः ।
यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञेयं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥

जिसको देखकर और कुछ देखने योग्य नहीं
जिसको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता तथा जिसे
कर दूसरा जानने योग्य नहीं रहता, वही ब्रह्म है ऐसा

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्दमव्ययम् ।
अनन्तं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥

जो इधर उधर, ऊपर नीचे, सर्वत्र परिपूर्ण है तथा चिदानन्द, अव्यय, अनन्त, नित्य और एक है, वही ब्रह्म है ऐसा जानो ।

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदान्तैर्लक्ष्यतेऽव्ययम् ।
अखण्डानन्दमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥

वेदान्त जिसे सर्वरूप से दिखाते हैं तथा जो अव्यय, अखण्ड, आनन्द और एक है उसे ब्रह्म समझो ।

अखण्डानन्दरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः ।
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः ॥

अखण्डानन्दरूप उस ब्रह्मानन्द के अंश का आश्रय लेकर ब्रह्मा आदि समस्त प्राणी न्यूनाधिक—भाव से आनन्दयुक्त रहे हैं ।

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ॥

सब पदार्थ उससे युक्त हैं और सब व्यवहार उसी से सम्बद्ध हैं, इसलिये दूध में घी के समान ब्रह्म सर्वगत है ।

अनण्वस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् ।
अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥

अनणु (असूक्ष्म), अस्थूल, अह्रस्व, अदीर्घ, अज, अव्यय, अरूप, निर्गुण, अवर्ण और अनाम (नाम रहित) ब्रह्म है ऐसा समझो ।

यद्भासा भासतेऽर्कादि भास्यैर्यत्तु न भास्यते ।
येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥

जिसके प्रकाश से सूर्य्य आदि प्रकाशमान हो रहे सूर्य्य आदि से जो प्रकाशित नहीं होता है तथा जि सब संसार प्रतीत हो रहा है, वही ब्रह्म है ऐसा जानो।

स्वयमन्तर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत्।
ब्रह्म प्रकाशते वह्नि प्रतप्तायसपिण्डवत्॥

जैसे अग्नि तपे हुए लोहे के पिण्ड के भीतर बाह होकर उसे प्रकाशित करता है, इसी प्रकार ब्रह्म स्वयं और बाहर व्याप्त होकर समस्त जगत् को प्रकाशित हुआ प्रकाशमान है।

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न किञ्चन।
ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका।

ब्रह्म जगत् से विलक्षण है, ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं ब्रह्म से भिन्न कुछ भासता है तो वह मरुमरीचिका के मिथ्या है।

दृश्यते श्रूयते यद्य ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत्।
तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्॥

जो जो पदार्थ दिखाई या सुनाई देते हैं वे ब्रह्म नहीं हैं और तत्त्वज्ञान से वही सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते।
अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत्॥

जैसे अन्धा प्रकाशमान सूर्य को नहीं देखता, सर्वव्यापक सच्चिदात्मरूप परमात्मा को ज्ञानचक्षु ही है, अज्ञानचक्षु नहीं।

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः ।
जीवः सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद् द्योतते स्वयम् ॥

श्रवणादि द्वारा उद्दीप्त (प्रचण्ड) ज्ञान अग्नि से तपाया गया जीव सब अविद्यारूप मलों से छूट कर स्वर्ण के समान स्वयं प्रकाशमान हो जाता है ।

हृदाकाशोदितोह्यात्म बोधभानुस्तमोपहृत् ।
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥

हृदय के आकाश में उदय हुआ आत्मबोध-भानु अन्धकार का नाशक, सर्वव्यापी और सर्वधारी प्रतीत होता है और सब को प्रकाशित करता है ।

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं
शीतादिहृन्नित्यसुखं निरञ्जनम् ।
यः स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः
स सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत् ॥

दिशा, देश, काल आदि से अनवच्छिन्न, सर्वगत और शीत आदि के हरने वाले नित्य सुखरूप, निरञ्जन, स्वात्मतीर्थ को जो पुरुष भजता है, वह अक्रिय, सर्वज्ञ, सर्वगत और अमृत हो जाता है ।

समाप्तम्

२१म) दृशि स्वरूपस्य पुरुषस्य कर्मरूपताम् नं दृश्यमिति तदर्थत्वं दृश्यस्य ... भवतीत्यर्थः ॥ तत्स्वरूपं तु पररूपेण प्रति... बुद्ध्यात्मकं भोगापवर्गार्थतां कर्तव्या स्वेन ॥ न दृश्यमिति इति स्वरूपहानादस्य नाशः प्राप्तो न तु ... ॐ विनश्यति

२१वी स्वरूपो

"शत-श्लोकी ।"

आत्मा चिद्वित्सुखात्मानुभवपरिचितः सर्वदेहादिय-
सत्येवं मूढबुद्धिर्भजति ननु जनोऽनित्यदेहात्मबुद्धि
बाह्योऽस्थिस्नायुमज्जापलरुधिरवसाचर्ममेदोयुगन्त-
र्विण्मूत्रश्लेष्मपूर्णं स्वपरवपुरहो संविदित्वापि भूयः

आत्मा सत् चित् आनन्दस्वरूप है, स्वानुभवगम्य है, देह आदि का नियमन करनेवाला है, ऐसा होते हुए भी पुरुष अनित्य देह आदि में आत्मबुद्धि करता है। देह बाहर से जो हड्डी, स्नायु (रगें और पट्ठे=नस, मज्जा, मांस, लोहू, चर्बी, चमड़ा और मेद से युक्त है, अन्दर से विष्ठामूत्र कफ आदि से परिपूर्ण है, ऐसे इस और पराये देह को जानकर भी लोग आत्मत्व और... को करते हैं—बड़ा आश्चर्य है !

यत्प्रीत्या प्रीतिपात्रं तनुयुवतितनूजार्थमुख्यं स तस्मा-
त्प्रेयानात्माथ शोकास्पदमितरदतः प्रेय एतत्कथं स्या-
भार्याद्यं जीवितार्थी वितरति च वपुः स्वात्मनः श्रेय-
स्तस्मादात्मानमेव प्रियमधिकमुपासीत विद्वान् चान्य-

देह, युवती, पुत्र, धन आदि पदार्थ जिसकी प्रीति साधन होने से प्रेम के पात्र हैं, वह आत्मा देहादि से

न्यथाऽनुभवः ॥ मा रह पुरुषः स्वामी दृश्येन स्वेन दर्शनार्थं संयोगः तस्मा...

प्यारा है। इस आत्मा से भिन्न वस्तु (देहादि) शोक का विषय है अतः ये देहादि प्रिय कैसे हो सकते हैं? जीवन की इच्छा रखता हुआ पुरुष भार्य्या आदि को दे डालता है और अपने कल्याण की इच्छा से देह को भी परित्याग कर देता है, अतः विद्वान् पुरुष को चाहिए कि सब से अधिक प्रिय आत्मा की ही उपासना करे, अन्य वस्तु की नहीं।

वैराजव्यष्टिरूपं जगदखिलमिदं नामरूपात्मकं स्या-
दन्तःस्थप्राणमुख्यात्प्रचलति च पुनर्वेत्ति सर्वान्पदार्थान्।
नायं कर्त्ता न भोक्ता सवितृवदिति यो ज्ञानविज्ञानपूर्णः
साक्षादित्थं विजानन्व्यवहरति परात्मानुसन्धानपूर्णः ॥

यह जितना नाम-रूपात्मक संसार है, सब विराड् का व्यष्टिरूप है। जब पुरुष अन्तःस्थ मुख्यप्राण (स्वात्मा) से विमुख होता है तब सब सांसारिक पदार्थों को जानता है। सूर्य के समान यह आत्मा न कर्त्ता है न भोक्ता है—इस प्रकार के ज्ञान विज्ञान से जो पूर्ण है और साक्षात् अपने स्वरूप को जानता हुआ तथा परब्रह्म का ध्यान करता हुआ व्यवहार करता है वही मुमुक्षु पुरुष है।

भुञ्जानः स्वप्नराज्यं स सकलविभवो जागरं प्राप्य भूयो
राज्यभ्रष्टोऽहमित्थं न भजति विषयं तन्मृषा मन्यमानः।
स्वप्ने कुर्वन्नगम्यागमनमुखमघं तेन न प्रत्यवायी
तद्वज्जाग्रद्दशायां व्यवहृतिमखिलां स्वप्नवद्विस्मरेच्चेत् ॥

सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य सहित स्वप्नराज्य को भोगता हुआ पुरुष जब जागर को प्राप्त होता है तब उस स्वप्नराज्य को झूठा समझ कर "मैं राज्यभ्रष्ट हुआ हूँ"—इत्याकारक शोक नहीं

करता। स्वप्न में अगम्यागमन आदि पाप को करके ... से पुरुष पापभागी नहीं होता। इसी प्रकार जाग्रत् ... यदि सम्पूर्ण व्यवहार को स्वप्न के समान भूल जाय तो फिर जन्म मरण आदि दुःखों को प्राप्त नहीं हो।

अपनी स्त्री को छोड़ कर पराई स्त्री के पास जाना ... म्यागमन है।

स्वप्नावस्थानुभूतं शुभमथ विषमं तन्मृषा जागरे स्या-
ज्जाग्रत्यां स्थूलदेहव्यवहृतिविषयं तन्मृषा स्वापकाले।
इत्थं मिथ्यात्वसिद्धावनिशमुभयथा सज्जते तत्र मूढः
सत्ये तद्भासकेऽस्मिन्निह हि कुत इदं तन्न विद्मो वयं ...

स्वप्न अवस्था में जो कुछ शुभ अथवा अशुभ अनु... भासता है, वह सब जागरण काल में झूठा हो जाता है ... जागते समय में स्थूल देह से जो कुछ व्यवहार ... तथा विषय प्रतीत होता है वह सब स्वप्नकाल में ... सिद्ध होता है। इस प्रकार मिथ्यात्वनिश्चय होते ... मूढ़ पुरुष दिन रात दोनों दशाओं में तत्तद्विषयों में ... होता रहता है और इन सबका प्रकाशक जो सत्य आ... उस आत्मा में आसक्त नहीं होता, इसका रहस्य ... जानते।

ओतः प्रोतश्च तन्तुष्विह विततपटश्चित्रवर्णेषु चित्र-
स्तस्मिञ्जिज्ञास्यमाने ननु भवति पटः सूत्रमात्रावशेषः।
तद्वद्विश्वं विचित्रं नगनगरनरग्रामपश्वादिरूपं
प्रोतं वैराजरूपे स वियति तदपि ब्रह्मणि प्रोतमोतं ...

चित्रवर्ण के तन्तुओं में विशाल वस्त्र ओत प्रोत ...

ताने बाने में सङ्कुठित रहता है), यदि उस पट के विषय में चार किया जाय तो वह पट केवल सूत्रशेष ही प्रतीत ता है। इसी प्रकार यह पर्वत, नगर, नर, ग्राम, पशु आदि प विचित्र जगत् विश्वानर के रूप में ओत प्रोत है तथा राट् पुरुष आकाश (हिरण्यगर्भ) में और आकाश ब्रह्म में त प्रोत है। अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त उस जगत् का स्वरूप द्ध नहीं होता।

एको भानुस्तटस्थः प्रतिफलनवशाद्यस्त्वनेकोदकान्त-
र्नानात्वं यात्युपाधि-स्थिति-गतिसमतां चापि तद्वत्परात्मा।
भूतेषूच्चावचेषु प्रतिफलित इवाभाति तावत्स्वभावा-
वच्छिन्नो यः परन्तु स्फुटमनुपहतो भाति तावत्स्वभावैः ॥

जैसे आकाशमण्डल-स्थित एक सूर्य अनेक जलों में प्रति-बिम्बन होने के कारण नानाभाव को तथा जलपात्रों की स्थिति और गति की समता को प्राप्त होता है। इसी प्रकार आत्मा उत्तम अधम भूतों में प्रतिबिम्बित हुआ सा प्रतीत होता है और तत्तद् भूतों के स्वभावों से युक्त हुआ सा भी जान पड़ता है, परन्तु विचारपूर्वक देखा जाय तो तत्तत्स्व-भावों से रहित है।

तत्सत्यं यत्त्रिकालेष्वनुपहतमदः प्राणदिग्व्योममुख्यं
यस्मिन्विश्रान्तमास्ते तदिह निगदितं ब्रह्म सत्यस्य सत्यम्।
नास्त्यन्यत्किञ्च यद्वत्परमधिकमतो नाम सत्यस्य सत्यं
सच्च त्यच्चेति मूर्तांद्युपहितमवरं सत्यमस्यापि सत्यम् ॥

त्रिकाल में नष्ट न होने वाले यह प्राण दिशा आकाशादि जो पदार्थ हैं लोक में उन्हें सत्य कहते हैं और यह प्राण आदि

जिसके आश्रय स्थित हैं श्रुति उस ब्रह्म को सत्य
कहती है, यतः ब्रह्म से बढ़ कर और कोई श्रेष्ठ वस्तु
अतः ब्रह्म सत्य का सत्य है। सत् और त्यत् (स्थू
मूर्त [illegible] उपाधि से युक्त जो निकृष्ट (व्यावहारि
है—उसकी अपेक्षा से भी यह पारमार्थिक सत्य
इसलिये ब्रह्म को सत्य का सत्य कहा गया है।

भूतेष्वात्मानमात्मन्यनुगतमखिलं भूतजातं प्रपश्ये
त्प्रायः पाथस्तरङ्गान्वयवदथ चिरं सर्वमात्मैव प
एकं ब्रह्माद्वितीयं श्रुतिशिरसि मतं नेह नानास्ति
न्मृत्योराप्नोति मृत्युं स इह जगदिदं यस्तु नानेव

भूतों में आत्मा को और आत्मा में समस्त भूतों
गत जाने, जैसे तरङ्ग-समुदाय प्रायः जलस्वरूप है
सब वस्तु आत्मस्वरूप ही है, इस प्रकार आत्मसा
पर्यन्त ध्यान करे। एक अद्वैत ब्रह्म ही वेदान्तों में क
गया है, इस ब्रह्म में घटपटादि भेदवान् वस्तु नहीं
इस जगत् को ब्रह्म से भिन्न देखता है उस पुरुष को
मृत्यु प्राप्त होती है।

यावान्पिण्डो गुडस्य स्फुरति मधुरिमैवास्ति सर्वो
न्यावान्कर्पूरपिण्डः परिणमति सदामोद एवात्र त
विश्वं यावद्विभाति द्रुमनगनगरारामचैत्याभिरामं
तावच्चैतन्यमेकं प्रविकसति यतोऽन्ते तदात्मावशेषम्

जितनी बड़ी गुड़ की भेली हो वह सब की स
रूप ही है, जितना टुकड़ा कपूर का हो वह उतना
स्वरूप ही है। वृक्ष, पर्वत, नगर, बाग, चैत्य (बौद्ध

(मादि) आदि से रमणीय यह जितना जगत् भास रहा है वह सब एक चैतन्य स्वरूप है, क्योंकि प्रलय काल में यह सम्पूर्ण संसार आत्मशेष ही रह जाता है ।

दृष्टः साक्षादिदानीमिह खलु जगतामीश्वरः संविदात्मा
विज्ञातः स्थाणुरेको गगनवदभितः सर्वभूतान्तरात्मा ।
दृष्टं ब्रह्मातिरिक्तं सकलमिदमसद्रूपमाभासमात्रं
शुद्धं ब्रह्माहमस्मीत्यविरतमधुनात्रैव तिष्ठेदनीहः ॥

ज्ञानस्वरूप, जगत् के अधीश्वर आत्मा का, इस समय इसी देह में साक्षात् दर्शन कर लिया । आकाश के समान सर्वव्यापक, सब भूतों के अन्तरात्मा, एक नित्य ब्रह्म जान लिया । यह भी जान लिया कि ब्रह्म से भिन्न यह सकल संसार असद्रूप है और आभासमात्र है । अब हमें निराकाङ्क्ष होकर निरन्तर "मैं शुद्ध ब्रह्म हूँ" इसी निष्ठा में रहना चाहिए ।

मायाध्यासाश्रयेण प्रविततमखिलं यन्मया तेन मत्स्था-
न्येतान्येतेषु नाहं यदपि हि रजतं भाति शुक्तौ न रौप्ये ।
शुक्त्यंशस्तेन भूतान्यपि मयि न वसन्तीति विश्वग्विनेता
माहास्मादृश्यजातं सकलमपि मृषैवेन्द्रजालोपमेयम् ॥

मैंने ही अपनी माया में अध्यास का अवलम्बन करके इस सम्पूर्ण संसार का विस्तार किया है, इसलिये आकाश आदि सब मुझमें स्थित हैं, मैं इनमें स्थित नहीं हूँ, जैसे चाँदी शुक्ति में भासती है, चाँदी में शुक्त्यंश नहीं भासता, इसी प्रकार भूत भी परमार्थरूप से मेरे स्वरूप में वास नहीं करते,

इस बात को हमारे ब्रह्ममूर्ति श्री ६ गुरु जी महाराज कि यह सारा दृश्यवर्ग झूठा है और इन्द्रजाल के स

यः प्रैत्यात्मानभिज्ञः श्रुतिविदपि तथा कर्मकृत्कर्म
नाशः स्यादल्पभोगात्पुनरवतरणे दुःखभोगो म
आत्माभिज्ञस्य लिप्सोरपि भवति महाञ्शाश्वतः
स्वात्मा तस्मादुपास्यः खलु तदधिगमे सर्वसौख्यान्

आत्मा को न जानने वाला पुरुष चाहे वेदज्ञ भी वह तदनुसार कर्म करते करते मरता है और के अनन्तर जब उसके कर्म का नाश होता है, तो शेष कर्मानुसार फिर जन्म लेकर महादुःख को प्राप्त और आत्मज्ञ पुरुष चाहे कामनावान् भी हो तो भी रहनेवाला महान् मोक्षरूप भोग ही प्राप्त होता है, को ही जानना चाहिए, क्योंकि उसको जानने से हुए भी सब सुख प्राप्त होते हैं ।

तद्ब्रह्मैवाहमस्मीत्यनुभव उदितो यस्य कस्यापि
पुंसः श्रीसद्गुरूणामतुलितकरुणापूर्णपीयूषदृष्ट्या
जीवन्मुक्तः स एव भ्रमविधुरमना निर्गतेऽनाद्युपा
नित्यानन्दैकधाम प्रविशति परमं नष्टसंदेहवृत्तिः ॥

श्री सद्गुरुओं की अपार करुणापूर्ण अमृतमयी जिस किसी पुरुष को "वह ब्रह्म मैं ही हूँ" इस प्र ज्ञान हो गया है वही निर्भ्रान्त-हृदय जीवन्मुक्त पुरुष इस अनादि अविद्या उपाधि के नष्ट हो जाने पर सन्देहों से रहित होकर नित्य आनन्द एक परम धाम को प्राप्त होता है ।

रज्ज्वज्ञानाद्भुजङ्गस्तदुपरि सहसा भाति मन्दान्धकारे
स्वात्माज्ञानात्तथासौ भृशमसुखमभूदात्मनो जीवभावः ।
आप्तोक्त्याहिभ्रमान्ते स च खलु विदिता रज्जुरेका तथाहं
कूटस्थो नैव जीवो निजगुरुवचसा साक्षिभूतः शिवोऽहम् ॥

जैसे मन्दान्धकार में रज्जु के अज्ञान से भुजङ्ग, रज्जु में ही एकाएक भासने लगता है, वैसे ही अपने आत्मा के अज्ञान से जीव अत्यन्त दुःखद जीवभाव को प्राप्त हुआ है। जैसे आप्त पुरुष के वचन को सुन कर सर्प के भ्रम का नाश होने के पश्चात् केवल रस्सी ही रह जाती है ऐसे ही अपने श्रीगुरु के वचन को सुन कर मैं जीव नहीं हूँ किन्तु कूटस्थ साक्षिभूत शिव हूँ।

जीवात्मब्रह्मभेदं दलयति सहसा यत्प्रकाशैकरूपं
विज्ञानं तच्च बुद्धौ समुदितमतुलं यस्य पुंसः पवित्रम् ।
माया तेनैव तस्य क्षयमुपगमिता संसृतेः कारणं या
नष्टा सा कायकर्त्री पुनरपि भविता नैव विज्ञानमात्रात् ॥

जीवात्मा और ब्रह्म के भेद को केवल प्रकाशरूप जो विज्ञान शीघ्र दलन कर देता है, ऐसा अतुल पवित्र विज्ञान जिस पुरुष के अन्तःकरण में उत्पन्न हुआ है उस पुरुष की अविद्या (जो संसार का कारण थी) उसी विज्ञान से नष्ट हो गई और उसी विज्ञान के कारण से ही वह शरीर को देनेवाली अविद्या नष्ट होकर फिर उत्पन्न न होगी।

विश्वं नेति प्रमाणाद्विगलितजगदाकारभानस्त्यजेद्वै
पीला यद्वत्फलाम्भस्त्यजति च सुतरां तत्फलं सौरभाढ्यम् ।

सम्यक्सच्चिदनेकामृतसुखकवलास्वादपूर्णो हृदासौ
ज्ञात्वा निःसारमेवं जगदखिलमिदं स्वप्रभः शान्तचित्त
...॥

"स्थूल सूक्ष्म रूप संसार नहीं है" इस प्रमाण से जिस पुरुष की जगत् की प्रतीति नष्ट हो गई है वह ...रूप को अवश्य छोड़ देता है। जैसे पुरुष फल के रस का पान करके उस सुगन्धित फल को सर्वथा परित्याग कर देता है ऐसे ही सच्चिदानन्द, केवल, सुखरूप अमृत के पूर्ण आस्वाद से तृप्त स्वप्रकाशमान और शान्तचित्त पुरुष सकल जगत् को अच्छे प्रकार निःसार जान कर अव... त्याग देता है।

क्षीयन्ते चास्य कर्माण्यपि खलु हृदयग्रन्थिरुद्भिद्यते
छिद्यन्ते संशया ये जनिमृतिफलदा दृष्टमात्रे परेशे।
तस्मिंश्चिन्मात्ररूपे गुणमलरहिते तत्त्वमस्यादि लक्ष्ये
कूटस्थे प्रत्यगात्मन्यखिलविधिमनोगोचरे ब्रह्मणीशे॥

चिन्मात्रस्वरूप, गुणों (सत्त्व, रजः, तमः) के मल से र... "तत्त्वमसि" आदि महावाक्यों के लक्ष्यार्थ, कूटस्थ, प्रत्यग... सम्पूर्ण विधि शास्त्रों और मन के अगोचर, ब्रह्म, ईश, ... आत्मा के साक्षात्कारमात्र से ही इस पुरुष के कर्म क्षीण जाते हैं, हृदय की गाँठ छूट जाती है और जन्म मरण फल के देनेवाले जो संशय हैं वे अवश्य विनष्ट हो जाते

आदौ मध्ये तथान्ते जनिमृतिफलदं कर्ममूलं विशालं
ज्ञात्वा संसारवृक्षं भ्रममदमुदिताशोकतानेकपत्रम्।

कामक्रोधादिशाखं सुतपशुवनिताकन्यकापत्तिसङ्घं
छित्वासङ्गासिनैनं पटुमतिरभितश्चिन्तयेद्वासुदेवम् ॥

आदि, मध्य और अन्त में जन्म तथा मृत्यु रूप फल को देनेवाले, कर्म रूप मूल वाले, भ्रम, मद, मुदिता और शोकता-रूप अनेक पत्तों वाले, काम क्रोध आदि शाखाओं वाले, पुत्र पशु स्त्री कन्या आदि पत्तिसमुदाय से युक्त इस विशाल संसार-वृक्ष को जान कर तथा असङ्गरूप खड्ग से काट कर, चतुरमति पुरुष सर्व प्रकार से वासुदेव का चिन्तन करे।

समाप्तम्

"पञ्चदशी।"

-----•-----

यथामुञ्जादिषीकैव मात्मा युक्त्या समुद्धृतः।
शरीरत्रितयाद्धीरैः परं ब्रह्मैव जायते ॥

युक्तिपूर्वक जैसे मुञ्ज में से इषीका = तीली निकाली है ऐसे ही अन्वयव्यतिरेकरूप युक्ति से ब्रह्मचर्यादि सम्पन्न पुरुषों द्वारा तीनों (कारण, सूक्ष्म और स्थूल) में से पृथक् किया गया आत्मा परब्रह्मरूप ही हो जाता है।

परोक्षं ब्रह्मविज्ञानं शाब्दं देशिकपूर्वकम्।
बुद्धिपूर्वकृतं पापं कृत्स्नं दहति वह्निवत् ॥

श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरुमुख से प्राप्त और "सत्यमनन्तं" इत्यादि शास्त्र से जन्य जो परोक्ष ब्रह्मज्ञान है बुद्धिपूर्वक किये गये समस्तपापों को अग्नि के समान कर देता है।

अपरोक्षात्मविज्ञानं शाब्दं देशिकपूर्वकम्।
संसारकारणाज्ञान तमसश्चण्डभास्करः ॥

गुरु द्वारा प्राप्त जो तत्त्वमस्यादि महावाक्यजन्य रोक्ष (संशय विपर्यय रहित प्रत्यक्ष) आत्मज्ञान है वह

के कारणीभूत अज्ञानमय अन्धेरे के लिये प्रचण्डसूर्य के समान है ।

भूतभौतिकमायाना मसत्त्वेऽत्यन्तवासिते ।
सद्वस्त्वद्वैतमित्येषा धीर्विपर्येति न क्वचित् ॥

भूतों (आकाशादिकों), भौतिकों (ब्रह्माण्डादिकों), तथा इनकी कारणीभूत माया के मिथ्यात्व का चित्त में अत्यन्त दृढ़ निश्चय हो जाने पर सद्वस्तुविषयक अद्वैतबुद्धि कभी नष्ट नहीं होती ।

द्वैतावज्ञा सुस्थिता चे दद्वैते धीः स्थिरा भवेत् ।
स्थैर्ये तस्याः पुमानेष जीवन्मुक्त इतीर्यते ॥

यदि द्वैत के विषय में अनादर "द्वैत मिथ्या है" ऐसी बुद्धि दृढ़ हो जाय तो अद्वैतबुद्धि स्थिर हो जायगी, अद्वैत-बुद्धि के स्थिर हो जाने पर यह पुरुष "जीवन्मुक्त" नाम से पुकारा जाता है ।

यस्मिन्यस्मिन्नस्ति लोके बोधस्तत्तदुपेक्षणे ।
यद्बोधमात्रं तद्ब्रह्म त्येवंधीर्ब्रह्मनिश्चयः ॥

लोक में जिस जिस वस्तु का बोध होता है उस उस वस्तु को छोड़ कर जो बोधमात्र शेष स्फुरण हो रहा है वही ब्रह्म है, ऐसी बुद्धि को ही "ब्रह्मज्ञान" कहते हैं ।

पुत्रादेरविवक्षायां न पिता न पितामहः ।
तद्वन्नेशो नापि जीवः शक्तिकोशाऽविवक्षणे ॥

जैसे पुत्र आदि की अविवक्षा (उपेक्षा) से न पिता है न पितामह है, ऐसे ही अज्ञान और कोशों की अविवक्षा से न ईश्वर है न जीव ।

ऽ परात्मा पूर्णो ध्यानम्॥ टी राकज्ञाना
राकग्राम

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां धीमयो जीवबन्धकृत्।
सत्यस्मिन् सुखदुःखे स्त स्तस्मिन्नसति न द्वयम्।

अन्वयव्यतिरेक-न्याय से मानस-प्रपञ्च ही जीव बन्धन का हेतु है क्योंकि मानसप्रपञ्च के होने से ही सुखदुःख रूप संसार होता है और मानस-प्रपञ्च के न होने से सुख दुःख नहीं होता। ("जिसकी सत्ता से जिसकी सत्ता" अन्वय है। "जिसके अभाव से जिसका अभाव" व्यतिरेक है।)

असत्यपि च बाह्यार्थे स्वप्नादौ बध्यते नरः।
समाधिसुप्तिमूर्च्छासु सत्यप्यस्मिन्न बध्यते॥

स्वप्न, स्मृति आदि काल में बाह्य स्त्री व्याघ्र आदि पदार्थ के न होते हुए भी मनुष्य सुख दुःख से युक्त होता है। समाधि सुप्ति तथा मूर्छा में बाह्य पदार्थों के वर्त्तमान होने पर भी सुख दुःख आदि का भागी नहीं होता।

परिपूर्णः परात्मास्मिन्देहे विद्याधिकारिणि।
बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते॥

परिपूर्ण परमात्मा इस विद्याधिकारी (शमादि साधन सम्पन्न होने से विद्या सम्पादन के योग्य) मनुष्य शरीर में बुद्धि का साक्षी होकर, विकारवान् स्फुरण होता हुआ "अहम्" (मैं) इस शब्द से पुकारा जाता है।

स्वतः पूर्णः परात्माऽत्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः।
अस्मीत्यैक्यपरामर्श स्तेन ब्रह्म भवाम्यहम्॥

स्वतः पूर्ण (स्वभाव से ही देश कालादि से अपरिच्छिन्न

स्वभाववशात् ... समाधिरियं च ते

परमात्मा "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्य में "ब्रह्म" पद से कहा गया है। और इसी महावाक्य में "अस्मि" पद से जीव और ईश्वर की एकता कही गई है, इसलिये मैं ब्रह्म हूँ।

यथा धौतो घट्टितश्च लाञ्छितो रञ्जितः पटः ।
चिदन्तर्यामी सूत्रात्मा विराट् चात्मा तथेर्यते ॥

जैसे चित्रपट की "धौत, घट्टित, लाञ्छित और रञ्जित" ये चार अवस्थाएँ होती हैं, ऐसे ही परमात्मा की भी "चित्, अन्तर्यामी, सूत्रात्मा और विराट्" यह चार अवस्थाएं हैं।

स्वतः शुभ्रोऽत्र धौतः स्याद्घट्टितोऽन्नविलेपनात् ।
मस्याकारैर्लाञ्छितः स्याद्रञ्जितो वर्णपूरणात् ॥

कुसुम्भे आदि पदार्थ के सम्बन्ध से रहित श्वेत वस्त्र "धौत" (धुला हुआ) कहलाता है, मांड आदि से युक्त "घट्टित" कहलाता है, चित्र बनाने के लिये स्याही से जो चिह्न या रेखाएँ की जाती हैं उनसे युक्त वस्त्र "लाञ्छित" कहाता है और यथायोग्य रङ्ग भर देने पर "रञ्जित" कहलाता है।

स्वतश्चिदन्तर्यामी तु मायावी सूक्ष्मसृष्टितः ।
सूत्रात्मा स्थूलसृष्ट्यैव विराडित्युच्यते परः ॥

स्वतः = माया और माया के कार्य से रहित परमात्म "चित्" है, माया के सम्बन्ध से "अन्तर्यामी" है, अपञ्चीकृत-भूतों का कार्य्य जो समष्टि सूक्ष्मशरीर है उस शरीर के योग से "सूत्रात्मा" है और पञ्चीकृत-भूतों का कार्य्य जो समष्टि स्थूलशरीर है उसके योग से आत्मा का नाम "विराट्" है।

सदा विचारयेत्तस्मात् जगज्जीवपरात्मनः ।
जीवभावजगद्भाव वाधे स्वात्मैव शिष्यते ॥.

अतः जगत्, जीव और परमात्मा का सदा विचार क
रहे और विचारानन्तर जीवभाव तथा जगद्भाव का
हो जाने पर स्वात्मा ही अवशेष रहता है ।

नाप्रतीतिस्तयोर्वाधः किन्तु मिथ्यात्वनिश्चयः ।
नो चेत्सुषुप्तिमूर्च्छादौ मुच्येतायत्नतो जनः ॥

जगत् और जीवभाव के वाध का अभिप्राय जगत्
जीवभाव की अप्रतीति से नहीं है किन्तु "जगत् और
मिथ्या है" ऐसा निश्चय ही जगत् तथा जीवभाव का
है, यदि ऐसा न मानें तो सुषुप्ति और मूर्च्छा आदि
किसी यत्न के विना ही पुरुष मुक्त हो जाया करें, (
सुषुप्ति और मूर्च्छा समय में जगत् और जीव की अप्र
स्वतः सिद्ध है) ।

तस्मान्मुमुक्षुभिर्नैव मतिर्जीवेशवादयोः ।
कार्या किन्तु ब्रह्मतत्त्वं विचार्य बुध्यतां च तत् ॥

इसलिये मुमुक्षु पुरुषों को जीववाद तथा ईशवाद में
स्थान नहीं देना चाहिए किन्तु ब्रह्मतत्त्व का ही वि
करना और उसी को जानना चाहिए ।

न निरोधो न चोत्पत्ति र्न वद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

न मृत्यु है, न उत्पत्ति, न कोई बद्ध है, न साधक (

आदि का अनुष्ठान करनेवाला) और न मुमुक्षु है, न मुक्त यही परमार्थ है ।

मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ ।
यथेच्छं पिबतां द्वैतं तत्त्वं त्वद्वैतमेव हि ॥

जीव और ईश्वर दोनों माया नाम वाली कामधेनु के बछड़े हैं वे इच्छानुसार द्वैतरूप दूध को पियें, परन्तु परमार्थ से तो अद्वैत ही है ।

न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ।
उदासीनवदासीन इति ग्रन्थिभिदोच्यते ॥

"जो प्राप्त हुए दुःख आदिक से द्वेष नहीं करता तथा निवृत्त हुए सुखादिकों की कामना नहीं करता और उदासीन पुरुष के समान रहता है"---वह पुरुष चिज्जड़-ग्रन्थि के तोड़ने वाला कहलाता है ।

ब्रह्मलोकतृणीकारो वैराग्यस्यावधिर्मतः ।
देहात्मवत् परात्मत्व दार्ढ्ये बोधः समाप्यते ॥

ब्रह्मलोक को भी तिनके के समान समझना वैराग्य की अवधि है । और जैसे देह में अज्ञानी पुरुषों की दृढ़ आत्म-बुद्धि है, ऐसे ही परमात्मा के विषय में दृढ़ आत्मभावना ही बोध की अवधि है ।

सुप्तिवद्विस्मृतिः सीमा भवेदुपरमस्य हि ।
दिशाऽनया विनिश्चेयं तारतम्यमवान्तरम् ॥

निद्रावस्था में जैसे सब वस्तुओं की विस्मृति हो जाती है, ऐसे ही जागरण में भी संसार को भूल जाना उपरम की

अन्तिम सीमा है। इसी प्रकार वैराग्य, बोध तथा उप
अवान्तर तारतम्य को अपनी बुद्धि से निश्चय कर लेना

जगच्चित्रं स्वचैतन्ये पटे चित्रमिवार्पितम्।
मायया तदुपेक्ष्यैव चैतन्यं परिशेष्यताम्॥

जैसे कपड़े पर चित्र खैंचा जाता है, ऐसे ही जग
चित्र आत्मचैतन्य रूप पट पर माया से खैंचा गया है
जगत् तथा माया की उपेक्षा करके चैतन्यमात्र को यथा
सार पदार्थ समझना चाहिए।

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥

यदि पुरुष "मैं यह हूँ" इस प्रकार अपने आत्मा को
जाय तो फिर क्या चाहता हुआ और किसके मनोर
पूर्त्ति के लिए शरीर के दुःखी होने पर स्वयं भी दुःखी

मायाभासेन जीवेशौ करोतीति श्रुतत्वतः।
कल्पितावेव जीवेशौ ताभ्यां सर्वं प्रकल्पितम्॥

"चिदानन्द ब्रह्म के प्रतिबिम्ब से युक्त माया, जीव
ईश्वर को बनाती है" इस अभिप्राय की श्रुति (जीवेशावा
करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवति) में ऐसा
गया है कि जीव तथा ईश्वर कल्पित ही हैं और इन दो
ही यह सकल संसार कल्पित है।

तस्माद्दाभासपूरुषः स कूटस्थो विविच्य तम्।
कूटस्थोऽस्मीति विज्ञातुं महतीत्यभ्यधाच्छ्रुतिः

यतः कूटस्थ ही चिदाभास का निज स्वरूप है इस

विवेक द्वारा "मैं कूटस्थ हूँ"—इस प्रकार जीव को जानना उचित है। इस अभिप्राय से "आत्मानञ्चेद्विजानीयात्"—इत्यादि श्रुति "अस्मि" इस पद का प्रयोग करती है।

देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम्।
आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते॥

जैसे अज्ञानी पुरुष को इस देह में ही "मैं मनुष्य हूँ" ऐसी दृढ़ प्रतीति होती है, वैसे ही देहात्मज्ञान का बाधक "मैं ब्रह्म हूँ"—यह ज्ञान जिसे प्रत्यगात्मा के विषय में हो जाय वह मुक्ति की इच्छा न रखता हुआ भी मुक्त हो जाता है।

कर्त्ता भोक्तेत्येवमादि शोकजातं प्रमुञ्चति।
कृतं कृत्यं प्रापणीयं प्राप्तमित्येव तुष्यति॥

ज्ञानवान् पुरुष असङ्ग कूटस्थ आत्मा को जान कर, "मैं कर्त्ता हूँ मैं भोक्ता हूँ" इत्यादि शोकसमूह को छोड़ देता है, इसी का नाम "शोकापगम" है, और जो मुझे कर्तव्य था सो कर लिया है तथा जो प्राप्त करने योग्य था सो प्राप्त हो गया—इसी सन्तोष को "तृप्ति" कहते हैं।

निवृत्ते सर्वसंसारे नित्यमुक्तत्वभासनात्।
निरङ्कुशा भवेत्तृप्तिः पुनः शोकाऽसमुद्भवात्॥

सम्पूर्ण संसार के निवृत्त हो जाने पर नित्यमुक्तता की प्रतीति होने लगती है—अतः फिर शोक के उत्पन्न न होने से निरङ्कुश (स्वतन्त्र) तृप्ति विद्यमान रहती है।

प्रत्यग्बोधो य आभाति सोऽद्वयानन्दलक्षणः।
अद्वयानन्दरूपश्च प्रत्यग्बोधैकलक्षणः॥

जो प्रत्यक् बोध स्वरूप सर्वान्तर चिदात्मा, बुद्ध्यादि साक्षी होकर स्फुरण हो रहा है वही अद्वितीय आनन्दस्व परमात्मा है, और अद्वयानन्द स्वरूप परमात्मा ही चिद्रू रस प्रत्यगात्मस्वरूप है ।

अन्तःकरणसंत्यागा दवशिष्टे चिदात्मनि ।
अहं ब्रह्मेति वाक्येन ब्रह्मत्वं साक्षिणीक्ष्यते ॥

अन्तःकरण का परित्याग करके शेष रहे हुए चिदात्म "अहं ब्रह्मास्मि" इस वाक्य से साक्षी के विषय में ही ब्र का बोध होता है ।

अहंब्रह्मेति वाक्यार्थ बोधो यावद्दृढीभवेत् ।
शमादिसहितस्ताव दभ्यसेच्छ्रवणादिकम् ॥

जब तक "अहं ब्रह्म" इस वाक्य के अर्थ का ज्ञान पक्का न हो तब तक शमदमादि-सहित श्रवण आदि अभ्यास करे।

तत्त्वभावनया नश्ये त्साऽतो देहातिरिक्तताम् ।
आत्मनो भावयेत्तद्व न्मिथ्यात्वं जगतोऽनिशम् ॥

उस विपरीत-भावना (देह ही आत्मा है—जगत् है—ऐसी बुद्धि) का तत्त्वभावना ("आत्मा देह से भिन्न जगत् मिथ्या है" इत्यादि बुद्धि) से नाश हो जाता है, "आत्मा देह आदि से भिन्न है—जगत् मिथ्या है" भावना निरन्तर करता रहे ।

ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्चात्र समे प्रारब्धकर्मणी ।
न क्लेशो ज्ञानिनो धैर्या न्मूढः क्लिश्यत्यधैर्यतः ॥

ज्ञानी और अज्ञानी के प्रारब्ध कर्म एकसे ही हैं परन्तु धैर्यवान् होने के कारण ज्ञानी को क्लेश नहीं होता और धैर्य न होने से अज्ञानी को क्लेश होता है।

जगन्मिथ्यात्वधीभावा दाक्षिप्तौ काम्यकामुकौ।
तयोरभावे सन्तापः शाम्येन्निःस्नेहदीपवत्॥

जब "जगत् मिथ्या है"—ऐसी बुद्धि के होने से काम्य (धनदारा आदि विषय) और कामुक (कामना करनेवाले) का नाश हो जाता है तब उनके अभाव में उनसे होनेवाला ताप भी निस्तैल दीप के समान शान्त हो जाता है।

अर्थानामर्जने क्लेश स्तथैव परिपालने।
नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान् क्लेशकारिणः॥

धन आदि पदार्थों के उपार्जन करने में, प्राप्त किये हुए पदार्थों की रक्षा में और उनके नाश, तथा व्यय में दुःख ही दुःख हैं, ऐसे निरन्तर क्लेशकारी अर्थों को धिक्कार है।

स्वप्नेन्द्रजालसदृश मचिन्त्यरचनात्मकम्।
दृष्टनष्टं जगत्पश्य न्कथं तत्रानुरज्यति॥

स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान अचिन्त्य रचनास्वरूप और दृष्टनष्ट (देखते देखते नष्ट हो जानेवाले) जगत् की असारता को समझता हुआ मनुष्य उसमें कैसे अनुरक्त हो सकता है?

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत्।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः॥

जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति रूप तीन स्थानों में जो जो विषय तथा

भोक्ता (विश्व तैजस प्राज्ञ रूप) और भोग्यपदार्थों के भोग ज्ञान तथा भोगना रूप जो कर्म हैं--इन सब से विल चिन्मात्र, साक्षी, सदाशिव जो परमात्मा है, वही मैं हूँ।

मायिकोऽयं चिदाभासः श्रुतेरनुभवादपि।
इन्द्रजालं जगत्प्रोक्तं तदन्तःपात्ययं यतः॥

श्रुति तथा अनुभव से चिदाभास मिथ्या है, यतः श्रु जगत् को इन्द्रजाल कथन किया है और चिदाभास उस अन्तर्गत होने के कारण मिथ्या ही है।

यदा स्वस्यापि भोक्तृत्वं मन्तुं जिहेत्ययं तदा।
साक्षिण्यारोपयेदेतदिति कैव कथा वृथा॥

जब चिदाभास अपने को ही भोक्ता मानने में करता है, तब वह असङ्ग साक्षी में भोक्तृत्व का आरो कर सकता है?

तिष्ठन्त्वज्ञानतत्कार्य शवा बोधेन मारिताः।
न भीतिर्बोधसम्राजः कीर्तिः प्रत्युत तस्य तैः॥

अज्ञान तथा अज्ञान के कार्य्य रूप मुरदे जिनको बो मारा है भले ही पड़े रहें! उनसे बोध-सम्राट् को कु नहीं है, प्रत्युत उनसे बोध की कीर्ति ही है।

अन्तःकरणतद्वृत्ति साक्षीत्यादावनेकधा।
कूटस्थ एव सर्वत्र पूर्वाचार्यं विनिश्चितः॥

तू अन्तःकरण और उसकी वृत्ति का साक्षी, मात्र, आनन्दरूप तथा सत्य होकर अपने आत्मा को नहीं जानता? इत्यादि वचनों द्वारा अनेक प्रकार से आत्मा का निश्चय भी शङ्कर आदि पूर्वाचार्यों ने सर्वत्र कि

आत्माभासाश्रयाश्चैव मुखाभासाश्रया यथा ।
गम्यन्ते शास्त्रयुक्तिभ्या मित्याभासश्च वर्णितः ॥

जैसे मुख, आभास और दर्पण आदि तीनों प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं, ऐसे ही कूटस्थ, चिदाभास और अन्तःकरण तीनों शास्त्र तथा युक्ति द्वारा प्रतीत होते हैं--इस प्रकार कूटस्थ से अतिरिक्त चिदाभास का वर्णन किया गया है ।

देहेन्द्रियादियुक्तस्य जीवाभासभ्रमस्य या ।
अधिष्ठानचितिः सैषा कूटस्थात्र विवक्षिता ॥

जो चतन देह इन्द्रिय आदि युक चिदाभास रूप भ्रम का अधिष्ठान है, वही इस प्रकरण में कूटस्थ शब्द से विवक्षित है ।

जगद्भ्रमस्य सर्वस्य यदधिष्ठानमीरितम् ।
त्रय्यन्तेषु तदत्र स्या द्ब्रह्मशब्दविवक्षितम् ॥

वेदान्तग्रन्थों में जिसे सम्पूर्ण जगत् रूप भ्रम का अधिष्ठान कहा गया है, उसे ही यहाँ ब्रह्म शब्द से कहा गया है ।

वस्तुत्वं घोषयन्त्यस्य वेदान्ताः सकला अपि ।
सपत्नरूपं वस्त्वन्य न्न सहन्तेऽत्र किञ्चन ॥

सब के सब वेदान्त इस कूटस्थ के पारमार्थिकपन की घोषणा करते हैं, और कूटस्थ का विरोधी कोई दूसरा पदार्थ सहन नहीं करते ।

मायामेघो जगन्नीरं वर्षत्वेष यथा तथा ।
चिदाकाशस्य नोहानि र्न वा लाभ इति स्थितिः ॥

मायारूप मेघ, जगत्रूप जल को जैसा चाहे वैसा बरसावे,

बिनोद ग्रस्ता चैतन्य रूप चैतन्यन
अनुकूल प्रतिकूल वेदनीयोऽहि सुख

इसमें चिद्रूप-आकाश की न कोई हानि है और न ला
यही विवेकी का निश्चय है।

विचारयन्नामरणं नैवात्मानं लभेत चेत्।
जन्मान्तरे लभेतैव प्रतिबन्धक्षये सति ॥

यदि मरणपर्यन्त विचार करते हुए भी आत्मा का साक्षा
त्कार न हो तो जन्मान्तर में प्रतिबन्ध के क्षय के पश्चात् अव
ही साक्षात्कार होगा।

मायामयः प्रपञ्चोऽय मात्मा चैतन्यरूपधृक्।
इति बोधे विरोधः को लौकिकव्यवहारिणः॥

"यह प्रपञ्च मायामय है आत्मा चैतन्यरूप है," इस प्र
के बोध के होने से लौकिक व्यवहारी पुरुष को क्या वि
है? अर्थात् ऐसे ज्ञान से लौकिक व्यवहार में कोई ह
नहीं होती।

सकृत्प्रत्ययमात्रेण घटश्चेद्भासते सदा।
स्वप्रकाशोऽयमात्मा किं घटवच्च न भासते ॥

यदि एक बार की प्रतीतिमात्र से घट भासता है
सदा स्वयंप्रकाश यह आत्मा क्या घट के समान
नहीं भासेगा?

वर्णाश्रमादयो देहे मायया परिकल्पिताः।
नात्मनो बोधरूपस्य त्येवं तस्य विनिश्चयः॥

देहगत वर्णआश्रमआदि धर्म माया से ही कल्पित हैं,
ज्ञानस्वरूप आत्मा के धर्म नहीं हैं, ऐसा तत्त्ववेत्ताओं
निश्चय है। मोमा पुरुष प्रज्ञा प्रत्येय इति
प्रशान्तारमेव तद्गति, पुनरस्या

समाधिमथ कर्माणि मा करोतु करोतु वा ।
हृदयेनास्तसर्वास्थो मुक्त एवोत्तमाशयः ॥

जिस तत्त्ववेत्ता पुरुष ने अपने चित्त से सब प्रकार की आसक्ति का परित्याग कर दिया है वह निर्मलज्ञान-सम्पन्न महात्मा मुक्त ही है, अतः वह समाधि अथवा कर्मों को करे या न करे ।

आत्माऽसङ्गस्ततोऽन्यत्स्या दिन्द्रजालं हि मायिकम् ।
इत्यचञ्चलनिर्णीते कुतो मनसि वासना ।

"आत्मा असङ्ग है उससे भिन्न माया का कार्य जगद् इन्द्रजाल के समान मिथ्या है"—इस प्रकार दृढ़ निश्चय कर लेने से सम्यग्ज्ञानवान् के मन में वासनाएँ कहाँ ?

इह वा मरणे वाऽस्य ब्रह्मलोकेऽथवा भवेत् ॥
ब्रह्मसाक्षात्कृतिः सम्य गुपासीनस्य निर्गुणम् ॥

जीवन काल में या मरने पर, अथवा ब्रह्मलोक में जाकर, निर्गुण उपासना करनेवाले पुरुष को अवश्य ही ब्रह्म साक्षात्कार होगा ।

यथाऽगाधनिधेर्लब्धौ नोपायः खननं विना ।
मल्लाभेऽपि तथा स्वात्म चिन्तां मुक्त्वा न चापरः ॥

जैसे अगाधनिधि (जो धन बहुत गहरा गाड़ा गया हो) की प्राप्ति के लिये खोदने से अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है, ऐसे ही मेरे लाभार्थ भी आत्मचिन्ता को छोड़ कर और दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

नृत्यशालास्थितोदीपः प्रभुं सभ्यांश्च नर्तकीम्।
दीपयेदविशेषेण तदभावेऽपि दीप्यते ॥

नाट्यशाला में स्थित दीपक, राजा सभ्यों और नाचनेवाली को एकसा ही प्रकाशित करता है, और राजा-नर्तकी आदि के न होने पर भी दीपक स्वयं दीप्यमान रहता है।

अहङ्कारः प्रभुः सभ्या विषया नर्तकी मतिः।
तालादिधारीण्यक्षाणि दीपः साक्ष्यवभासकः॥

अहङ्कार राजस्थानीय है, विषय सभ्यस्थानापन्न हैं, बुद्धि नर्त्तकीस्थानीया है, इन्द्रियसमुदाय ताल आदि देनेवाले पुरुषों के समान हैं और इन सब का प्रकाशक साक्षी दीपक के समान है।

स्वस्थानसंस्थितो दीपः सर्वतो भासयेद्यथा।
स्थिरस्थायी तथा साक्षी बहिरन्तः प्रकाशयेत्॥

अपने स्थान पर स्थित दीपक जैसे सबको प्रकाशित करता है—ऐसे ही स्थिर अचल साक्षी आत्मा भीतर बाहर के सब पदार्थों को प्रकाशित करता है।

प्रतिष्ठां विन्दते स्वस्मिन्यदा स्यादथ सोऽभयः।
कुरुतेऽस्मिन्नन्तरं चेदथ तस्य भयं भवेत्॥

जिस समय मुमुक्षु विद्वान् अपने स्वरूप में "मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार निष्ठा को प्राप्त होता है उसी समय वह अभय मोक्षस्वरूप अद्वितीय ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है, और जब वही मुमुक्षु प्रत्यक्स्वरूप ब्रह्म में थोड़ा सा भी स्वामि-सेवक

भाव आदि रूप भेद देखता है तब उसीसमय उस भेददर्शी को भय अर्थात् संसारप्रयुक्त दुःख होता है।

भिद्यते हृदयग्रन्थि श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

पर = हिरण्यगर्भादिक-पद, अवर = निकृष्ट हैं जिससे उस परावर परमात्मा के साक्षात्कार के अनन्तर इस पुरुष की हृदयग्रन्थि (बुद्धि और चिदात्मा की अन्योन्याध्यास रूप गाँठ) टूट जाती है, आत्मसम्बन्धी सब प्रकार के संशय दूर हो जाते हैं और सञ्चित कर्म नष्ट हो जाते हैं।

यावद्यावदहङ्कारो विस्मृतोऽभ्यासयोगतः।
तावत्तावत्सूक्ष्मदृष्टे र्निजानन्दोऽनुमीयते ॥

जैसे जैसे अभ्यास-योगद्वारा अहङ्कार विस्मृत होता जाता है वैसे वैसे ही सूक्ष्मदर्शी पुरुष को निज आनन्द का आविर्भाव होता जाता है।

समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे।
यद्येवं ब्रह्मणि स्या त्तत्को न मुच्येत बन्धनात् ॥

जैसे प्राणियों का चित्त स्वभाव से ही विषयों में आसक्त है, ऐसे ही यदि ब्रह्म में आसक्त हो जाय तो कौन पुरुष बन्धन से मुक्त न हो ?

धीरत्वमक्षप्राबल्ये ऽप्यानन्दास्वादवाञ्छया।
तिरस्कृत्याखिलाक्षाणि तच्चिन्तायां प्रवर्तनम् ॥

यद्यपि इन्द्रियों में विषयों की ओर आकर्षण करने का सामर्थ्य है तथापि आत्मस्वरूप को अनुभव करने की कामना

से सब इन्द्रियों को दमन करके आत्मचिन्ता में जो प्र
होना है इसी का नाम धीरता है ।

सुखे वैषयिके प्रीति मात्रमात्मा त्वतिप्रियः ।
सुखे व्यभिचरत्येषा नात्मनि व्यभिचारिणी ॥

विषयजन्य सुखों में सामान्य प्रीति है, और आत्म
अत्युत्कृष्ट प्रीति है तथा विषयजन्य सुख में जो प्रीति है
व्यभिचारयुक्त है, किन्तु आत्मविषयक-प्रीति कभी भी
विषय में नहीं जाती, अतः आत्मसुखविषयक-प्रीति अ
उत्कर्षवती है ।

आत्मार्थत्वेन सर्वस्य प्रीतेश्चात्मा ह्यतिप्रियः ।
सिद्धो यथा पुत्रमित्रा त्पुत्रः प्रियतरस्तथा ॥

सुख के साधन "पतिजायादिक पदार्थ" तथा पतिजा
दिक पदार्थों से जन्य "सुख" और सुख के हेतु होने
कारण पतिजायादिकों में "प्रीति"—ये तीनों ही अपने आ
के उपकारक होने से आत्मा के लिये हैं अतएव इन तीनों
अपेक्षा से आत्मा अतिप्रिय है, जैसे पुत्रमित्र की अपेक्षा
प्रियतर है ।

वित्तात्पुत्रः प्रियः पुत्रा त्पिण्डः पिण्डात्तथेन्द्रियं
इन्द्रियाच्च प्रियः प्राणः प्राणादात्मा प्रियः परः

धन से पुत्र प्यारा है, पुत्र से देह प्यारा है, देह
इन्द्रिय प्यारे हैं, इन्द्रियों से प्राण प्यारे हैं, और प्राणों से
बढ़कर आत्मा प्रिय है ।

एवं विविच्य पुत्रादौ प्रीतिं त्यक्त्वा निजात्मनि
निश्चित्य परमां प्रीतिं वीक्षते तमहर्निशम् ॥

इस प्रकार पुत्रआदिकों में दोषदृष्टि करके उनमें प्रीति को छोड़ कर तथा अपने आत्मा में परमप्रीति का निश्चय करके सदा उसी आत्मा का चिन्तन करे ।

न प्रीतिर्विषयेष्वस्ति प्रेयानात्मेति जानतः ।
कुतो रागः कुतो द्वेषः प्रातिकूल्यमपश्यतः ॥

जिस तत्त्वज्ञ पुरुष को ऐसा ज्ञान है कि "आत्मा ही सब से बढ़ कर प्यारा है" उसकी विषयों में प्रीति नहीं हो सकती, जब प्रीति ही नहीं तब "राग" कैसे होगा ? और प्रातिकूल्य-ज्ञान के न होने से द्वेष भी नहीं हो सकता ।

यावद्यावदवज्ञा स्यात्तावत्तावत्तदीक्षणम् ।
यावद्यावद्वीक्ष्यते तत्तावत्तावदुभे त्यजेत् ॥

नाम रूप (जगत्) के विषय में जितनी जितनी तिरस्कार-दृष्टि होती जायगी उतना उतना ही ब्रह्मज्ञान दृढ़ होता जायगा और जितना जितना ब्रह्मज्ञान दृढ़ तथा निर्मल होता जायगा उतना उतना ही नामरूप का परित्याग भी स्वयं ही होता जायगा ।

शयाने पुरुषे निद्रा स्वप्नं बहुविधं सृजेत् ।
ब्रह्मण्येवं निर्विकारे विकारान्कल्पयत्यसौ ॥

जैसे निद्रा पुरुष के सो जाने पर बहुविध स्वप्न की रचना करती है, ऐसे ही निर्विकार ब्रह्म में माया अनेक प्रकार के विकारों को स्वयमेव कल्पना करती है ।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥

जिस पुरुष को "मैं कर्त्ता हूँ, भोक्ता हूँ"—इत्यादि कार नहीं है और जिसकी बुद्धि सब कर्मों में लिप्त नहीं (अर्थात् निष्कामभाव से कर्म करने के कारण बुद्धि लाभ में मोह आदि को प्राप्त नहीं होती) वह इन समस्त का हनन करके भी न हनन करता है और न बद्ध होता है।

सार्वभौमादिसूत्रान्ता उत्तरोत्तरकामिनः।
अवाङ्मनसगम्योऽय मात्मानन्दस्ततः परः॥

चक्रवर्ती राजा से लेकर हिरण्यगर्भ पर्यन्त अपने आनन्दों से उत्तरोत्तर आनन्दों के दस दस गुण अधिक के कारण, उत्तरोत्तर आनन्द की इच्छा करते हैं। परन्तु वाणी का अविषय यह आत्मानन्द उन सब आनन्द उत्कृष्ट है।

समाप्तम्

"मनीषा-पञ्चकम् ।"

सत्याचार्यस्य गमने कदाचिन्मुक्तिदायकम् ।
काशीक्षेत्रं प्रति सह गौर्या मार्गे तु शङ्करम् ॥
अन्त्यवेषधरं दृष्ट्वा गच्छ गच्छेति चाब्रवीत् ।
शङ्करः सोपि चाण्डालस् तं पुनः प्राह शङ्करम् ॥

किसी समय श्रीशङ्कराचार्य महाराज को मुक्तिदायक काशीक्षेत्र के मार्ग में पार्वती समेत चाण्डालवेषधारी शिवजी मिले, उन्हें देख कर वह बोले, हटो हटो! यह सुन कर चाण्डालरूपधारी शिवजी शङ्कराचार्य के प्रति बोले।

अन्नमयादन्नमय मथवा चैतन्यमेव चैतन्यात् ।
द्विजवर दूरीकर्तुं वाञ्छसि किं ब्रूहि गच्छ गच्छेति ॥

हे द्विजवर! जो तुम यह कहते हो कि "हटो हटो," क्या अन्नमय (शरीर) से अन्नमय (शरीर) को दूर करना चाहते हो या चैतन्य से चैतन्य को ?

किं गङ्गाम्बुनि बिम्बितेम्बरमणौ चाण्डालवाटीपयः-
पूरे वान्तरमस्ति काञ्चनघटीमृत्कुम्भयोर्वाम्बरे ।

प्रत्यग्वस्तुनि निस्तरङ्गसहजानन्दावबोधाम्बुधौ
विप्रोयं श्वपचोयमित्यपि महान्कोयं विभेदभ्रमः ॥

क्या गङ्गाजल में और चाण्डाल के कूँडे के जल में
बिम्बित सूर्यों में कुछ भेद है ? या सुवर्ण और मिट्टी के
के आकाशों में कुछ भेद है ? इस प्रकार लहरों से
स्वाभाविक आनन्द ज्ञानस्वरूप समुद्रात्मक प्रत्यक् आत्म
"यह ब्राह्मण है और यह चाण्डाल है" ऐसा बड़ा भारी
भ्रम तुमको क्यों होता है ?

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते
या ब्रह्मादिपिपीलिकान्ततनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी
सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रज्ञापि यस्यास्ति
चाण्डालोस्तु स तु द्विजोस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम

जो ज्ञान जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति में अत्यन्त स्पष्ट
भासता है और जो ज्ञान ब्रह्मा से लेकर च्यौंटीपर्यन्त
शरीर में जगत् का साक्षी होकर ओतप्रोत हो रहा है,
ज्ञान मैं ही हूँ, दृश्य वस्तु नहीं हूँ"—ऐसी दृढ़-बुद्धि जिस पु
की है वह चाहे चाण्डाल हो या ब्राह्मण मेरी बुद्धि में वह गुरु

ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितं
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाशेषं मया कल्पितम् ।
इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले
चाण्डालोस्तु स तु द्विजोस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम

मैं ब्रह्म ही हूँ और इस सकल जगत् का मुझ चिन्मात्र
से विस्तार हुआ है, और तीन गुणवाली अविद्या से मैंने

इस जगत् की कल्पना की है, इस प्रकार सुखरूप, नित्य, पर और निर्मल ब्रह्म के विषय में जिसकी दृढ़ बुद्धि है, वह चाहे चाण्डाल हो या ब्राह्मण मेरी बुद्धि में वह गुरु है।

> शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरो-
> र्नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना ।
> भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके
> प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरित्येषा मनीषा मम ॥

गुरु के वचनों से समस्त संसार को सर्वदा नाशवान् समझ कर निष्कपट शान्त मन से नित्य ब्रह्म को निरन्तर विचारते विचारते, तथा भूत, वर्त्तमान और भावी पाप को ज्ञान अग्नि में जलाते जलाते जिसने अपना शरीर प्रारब्ध को सौंप दिया है, मेरी बुद्धि में वह गुरु है।

> या तिर्यङ्नरदेवताभिरहमित्यन्तः स्फुटा गृह्यते
> यद्भासा हृदयाक्षदेहविषया भान्ति स्वतोऽचेतनाः ।
> तां भास्यैः पिहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावयन्-
> योगी निर्वृतमानसो हि गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥

जिसे तिर्यक् (पशु आदि), मनुष्य और देवता अपने हृदयों में "मैं"—इस प्रकार स्पष्ट रूप से ग्रहण करते हैं, जिसके प्रकाश से हृदय, देह, इन्द्रिय और विषय, स्वतः जड़ होते हुए भी प्रकाशित हो रहे हैं, उस "स्फुरण" को, (जो मेघ आदि से छिपे हुए सूर्यमण्डल के समान देहादि से छिपा हुआ है) जो योगी शान्तमन होकर सदा चिन्तन करता है, मेरी बुद्धि में वह गुरु है।

यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत इमे शक्रादयो निर्वृता
यच्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा मुनिर्निर्वृतः।
यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्म वि-
द्यः कश्चित्स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम॥

ये इन्द्र आदि जिस सुखसागर के लेश के भी लेश से तृप्त हो रहे हैं और मुनि लोग अत्यन्त शान्त चित्त में जिसे पाकर तृप्त होते हैं और जिस नित्य सुखसागर आत्मा में मग्न होकर पुरुष ब्रह्मवित् नहीं किन्तु ब्रह्मरूप ही हो जाता है उस आत्मा को जिसने साक्षात् किया है वह अवश्य सुरेन्द्र से वन्दनीय चरणोंवाला है—यह मेरा निश्चय है।

समाप्तम्

"दक्षिणामूर्ति-स्तोत्रम् ।"

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया वहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

जैसे निद्रादोष से स्वप्न का जगत् बाहर प्रकट हुआ सा प्रतीत होता है इसी प्रकार जो पुरुष दर्पण में दृश्यमान नगरी के समान अपने अन्दर स्थित इस जगत् को माया से बाहर प्रकट हुआ सा देखता है और जो ज्ञान के समय अद्वितीय आत्मा को ही साक्षात्कार करता है, उसी श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो ।

बीजस्यान्तरिवाङ्कुरो जगदिदं प्राग् निर्विकल्पं पुन-
र्मायाकल्पितदेशकालकलनावैचित्र्यचित्रीकृतम् ।
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

यह जगत् बीज के अन्दर अङ्कुर के समान पहले निर्विकल्प था, फिर माया से कल्पित देश काल आदि की नानाविध कल्पना द्वारा अनेक प्रकार से इसका विभाग करके जो परमात्मा, मायावी अथवा महायोगी के समान अपनी इच्छा

से इसे उत्पन्न करता है, उस श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो।

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात्तत्त्वमसीतिवेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान्।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

जिस परमेश्वर का स्वरूपभूत सद्रूप चैतन्य ही असत् आकाशादिक पदार्थों को प्रकाशित करता है, जो अपने आश्रितों को साक्षात् "तत्त्वमसि" इस वेदवचन से बोध कराता है और जिसके साक्षात्कार से संसार-समुद्र में पुनरावृत्ति नहीं होती, उस श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार होवे।

नानाच्छिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तं जग-
त्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

अनेक छिद्रोंवाले घड़े में स्थित महाप्रदीप की प्रभा के समान प्रकाशमान जिस परमात्मा का ज्ञान, चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा बाहर फैल रहा है और "मैं जानता हूँ" इस प्रकार प्रतीत होते हुए जिस परमात्मा से यह सारा जगत् प्रतीत हो रहा है, उस श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो।

देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलं बुद्धिं च शून्यं विदुः
स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्वहमितिभ्रान्ता भृशं वादिनः

मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

वादी लोग, स्त्री बालक अन्धे और मूर्ख के सदृश अत्यन्त भ्रान्त होकर देह, प्राण, इन्द्रिय, क्षणिक ज्ञान और शून्य को ही "अहम्" (मैं) इस प्रतीति का विषय समझते हैं। इस प्रकार माया की शक्ति से कल्पित जो देहादिकों में आत्मा का भ्रम है, उस भ्रम को नाश करने वाले उस श्री गुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति महादेव को यह नमस्कार हो ।

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादनात्
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत्सुषुप्तः पुमान् ।
प्रागस्वाप्समितिप्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

ज्ञान के साधन चक्षु आदिक इन्द्रियों के लीन हो जाने पर माया से आच्छादित होकर सोया हुआ जो पुरुष, राहु से ग्रसे हुए सूर्य और चन्द्र के समान सत्तामात्र प्रतीत होता था और जाग्रत् के समय "मैं पहले सो गया था" इस प्रकार स्मरण होता है, उस श्री गुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार है ।

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि
व्यावृत्तास्वनुवर्त्तमानमहमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा ।
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो भद्रया मुद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

जो बाल्य आदि, जाग्रद् आदि तथा सर्व अवस्थाओं के

बदल जाने पर भी बदलता नहीं है, "मैं हूं" इस प्रकार अन्द
सदा स्फुरण होता है, और जो उस अपने रूप को अपने भ
के प्रति सुन्दर प्रक्रिया से प्रकट करता है, उस श्रीगुरुमू
दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो।

विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसम्बन्धतः
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामित-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

जो यह पुरुष, स्वप्न अथवा जाग्रत् में माया से भ्रम
प्राप्त होकर कार्य कारणरूप तथा स्वस्वामिभावरूप, शि
आचार्यरूप तथा पिता पुत्रआदिरूप भेद से युक्त जगत्
देखता है, उस श्री गुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (महादेव) को
नमस्कार होवे।

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमा-
नित्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
नान्यत् किञ्चन विद्यते विमृशतां यस्मात्परस्माद्विभो
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा
जीव, ये स्थावर जङ्गमरूप जिसकी आठ मूर्तियां प्रका
मान हैं और विचार करने से जिस व्यापक परमात्मा
भिन्न कोई पदार्थ प्रतीत नहीं होता, उस श्री गुरुमूर्ति दक्षि
मूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो।

सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिन् स्तवे
तेनास्य श्रवणात्तथार्थमननाद्ध्यानाच्च संकीर्तनात्।
सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः
सिद्ध्येत्तत्पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम्॥

जिस कारण से यह सर्वात्म-भाव इस स्तोत्र में स्पष्ट कर दिया गया है इस लिये इस स्तोत्र के श्रवण, मनन, ध्यान और कीर्तन करने से सर्वात्मभावरूप महाविभूति से युक्त ईश्वरपन स्वतः प्राप्त हो जाता है, अर्थात् अणिमादिक आठ सिद्धियां विना प्रतिबन्ध के सिद्ध हो जाती हैं।

समाप्तम्

"चतुःश्लोकी-भागवतम् ।"

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥

श्री भगवान् उवाच ॥ परम गुह्य, विज्ञान तथा रहस्य युक्त, मुझ से कहे गये ज्ञान और उसके अङ्गोंको ग्रहण करो।

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञान मस्तु ते मदनुग्रहात् ॥

मैं जितना और जिस प्रकार का हूं तथा जैसे जैसे गुण कर्म से युक्त हूँ, उसी प्रकार मेरी कृपा से तुझे तत्त्वज्ञान हो।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योवशिष्येत सोस्म्यहम् ॥

सृष्टि की उत्पत्ति से पहले केवल मैं ही था तथा अन्य सत् या असत् रूप कुछ नहीं था और सृष्टि-लय के पश्चात् जो कुछ भी शेष रहता है सो मैं ही हूँ।

ऋतेर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥

जो प्रयोजन से शून्य प्रतीत हो और आत्मा में प्रतीत न हो

हो उसे आत्मा की माया समझो, वह आभास तथा अन्धकार के समान मिथ्या ही है।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥

जैसे महाभूत परस्पर प्रविष्ट (प्रवेश किये हुए) और अप्रविष्ट हैं, वैसे ही मैं उनमें हूँ और नहीं भी हूँ।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा॥

तत्त्व जिज्ञासु को अन्वयव्यतिरेक से जो वस्तु सर्वत्र और सर्वदा हो, उसे ही जानना चाहिए।

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना।
भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्॥

आप इस मत को निर्विकल्प समाधि द्वारा अनुभव करने से कल्प विकल्पों में भी मोह को प्राप्त न होवेंगे।

समासम्।

विषयां, पयः स्वाभिकं चित्तमभिसंबध्य परं जयन्ति॥ येनच विषयेणापरक्तं चित्तं स विषयो ज्ञातस्ततोऽन्यः पुनरज्ञातः॥ वस्तुनो ज्ञाताऽज्ञात स्वरूपत्वात् परिणामी चित्तम् ॐ

"सदाचारानुसन्धानम् ।"

प्रातः स्मरामि देवस्य सवितुर्भर्गं आत्मनः ।
वरेण्यं तद्धियो यो नश्चिदानन्दे प्रचोदयात् ॥

प्रातःकाल जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के करने वाले तथा ध्यान करने योग्य उस प्रकाशस्वरूप आत्मा का स्मरण करता हूँ, जो परमात्मा हमारी बुद्धियों को चिदानन्द ब्रह्म में प्रेरणा करता है ।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
यदेकं केवलं ज्ञानं तदेवास्मि परं बृहत् ॥

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति में अन्वय-व्यतिरेक से अनुगत जो केवल एक ज्ञान है, वही परब्रह्म मैं हूँ ।

अतीतानागतं किञ्चिन्न स्मरामि न चिन्तये ।
रागद्वेषं विना प्राप्तं भुञ्जाम्यत्र शुभाशुभम् ॥

किसी भूत और भविष्यत् वस्तु का न स्मरण करता हूँ, न चिन्तन और राग द्वेष से रहित होकर प्राप्त हुए शुभ अशुभ पदार्थों को ही भोगता हूँ ।

देहाभ्यासो हि संन्यासो नैव काषायवाससा ।
नाहं देहोऽहमात्मेति निश्चयो न्यासलक्षणम् ॥

॥ १८ ॥ यद्दिचित्तं प्रमाणं परत्व - परि ...

शब्दादिविषय वत् त्यागः ज्ञातस्य ।। सदा ज्ञातत्वं तु मनसः प्रमोः पुरुषस्य। प

काषाय वस्त्रों से जो देह में अध्यास है वह संन्यास नहीं है, "मैं देह नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ" ऐसा निश्चय ही संन्यास है।

विशुद्धं केवलं ज्ञानं निर्विशेषं निरञ्जनम्।
यदेकं परमानन्दं तत्त्वमस्यद्वयं परम्॥

जो विशुद्ध, केवल, ज्ञानस्वरूप, निर्विशेष, निरञ्जन, एक परमानन्द अद्वय पर ब्रह्म है वही तू है।

स्थूलवैराजयोरैक्यं सूक्ष्महैरण्यगर्भयोः।
अज्ञानमाययोरैक्यं प्रत्यग्विज्ञानपूर्णयोः॥

विश्व तथा विराट्, तैजस और हिरण्यगर्भ, अज्ञान तथा माया (प्राज्ञ और ईश्वर), तथा प्रत्यगात्मा और ब्रह्म ये दो दो परस्पर अभिन्न हैं।

कार्यकारणवाच्यांशौ जीवेशौ यौ जहच्च तौ।
अजहच्च तयोर्लक्ष्यौ चिदंशावेकरूपिणौ॥

कार्य्य (शरीरादि) और कारण (माया) जो जीव और ईश्वर के दोनों उपाधि रूप वाच्यांश हैं, उन को छोड़ कर दोनों (जीव और ईश्वर) का जो समान चिदंश है, वह जहदजहल्लक्षणा से ग्रहण करने योग्य है।

सङ्कल्पसाक्षि यज्ज्ञानं सर्वलोकैकजीवनम्।
तदेवास्मीति यो वेद स मुक्तो नात्र संशयः॥

सङ्कल्प का साक्षी तथा सर्व लोक का जीवन जो ज्ञान है वह मैं ही हूँ, इस प्रकार जो जानता है निस्सन्देह वह पुरुष मुक्त है।

पद्योरैक्यं बोधस्तु ज्ञानविज्ञानसंज्ञितम्।
आत्मानात्मविवेकस्य ज्ञानमाहुर्मनीषिणः॥

परोक्ष और अपरोक्ष संज्ञा वाला "तत्" और "त्वं" पदों के अर्थों का जो ऐक्यज्ञान है, बुद्धिमान् लोग उसे 'आत्मानात्म-विवेक' कहते हैं।

गुणाः कुर्वन्ति कर्माणि नाहं कर्तेति बुद्धिमान्।
किमुग्रैश्च तपोभिश्च यस्य ज्ञानमयं तपः॥

"गुण (इन्द्रिय आदि) कर्म करते हैं, मैं कर्त्ता नहीं" जो ऐसा जानता है वही ज्ञानवान् है। जिसके पास ज्ञानमय तप है उसे उग्र तपों से क्या प्रयोजन?

समाप्तम्

"श्रीमद्भगवद्-गीता।"

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

गङ्गा आदि अनेक प्रवाहों से निरन्तर परिपूर्ण और समर्यादा को न छोड़ने वाले समुद्र में जैसे अनन्त जल आ आ कर प्रवेश करते हैं, इसी प्रकार जिस पुरुष में सम्पूर्ण भोग्य पदार्थ प्रारब्धवशात् प्राप्त होते हैं और उनके प्राप्त होने से जो अपने स्वरूप से विचलित नहीं होता वह पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है और जो भोग्य पदार्थों की कामना करने वाला है उसे शान्ति नहीं मिलती।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

यह काम ही संसार का कारण है, यही काम किसी कारण से विघ्न को प्राप्त होकर क्रोध रूप हो जाता है, रजोगुण से इसकी उत्पत्ति है, महाभूका है, अनन्त भोग भोगने से भी तृप्त नहीं होता और महापाप का हेतु है, इस काम को मोक्ष-मार्ग का वैरी समझ।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥

जिस ब्रह्मवित् पुरुष के देह इन्द्रिय आदि के व्यापार और सङ्कल्प से रहित हैं तथा जिसने ज्ञानाग्नि से कर्म दग्ध कर दिया है, शास्त्रज्ञ लोग उसे पण्डित कहते हैं।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

संसार में ज्ञान के समान अन्य पवित्र वस्तु नहीं अधिकारी पुरुष बहुत काल के पश्चात् ज्ञानयोग द्वारा शुद्धा करण होकर इस ज्ञान को अपने अन्तःकरण में पाता है।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परं ॥

श्रवणादिजन्य आत्म-ज्ञान ने जिन शुद्धान्तःकरण पु के आत्मविषयक अज्ञान को नष्ट कर दिया है, उन पुरुषों उत्पन्न हुआ वह ज्ञान उस परब्रह्म को ऐसे प्रकाशित क है जैसे उदित सूर्य सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ।

जिन ब्रह्मज्ञ पुरुषों का मन परब्रह्म में स्थित रह उन्होंने इस जन्म में ही आगामी जन्मों का नाश कर दि यतः ब्रह्म निर्दोष, निर्दुःख, आनन्द स्वरूप और सम-रस है, अतः ब्रह्म में ही मुमुक्षु पुरुषों की स्थिति होती।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥

जिसका मन वश में है उसी पुरुष को परब्रह्म का साक्षात्कार होता है, जो शीत उष्ण सुख दुःख तथा मान अपमान में समान रहता है, ज्ञान विज्ञान से जिसका मन तृप्त है, जो कूटस्थ और जितेन्द्रिय है तथा मट्टी के ढेले, पत्थर और सुवर्ण को जो समान समझता है, ऐसे योगी को योगारूढ़ कहते हैं।

सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥

जो पुरुष सुहृत्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य = द्वेष का विषय, बन्धु, साधु और पापी में ब्रह्मबुद्धि रखता है वह सब से उत्तम योगी है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

मुझ परमात्म-सम्बन्धिनी गुणात्मिका यह माया दुर्जया है, इस माया को वही पुरुष नष्ट कर सकते हैं जो मेरे ही शुद्धस्वरूप का श्रवण मनन और निदिध्यासन द्वारा ध्यान करते हैं।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन!
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

हे अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक पुण्य के क्षय के पश्चात् पुनर्जन्म को देनेवाले हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप सदानन्दैकरस मुझ परमात्मा को पाकर ब्रह्मवित्तम पुरुष का पुनर्जन्म नहीं होता।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्

मैं (परमात्मा) ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब—पर्यन्त स
प्राणियों में सम हूँ, अत एव न कोई मेरा प्रिय है न अ
जो भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं वे ब्रह्मनिष्ठ यति स
मुझ आनन्दस्वरूप ब्रह्म में मद्रूप होकर रहते हैं और
उनमें साक्षात् होकर भासमान रहता हूँ ।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

हे पाण्डव ! जो पुरुष लौकिक वैदिक सब कर्म मेरे
ही करता है, मैं ही जिसकी परम गति हूँ, जो मेरा ही भ
जो पुत्र दारा गृह आदि में आसक्ति से रहित है औ
सब भूतों से वैर नहीं रखता है। वह भक्तश्रेष्ठ मुझे
होता है ।

येत्वक्षरमनिर्देश्य मव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवं ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

जो सब इन्द्रियों को वश में करके सब प्राणियों के
के अनाचरण में लगे हुए हैं (अर्थात् किसी का अनिष्ट
करते) अथवा सर्व प्राणियों के हिततम प्रत्यगात्मा में
अर्थात् "मैं सर्वात्मक हूँ "ऐसी जिनकी दृष्टि है, ऐसे जो
विन् यति इन्द्रियागोचर, वाणी के अविषय, सर्व

अचिन्त्य, कूटस्थ, अचल अक्षर ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धि र्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

जो मेरा भक्त प्राणिमात्र से द्वेष नहीं करता, सब से मित्रता तथा सब पर करुणा रखता है, ममता और अहङ्कार से रहित है, सुख दुःख में जो सम तथा यथालाभ सन्तुष्ट रहता है, निरन्तर ब्रह्म का चिन्तन करता है, जिसका मन वश में है, अपने ब्रह्मभाव में जिसका दृढ़ निश्चय है, तथा मन और बुद्धि जिसने मेरे अर्पण कर दी हैं, ऐसा जो मेरा भक्त है वह मुझे प्यारा है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगै र्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥

जिससे लोग नहीं डरते तथा जो लोगों से नहीं डरता, इष्ट की प्राप्ति में जिसे हर्ष नहीं होता, तथा जो रोग आदि उपद्रवों को सहन करनेवाला, चोर सर्पादि से न डरनेवाला और चित्तभ्रम से रहित है वह पुरुष मेरा प्यारा है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥

जिसे न हर्ष है न द्वेष, न शोक है न इच्छा, शुभ और अशुभ से रहित है, तथा भक्तिमान् है वह मेरा प्यारा है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमति र्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

जो शत्रु मित्र में, मान अपमान में, शीत उष्ण में, सु दुःख में तथा निन्दा स्तुति में समान है, असङ्ग तथा म शील है, मौनी है, जिस किसी पदार्थ से सन्तुष्ट रहत कोई नियत निवास नहीं रखता है और जिसकी बुद्धि निश्चयवाली है, ऐसा भक्तिमान् नर मेरा प्यारा है।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्या दाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥

जैसे सर्व में वर्त्तमान आकाश सूक्ष्म होने के कारण त द्रव्यों के गुण दोषों से अलिप्त है, इसी प्रकार सब दे वर्त्तमान आत्मा भी देहादिकों के विकारों से लिप्त नहीं है

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥

द्रष्टा (जीव आत्मा) ज्ञान की परिपाक दशा में जब यदि गुणों से भिन्न वस्तु को कर्त्ता नहीं मानता, और स्वरूप को देहादि से भिन्न जानता है, तब वह मेरे नि परब्रह्मभाव को प्राप्त होता है।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीर स्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्य स्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

सुख दुःख में समान, सर्वअवस्थाओं में अपने रूप में स्थित, मट्टी का ढेला लोहा तथा सुवर्ण ये तीनों जिसकी दृष्टि में एक से हैं, इष्ट अनिष्ट को तुल्य जानने वाला, ज्ञानवान्, निन्दा स्तुति में मान अपमान में मित्र तथा शत्रु में एकसा और सर्व कार्यों को त्यागनेवाला जो पुरुष है, वह गुणातीत है।

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

हे भारत! जो ज्ञानवान् पुरुष क्षर अक्षर से विलक्षण, सर्व संसारधर्मों से विमुक्त मुझ परमात्मा को पूर्वोक्त प्रकार से जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सर्वत्र ब्रह्मदृष्टि से मुझे भजता हुआ मोक्ष-पद को प्राप्त होता है।

अभयं सत्त्वसंशुद्धि र्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोध स्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौच मद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवी मभिजातस्य भारत॥

अभय, अन्तःकरण की निर्मलता, श्रवण मनन में चित्त की स्थिरता, दान, दुर्वृत्तियों से इन्द्रियों तथा मन को हटाना, अग्नि-होत्र आदि श्रौत स्मार्त्त कर्मों का करना, वेदाध्ययन, शारीरिक वाचिक और मानसिक त्रिविध तप, मन वाणी और कर्म में एकरूपता, प्राणियों की हिंसा न करना, सत्य, क्रोध का न करना, सर्व कर्मों के फल को ईश्वरार्पण करना, शान्ति, चुगली न करना, दीन अन्धे आदि प्राणियों पर करुणा, विषय सामने आने पर इन्द्रियों में विकार का न होना, चित्त में कठोरता का न

होना, लज्जा, निष्प्रयोजन व्यापार को न करना, तेज (बुद्धि की सूक्ष्मता), क्षमा, शक्ति, धैर्य, शौच, अपकार न करना, अपने में अति पूज्यपने का अभिमान न करना, हे भारत! ये सब लक्षण सात्त्विक गुणों की वृद्धि के समय में होते हैं, अथवा जिस पुरुष की भविष्यत् काल में उन्नति होनेवाली हो उस पुरुष में होते हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभ स्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

काम क्रोध और लोभ ये तीनों नरक के तथा आत्मा के नाश के द्वार हैं, इसलिये मुमुक्षु इन तीनों को छोड़े।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयां-स्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

संशय विपर्य्यय से रहित, "अहं ब्रह्मास्मि" ज्ञान से युक्त, सात्त्विक धैर्य से मन को निश्चल करके, शब्द आदि विषयों को छोड़ कर, राग द्वेष को परित्याग करके, एकान्त-देशसेवी, सूक्ष्म भोजन करने वाला, शरीर मन और वाणी को वश में रखनेवाला, सदा ध्यान-योगपरायण, वैराग्य से युक्त, अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध तथा परिग्रह को छोड़ कर और ममता से रहित, शान्त पुरुष मोक्ष का अधिकारी होता है।

* समाप्तम् *

ॐ

"उत्तर-गीता ।"

यदेकं निष्कलं ब्रह्म व्योमातीतं निरञ्जनम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥
कैवल्यं केवलं शान्तं शुद्धमत्यन्तनिर्मलम् ।
कारणं योगनिर्मुक्तं हेतुसाधनवर्जितम् ॥
हृदयाम्बुजमध्यस्थं ज्ञानज्ञेयस्वरूपकम् ।
तत्क्षणादेव मुच्येत तज्ज्ञानाद्ब्रूहि केशव ॥

जो ब्रह्म एक, निरवयव, आकाश से भी सूक्ष्म या उसके समान व्यापक, अविद्यारूप मल से रहित, तर्क अर्थात् युक्ति तथा विज्ञान का अविषय, विनाश और उत्पत्ति से रहित, मुक्त-स्वरूप, केवल, शान्त, शुद्ध और अत्यन्त निर्मल, सर्व संसार का कारण, असङ्ग, उपादान तथा निमित्त कारण से रहित, हृदय-कमल के मध्य में स्थित, ज्ञान और ज्ञेय-स्वरूप है और जिसके ज्ञान से तत्क्षण मुक्ति होती है, हे केशव! उस ब्रह्म का उपदेश करो।

सर्वशून्यं निराभासं समाधिस्तस्य लक्षणम् ।
त्रिशून्यं यो विजानीयात् स तु मुच्येत बन्धनात् ॥

जो आत्मा सर्वविकारों से शून्य निराभास तथा तुरीयावस्था रूप है, ऐसे त्रिशून्य (जागरण स्वप्न सुषुप्ति रूप तीन

अवस्थाओं से, या ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय रूप त्रिपुटी से, या भविष्यत् वर्त्तमान रूप तीनों कालों से, या सत्त्व-रज-तम रूप तीन प्रकार की प्रकृति से, अथवा देश काल वस्तु तीनों परिच्छेदों से या स्वगत स्वजातिगत विजातिगत भेदों से शून्य) आत्मा को जो पुरुष जान लेता है वह ... से छूट जाता है।

प्राप्ते ज्ञानेन विज्ञाने ज्ञेये च हृदि संस्थिते ।
लब्धशान्तिपदे देहे न योगो नैव धारणम् ॥

परोक्षज्ञान द्वारा अपरोक्ष-ज्ञान के प्राप्त होने पर हृदय में ब्रह्म के विद्यमान होने से जब देह में शान्त-पद प्राप्ति हो जाती है तब न समाधि रहती है न धारणा।

देह में होने वाले भूक प्यास, जनन मरण, सुख ... आदि धर्मों से जब अपने स्वरूप का क्षोभ न हो तब ... शान्ति-पद की प्राप्ति समझनी चाहिए।

उल्काहस्तो यथा कश्चित् द्रव्यमालोक्य तां त्यजेत् ।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य ज्ञानं पश्चात्परित्यजेत् ॥

जैसे उल्काहस्त पुरुष, वस्तु को देख कर उस उल्का को त्याग देता है ऐसे ही ज्ञान के साधन रूप शास्त्र द्वारा ब्रह्म को जान कर शास्त्र को छोड़ देना चाहिए। जलती हुई लकड़ी को 'उल्का' कहते हैं।

तिलमध्ये यथा तैलं क्षीरमध्ये यथा घृतम् ।
पुष्पमध्ये यथा गन्धः फलमध्ये यथा रसः ।
काष्ठाग्निवत् प्रकाशेत आकाशे वायुवच्चरेत् ॥

जैसे तिलों में तैल, दूध में घी, पुष्पों में गन्ध,

रस, काष्ठों में अग्नि और आकाश में वायु रहता है, ऐसे ही आत्मा सब में विद्यमान है ।

धर्माधर्मौ मनश्चैव पञ्चभूतानि यानि च ।
इन्द्रियाणि च पञ्चैव याश्चान्याः पञ्च देवताः ॥
ताश्चैव मनसः सर्वे नित्यमेवाभिमानतः ।
जीवेन सह गच्छन्ति यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥

धर्म्म, अधर्म्म, मन, सूक्ष्म पञ्च महाभूत, पञ्च ज्ञान इन्द्रिय, पांचों इन्द्रियों के पाञ्चों देवता तथा मन का देवता, यह सब नित्याभिमानी होने के कारण जीव के साथ (देहान्तर में) तब तक जाते हैं जब तक जीव ब्रह्म को नहीं जानता ।

अत्यन्तमलिनो देहो देही त्वत्यन्तनिर्मलः ।
उभयोरन्तरम्ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते ॥

देह अत्यन्त मलिन है और देही (आत्मा) अत्यन्त निर्मल है, इस प्रकार दोनों के भेद को जान कर किसका शौच करे ?

यथा जले जलं क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् ।
अविशेषो भवेत्तत्त्वे जीवात्मपरमात्मनोः ॥

जैसे जल में जल, दूध में दूध और घी में घी डाला गया तद्रूप ही हो जाता है, ऐसे ही जीव और ईश्वर के अभेद रूप तत्त्व के जान लेने से जीव परमात्मा ही हो जाता है।

यत्र यत्र मृतो ज्ञानी येन वा केन मृत्युना ।
यथा सर्वगतं व्योम तत्र तत्र लयङ्गतः ॥

ज्ञानवान् कहीं भी तथा कैसी भी मृत्यु से मरे, सर्वगत आकाश के समान वहीं लय को प्राप्त हो जाता है।

अहं ब्रह्मेति मां ध्याये देकाग्रमनसा कृतम् ।
सर्वन्तरति पाप्मानं कल्पकोटिशतैः कृतम् ॥

"अहं ब्रह्म" इस प्रकार एकाग्र मन से किया हुआ मेरा ध्यान करोड़हा कल्पों में किये गये पापों को नाश कर देता है।

घटाकाशमिवात्मानं विलयं वेत्ति तत्त्वतः ।
स गच्छति निरालम्बं ज्ञानालोक्यं न संशयः ॥

जो पुरुष घटाकाश के समान अज्ञानरूप उपाधि रहित स्वरूप के एकत्व को यथार्थ जानता है, वह ज्ञान प्रकाशभाव को प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं।

तपेद्वर्षसहस्राणि एकपादस्थितो नरः ।
एकस्य ध्यानयोगस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥

यदि पुरुष एक टांग के बल खड़ा होकर सहस्रों वर्ष तपस्या करे तो वह तपस्या एक बार किये गये ध्यान-योग के सोलहवें अंश के भी तुल्य नहीं है ।

ब्रह्महत्यासहस्राणि भ्रूणहत्याशतानि च ।
एको हि ध्यानयोगश्च दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥

सहस्रशः ब्रह्म-हत्याओं तथा सैकड़ों गर्भपातों रूप पापों को एक ही ध्यानयोग इस प्रकार दग्ध कर देता है, जैसे अग्नि ईन्धन को ।

आलोच्य चतुरो वेदा न्धर्मशास्त्राणि सर्वदा ।
योऽहं ब्रह्म न जानाति दर्वी पाकरसं यथा ॥

जो पुरुष चारों वेदों और समस्त धर्म-शास्त्रों को दृढ़

भी "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा नहीं जानता, उसकी दशा पाक के रस को नहीं जानने वाले चमचे के समान है ।

यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य ।
तथैव शास्त्राणि बहून्यधीत्य सारं न जानन् खरवद्वहेत्सः ॥

जैसे चन्दन को ढोने वाला गदहा उसके भार को ही जानता है ऐसे ही जो पुरुष बहुत से शास्त्रों को पढ़ कर भी सार को नहीं जानता, वह गधे के समान शास्त्रों के भार को ढोने वाला ही है ।

स्वयमुच्चलिते देहे अहं ब्रह्मणि संशयी ।
चतुर्वेदधरो विप्रः सूक्ष्मं ब्रह्म न विन्दति ॥

जो शरीर स्वयं विनाशवान् है, उसमें रहते हुए भी जिस पुरुष को अपने ब्रह्मभाव में संशय है वह चाहे चारों वेदों को पढ़ा हुआ विप्र भी हो तो भी सूक्ष्म ब्रह्म को नहीं प्राप्त होता ।

गवामनेकवर्णानां क्षीरं स्यादेकवर्णतः ।
क्षीरवद् दृश्यते ज्ञानं देहानाञ्च गवां यथा ॥

अनेक वर्णों की गौओं का दूध एक वर्ण का ही होता है, दूध के समान ज्ञान और गौओं के समान देहों को समझना चाहिए ।

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
ज्ञानं नराणामधिकोविशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥

आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि धर्म मनुष्यों तथा

पशुओं के समान ही हैं मनुष्यों में आत्मज्ञान अधिक विशेष है अतः ज्ञान से रहित पुरुष पशुओं के समान हैं।

अहं ब्रह्मेति नियतो मोक्षहेतुर्महात्मनाम् ।

"मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार के अपरोक्ष ज्ञान से महात्माओं की मुक्ति अवश्य होगी।

अहं ब्रह्मेति यः सर्वं विजानाति नरः सदा ।
हन्यात्स्वयमिमान् कामा न्सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥

जो नर सब वस्तुओं में मैं ब्रह्मरूप से विद्यमान हूँ इस प्रकार जानता है वह सर्वाशी (सर्व-भक्षी) और सर्व-विक्रयी होकर भी इन सब सङ्कल्पों को स्वयं नष्ट कर देता है।

ब्रह्मज्ञानाग्निना योगी निर्दहेत्पुण्यपापकौ ।
मित्रामित्रे सुखं दुःख मिष्टानिष्टं शुभाशुभम् ।
एवं मानापमानञ्च तथा निन्दाप्रशंसनम् ॥

योगी ब्रह्म-ज्ञान रूप अग्नि से पुण्य पाप, मित्र अमित्र सुख दुःख, इष्ट अनिष्ट, शुभ अशुभ, मान अपमान और निन्दा प्रशंसा को भस्म कर डालता है।

समाप्तम्

"राम-गीता।"

नाज्ञानहानिर्न च रागसंक्षयो भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत् ।
ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान्भवेत् ॥

कर्म से अज्ञान तथा राग का नाश नहीं होता किन्तु उस अज्ञान और राग से जन्मादिदोषसहित कर्म ही उत्पन्न होता है, उस कर्म से फिर संसार की प्रवृत्ति होती ही रहती है। अतः बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि अज्ञान आदि के नाश के लिये ज्ञान के विचार में ही तत्पर रहे।

यावच्छरीरादिषु माययात्मधी-
स्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम् ।
नेतीतिवाक्यैरखिलं निषिध्य त-
ज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत् क्रियाः ॥

जब तक अज्ञान से शरीर इन्द्रिय आदि में आत्मबुद्धि है तभी तक पुरुष विधिवाक्यों, अर्थवादों और कर्मों के करने का अधिकारी रहता है। अतः "नेति नेति" इत्यादि आत्मतत्त्वप्रतिपादक-शास्त्र द्वारा देहात्म-बुद्धि को सब प्रकार से त्याग कर परात्मा को जाने, तथा सब क्रियाओं को छोड़ देवे।

श्रुतिप्रमाणैरपि नाशिता च सा
कथं भविष्यत्यपि कार्य्यकारिणी ।
विज्ञानमात्रादमलादद्वितीयात्
तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥

श्रुति-प्रमाणों (अहं ब्रह्म, तत्त्वमसि, इत्यादि) से [illegible] हुई वह अविद्या फिर क्यों कर कार्य्यों के कराने में [illegible] हो सकेगी ? उस अद्वैतरूप निर्मल विज्ञानमात्र से अविद्या की फिर उत्पत्ति नहीं हो सकेगी।

श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीतिवाक्यतो
गुरोः प्रसादादपि शुद्धमानसः ।
विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः
सुखी भवेन्मेरुरिवाप्रकम्पनः ॥

गुरुकी अनुग्रह दृष्टि से शुद्ध अन्तः करण वाला [illegible] पुरुष "तत्त्वमसि" इत्यादि वाक्यों द्वारा परमात्मा और [illegible]त्मा की एकता को जान कर सुखी हो जाता है, [illegible] आदि कारणों के प्राप्त होने पर भी मेरुपर्वत के समान [illegible]यमान नहीं होता है।

प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनो
विहाय संगृह्य तयोश्चिदात्मताम् ।
संशोधितां लक्षणया च लक्षितां
ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाद्वयो भवेत् ॥

जीव और ईश्वर के प्रत्यक्त्व अप्रत्यक्त्व, [illegible] सर्वज्ञत्व, आदि जो परस्पर विरुद्ध धर्म हैं, उन विरु[illegible]

को छोड़ कर जीव तथा ईश्वर का चिदात्मस्वरूप जो समान धर्म है उसको स्वीकार करके "तत्त्वमसि" आदि महावाक्यों द्वारा भागत्याग लक्षणा से चिदात्मता को शुद्ध करके, अपने आत्मा को जान कर अद्वैतरूप हो जाय।

बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते
स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः।
अन्योन्यतोऽस्मिन् व्यभिचारतो मृषा
नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे॥

सत्त्व, रजः, तमः—इन तीन गुणों वाली बुद्धि की स्वप्न, जाग्रत्, सुषुप्ति रूप तीन प्रकार की वृत्ति दिखाई देती है। "पहली अवस्था के व्यवहारों का दूसरी तीसरी में, दूसरी का पहली तीसरी में, तीसरी का पहली दूसरी में" इस प्रकार एक का दूसरी में व्यभिचार होने के कारण, नित्य पर ब्रह्म केवल शिवस्वरूप आत्मा में उस बुद्धि का प्रतीत होना झूठा है।

नेतिप्रमाणेन निराकृताखिलो
हृदा समास्वादितचिद्घनामृतः।
त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसम्
पीत्वा यथाम्भः प्रजहाति तत्फलम्॥

"नेति नेति" इस श्रुतिप्रकरण के विचार से नाम रूप जगत् का निषेध करके, हृदय से चिद्घन अमृत आत्मा का आस्वादन करके सत् स्वरूप रस को ग्रहण करके, बाकी सम्पूर्ण जगत् को अनात्मा जान कर त्याग देवे, जैसे कि फल का रस चूस कर शेष भाग छोड़ दिया जाता है।

इच्छादिरागादिसुखादिधर्मकाः
सदा धियः संसृतिहेतवः परे ।
यस्मात् प्रसुप्तौ तदभावतः परः
सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः ॥

आत्मा में इच्छादि, रागादि, सुखादि धर्म वाली बुद्धि की वृत्तियां ही सदा संसार का हेतु हैं, क्योंकि हमें गाढ़ निद्रा में बुद्धि की वृत्तियों के न होने से आत्मा सुखस्वरूप प्रतीत होता है ।

प्रकाशरूपोहमजोहमद्वयो ऽसकृद्विभातोहमतीवनिर्मलः ।
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः संपूर्ण आनन्दमयोहमक्रियः ।

मैं प्रकाशरूप, अज, अद्वय, सर्वदा भासमान, अत्यन्त निर्मल, विशुद्ध, विज्ञानघन, निरामय (रोगादि दुःखों से रहित) सर्व-व्यापक आनन्दमय और अक्रिय हूँ ।

सदैव मुक्तोहमचिन्त्यशक्तिमा नतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ।
अनन्तपारोहमहर्निशं बुधै विंभावितोहं हृदि वेदवादिभिः ।

मैं सदा ही मुक्त हूँ, अचिन्त्य शक्ति वाला हूँ, इन्द्रियों का अविषय तथा ज्ञान और विकार से रहित हूँ, मेरे अन्त का पार नहीं है । आस्तिक लोग दिन रात मन में मेरा ही ध्यान करते हैं ।

ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनि स्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्तबन्धनः ।
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः ।

यदि मुनि इस प्रकार अपने स्वरूप का दिन रात ध्यान करता हुआ सदा सब गृहस्थादि बन्धनों से मुक्त होकर

तथा अभिमान को छोड़ के प्रारब्ध को भोगता हुआ शेष आयुः व्यतीत करे—तो वह योगी साक्षात् मुझ में ही लीन हो जावे ।

आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं
भवत्यभेदेन मयात्मना तदा ।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः
क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथाऽनिलः ॥

जो इस जगत् को आत्मा में अभेद दृष्टि से चिन्तन करता है वह उस अभेद दृष्टि से मुझ आत्मरूप को प्राप्त होता है। जैसे जल समुद्र में, दूध दूध में, आकाश आकाश में तथा वायु वायु में है, ऐसे ही यह जगत् मुझ में है।

इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो
जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः ।
निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो
यथेन्दुभेदो दिशि दृग्भ्रमादयः ॥

लोक में रहता हुआ योगी जगत् के मिथ्यात्व का विचार करे, क्योंकि श्रुति तथा युक्ति प्रमाण से जगत का खण्डन हो चुका है। जैसे दो चान्द का अथवा दिग्भ्रमण का मिथ्या होना संसार में प्रसिद्ध है।

यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं
तावन्ममाराधनतत्परो भवेत् ।
श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणो
यस्तस्य दृश्योहमहर्निशं हृदि ॥

रूप, प्रसंग, ताक्रम॥

जब तक समस्त संसार को ईश्वर रूप न देखे तब तक मेरी आराधना में तत्पर रहे। श्रद्धालु तथा अति भक्तिमान् पुरुष के हृदय में मैं दिन रात प्रकाशमान रहता हूँ।

भ्रातर्यदीदं परिदृश्यते जगन्मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा।
मद्भावनाभावितशुद्धमानसः सुखी भवानन्दमयो निरामयः॥

हे भाई! जो जगत् सब ओर से दिखाई दे रहा है, यह मायामात्र ही है, इसका चित्त से परित्याग करके तू आत्म-चिन्ता से भावित और शुद्ध अन्तः करण वाला होकर आनन्दमय रोगरहित और सुखी हो।



ॐ



"अवधूत-गीता।"

न जातो न मृतोसि त्वं न ते देहः कदाचन।
सर्वं ब्रह्मेति विख्यातं ब्रवीति बहुधा श्रुतिः॥

तू कभी न जन्मता है न मरता है और न कभी तेरा देह ही है, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत" अर्थात् यह सम्पूर्ण व्यक्ताव्यक्त जगत् ब्रह्मरूप है, इस लिये शमदम आदि साधन सम्पन्न होकर ब्रह्म का चिन्तन करें, इस प्रसिद्ध अर्थ को बहुत प्रकार से श्रुति कहती है।

जन्ममृत्युर्न ते चित्त बन्धमोक्षौ शुभाशुभौ।
कथं रोदिपि रे वत्स नाम रूपं न ते न मे॥

हे चित्त! जन्म मृत्यु, बन्ध मोक्ष तथा शुभ अशुभ कर्म तेरे नहीं हैं, अर्थात् तू इनसे रहित है, हे प्यारे! फिर तू क्यों रोता है? नाम रूप न तेरा है न मेरा है।

साकारमनृतं विद्धि निराकारं निरन्तरम्।
एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसम्भवः॥

आकार वाली वस्तु को मिथ्या जान, तथा आकार से शून्य (आत्मा) को नित्य जान, इस तत्त्वोपदेश से फिर जन्म मरण की सम्भावना नहीं है।

न घटो न घटाकाशो न जीवो जीवविग्रहः ।
केवलं ब्रह्म संविद्धि वेद्यवेदकवर्जितम् ॥

जैसे न घट है न घटाकाश है, वैसे ही ब्रह्म न जीवरूप न देहरूप है, अतः वेद्य (शरीर, इन्द्रिय, विषयादि) और वेदक (शरीरादि का जानने वाला) के भेद से रहित ब्रह्म को "केवल" रूप समझो ।

कथं रोदिषि रे चित्त ह्यात्मैवात्मात्मना भव ।
पिब वत्स कलातीत मद्वैतं परमामृतम् ॥

हे मन ! तू क्यों रोता है ? अपने आत्मरूप को जान कर आत्मा ही हो जा (अर्थात् अपने विषय में अनात्म-भावना को छोड़ दे क्योंकि प्रतिविम्ब वस्तुतः विचार करने से बिम्ब के ही स्वरूप वाला होता है) हे वत्स ! तू कला से रहित अद्वैतरूप परमामृत का पान कर ।

नैव बोधो न चाबोधो न बोधाबोध एव च ।
यस्येदृशः सदा बोधः स बोधो नान्यथा भवेत् ॥

आत्मा न बोधरूप है न अबोधरूप है और न बोधाबोधरूप ही है, जिस का आत्मा के विषय में ऐसा ज्ञान है उस का वह ज्ञान मिथ्या नहीं है ।

न जातोऽहं मृतो वापि न मे कर्म शुभाशुभम् ।
विशुद्धं निर्गुणं ब्रह्म बन्धो मुक्तिः कथं मम ॥

न मैं जन्मता हूँ न मरता हूँ और न मेरे शुभाशुभ कर्म हैं, मैं केवल विशुद्ध निर्गुण ब्रह्म हूँ, फिर मेरी बन्ध और मुक्ति कैसी ?

गुणविगुणविभागो वर्तते नैव किञ्चि-
द्रतिविरतिविहीनं निर्मलं निष्प्रपञ्चम्।
गुणविगुणविहीनं व्यापकं विश्वरूपं
कथमहमिह वन्दे व्योमरूपं शिवं वै॥

जिस में सगुण और निर्गुणरूप भेद कुछ भी नहीं है, जो राग और वैराग्य से रहित है और निर्मल तथा निष्प्रपञ्च है, ऐसे सगुण-निर्गुण-भेदशून्य व्यापक विश्वरूप तथा आकाशरूप शिव को मैं कैसे वन्दना करूँ?

श्वेतादिवर्णरहितो नियतं शिवश्च
कार्यं हि कारणमिदं हि परं शिवश्च।
एवं विकल्परहितोऽहमलं शिवश्च
स्वात्मानमात्मनि सुमित्र कथं नमामि॥

हे सुमित्र! जो श्वेत पीत आदि वर्णों से रहित नित्य शिवरूप है और जो कार्य तथा कारण रूप होकर भी "पर" अर्थात् कार्य कारण से भिन्न शिवरूप है, इस प्रकार अनेक विकल्पों से रहित परिपूर्ण अपने आत्मा को मैं अपने आप कैसे नमस्कार करूँ?

निष्कर्मकर्मदहनो ज्वलनो भवामि
निर्दुःखदुःखदहनो ज्वलनो भवामि।
निर्देह-देहदहनो ज्वलनो भवामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्॥

कर्मों से रहित, कर्मों को दग्ध करने वाला अग्नि मैं हूँ, दुःख से रहित, दुःखों को भस्म करने वाला अग्नि मैं हूँ, देह

१३

से शून्य, देह को दाह करने वाला अग्नि मैं हूँ, ज्ञानामृत स[illegible] रस आकाश के समान मैं हूँ ।

निर्नाथनाथरहितं हि निराकुलं वै
निश्चित्तचित्तविगतं हि निराकुलं वै ।
संविद्धि सर्वविगतं हि निराकुलं वै
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥

मुझे नाथपने और अनाथपने (स्वामिसेव्य-भाव) [illegible] तथा सर्वप्रकार के विक्षेपों से रहित, (प्रसन्न, निर्मल [illegible] शान्त) समझ। तथा अन्तःकरण से शून्य और अन्तःक[illegible] का अविषय, व्याकुलता से रहित, सर्व नाम-रूपात्मक सं[illegible] से भिन्न, सर्वप्रकार की आधि व्याधियों से रहित, ज्ञाना[illegible] समरस और गगन सदृश जान ।

किं नाम रोदिषि सखे न जरा न मृत्युः
किं नाम रोदिषि सखे न च जन्मदुःखम् ।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विकारो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥

हे सखे ! किस लिये रोते हो ? न बुढ़ापा है और न [illegible] है, हे मित्र ! क्यों रोते हो ? जन्मों के दुःख नहीं हैं, हे मि[illegible] क्यों रोता है ? तेरे में विकार नहीं है, मैं (और तू) तो ज्ञा[illegible] मृत, समरस, आकाश के समान हूँ (है) ।

किं नाम रोदिषि सखे न च तेऽस्ति कामः
किं नाम रोदिषि सखे न च ते प्रलोभः ।

किं नाम रोदिषि सखे न च ते विमोहो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥

हे सखे ! किस लिये रोते हो ? काम, अतिलोभ, अत्यन्त मोह, ये सब विकार तेरे में नहीं हैं (क्योंकि ये सब अन्तः-करण के धर्म हैं) अतः तू इनके वशीभूत होकर क्यों रोता है ? मैं (और तू) तो ज्ञानामृत समरस आकाश के समान हूँ (है) ।

ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते धनानि
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते हि पत्नी ।
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते ममेति
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥

ऐश्वर्य्य की इच्छा क्यों करते हो ? ये धन तो तेरे हैं नहीं और न कोई तेरी पत्नी है, तथा इन में तेरा ममत्व भी यथार्थ नहीं है, मैं (और तू) तो ज्ञानामृत, एकरस आकाश के समान हूँ (है) ।

लिङ्गप्रपञ्चजनुषी न च ते न मे च
निर्लज्जमानसमिदं च विभाति भिन्नम् ।
निर्भेदभेदरहितं न च ते न मे च
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥

सूक्ष्म और स्थूल जितना भी समष्टि तथा व्यष्टि रूप जगत् है, इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण न तू है न मैं हूँ, यह केवल निर्लज्ज मन की ही भिन्न भिन्न कल्पना है, यह कल्पना न तेरी है न मेरी ! स्वगत, सजा-

तीय और विजातीय सब प्रकार के भेदों से रहित मैं (और
तो ज्ञानामृत समरस आकाश के समान हूँ (है)।

सञ्जायते सर्वमिदं हि तथ्यं सञ्जायते सर्वमिदं वितथ्यं
एवं विकल्पो मम नैव जातः स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम्

"सत् ही से यह जगत् उत्पन्न होता है, या असत् से
जगत् उत्पन्न होता है"—इस प्रकार के विकल्प मुझ में
हो सकते (अर्थात् सत् या असत् दोनों से ही सृष्टि की उत्प
का निरूपण नहीं हो सकता, उत्पत्ति का न होना ही पर
है तथा उत्पत्ति केवल मायामात्र है) मैं स्वभाव से ही
और दुःखों से रहित हूँ ।

पिता च माता च कुलं न जाति-
र्जन्मादि मृत्युर्न च मे कदाचित् ।
स्नेहं विमोहं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥

पिता माता, कुल जाति, जन्म मृत्यु, ये सब मेरे क
नहीं हैं, फिर इन में होने वाले स्नेह या मोह को कैसे कहूँ
केवल मुक्त हूँ, तथा रोग से रहित हूँ ।

न हि कुम्भनभो न हि कुम्भ इति
न हि जीववपुर्न हि जीव इति ।
न हि कारणकार्यविभाग इति
किमु रोदिपि मानस सर्वसमम् ॥

आत्मतत्त्व का बोधन कराने के लिये दृष्टान्त
ग्रहण किये हुए घट तथा घटाकाश को विचार कर दे

न घटाकाश है और न घट ही है। इसी प्रकार दार्ष्टान्त में न जीव का शरीर है तथा न जीव ही है। किसी प्रकार का कार्यकारण-विभाग भी नहीं है, हे मन! तू ऐसे सर्व-सम आत्मा के लिये क्यों रोता है?

बहुधा श्रुतयः प्रवदन्ति यतो वियदादिरिदं मृगतोयसमम्।
यदि चैकनिरन्तरसर्वसमं किमु रोदिपि मानस सर्वसमम्॥

श्रुतियां बहुत प्रकार से कहती हैं कि आकाशादि प्रपञ्च मृगतृष्णा जल के समान है। यदि एक, निरन्तर, सर्व-सम आत्मा है तो फिर हे मन! ऐसे सर्व-सम (सब पदार्थों में समता से, आत्म रूपता से वर्तमान) आत्मा को क्यों रोता है?

त्वमहं न हि हन्त कदाचिदपि कुलजातिविचारमसत्यमिति।
अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादनमत्र करोमि कथम्॥

अहो! तू और मैं दोनों किसी काल में भी नहीं हैं, कुल और जाति का विचार झूठा है, मैं ही परमार्थ रूप शिव हूं अतः नमस्कार कैसे करूं?

कुल जाति आदि की ऊँच नीच भावना से नीची जाति वाले ऊँची जाति वालों को नमस्कारादि करते हैं, जब ऊँच नीच विचार के हेतु कुल जाति ही असत्य हैं तो फिर कौन किसे नमस्कार करे?

मनसा कर्मणा वाचा त्यज्यतां मृगलोचनाः।
न ते स्वर्गोऽपवर्गो वा सानन्दं हृदयं यदि॥

मन, कर्म तथा वाणी से स्त्रियों का परित्याग करो, यदि स्त्रियों सम्बन्धी कामनाओं से हृदय में दुःख नहीं होता है तो फिर तुम्हारे लिये न स्वर्ग है और न अपवर्ग (मोक्ष) है?

मूत्रशोणितदुर्गन्धे ह्यमेध्यद्वारदूषिते ।
चर्मकुण्डे रमन्ते ये ते लिप्यन्ते न संशयः ॥

मूत्र और रज से दुर्गन्ध वाले तथा अपवित्र द्वार दूषित चर्म-कुण्ड (योनि) में जो रमण करते हैं, वेही संसार में लिप्त होते हैं, इस में संशय नहीं है ।

अज्ञात्वा जीवितं लब्धं भवस्तत्रैव देहिनाम् ।
यतो जातो रतस्तत्र अहो लोकविडम्बना ॥

अज्ञान-वश होकर जन्म प्राप्त किया, फिर उसी योनि में प्राणियों की उत्पत्ति हुई, अहो ! संसार की दुर्दशा देखो कि उसी से उत्पन्न होकर फिर उसी में आसक्त होता है ।

गौडी पैष्टी तथा माध्वी विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
चतुर्थी स्त्रीसुरा ज्ञेया ययेदं मोहितं जगत् ॥

गौड़ी, पैष्टी तथा माध्वी तीन प्रकार की सुरा संसार में प्रसिद्ध है, यह चौथी स्त्री भी सुरा ही जाननी चाहिए, जिस सुरा ने जगत् को मोहित कर रखा है ।



ॐ

"अष्टावक्र-गीता।"

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज।
क्षमार्जवदयातोष सत्यं पीयूषवद्भज॥

हे चित्त! यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयों को विष के समान समझ कर छोड़ दे और क्षमा, आर्जव (सीधापन), दया, संतोष, और सत्य को अमृत के तुल्य सेवन कर।

न पृथ्वी न जलं नाग्नि र्न वायुर्द्यौर्न वा भवान्।
एषां साक्षिणमात्मानं चिद्रूपं विद्धि मुक्तये॥

न तू पृथिवी है न जल, न अग्नि है न वायु और न आकाश ही है, किन्तु तू इन सब का साक्षी चिद्रूप आत्मा है ऐसा तू मुक्ति के लिये जान।

न त्वं विप्रादिको वर्णो नाश्रमी नाक्षगोचरः।
असङ्गोऽसि निराकारो विश्वसाक्षी सुखी भव॥

न तू ब्राह्मण आदिक वर्ण है, न आश्रम वाला है, और न इन्द्रियों का विषय है। किन्तु असङ्ग, निराकार और विश्व का साक्षी है, अतः तू स्वपरमानन्द को प्राप्त होकर सुखी हो।

एको विशुद्धबोधोऽह मितिनिश्चयवह्निना।
प्रज्वाल्याज्ञानगहनं वीतशोकः सुखी भव॥

"मैं एक विशुद्धबोध हूँ"—इस निश्चयाग्नि से अज्ञा
वन को जला कर शोक-रहित और सुखी हो ।

आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण एको मुक्तश्चिदक्रियः ।
असङ्गो निःस्पृहः शान्तो भ्रमात्संसारवानिव ॥

यह आत्मा, साक्षी व्यापक पूर्ण एक मुक्त चित्स्वरूप अक्रि
असङ्ग निष्काम और शान्त है, भ्रम से संसारी सा प्रतीत हो
रहा है ।

देहाभिमानपाशेन चिरं बद्धोऽसि पुत्रक ।
बोधोऽहं ज्ञानखड्गेन तन्निःकृत्य सुखी भव ॥

हे पुत्र ! "मैं देह हूँ" इस अभिमान रूप फांसी से तू
बहुत काल से बन्धा हुआ है, अतः "मैं ब्रह्म हूँ" इस ज्ञान
खड्ग से उस देहाभिमान के पाश को काट कर सुखी हो ।

निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरः शीतलाशयः ।
अगाधबुद्धिरक्षुब्धो भव चिन्मात्रवासनः ॥

हे चित्त ! तू इच्छा से रहित, निर्विकार, चिद्घनरूप,
शान्तचित्त, अथाह चैतन्य रूप और अज्ञानकृत क्षोभ से रहित
है, अतः तू चिन्मात्र में निष्ठा कर ।

एकं सर्वगतं व्योम बहिरन्तर्यथा घटे ।
नित्यं निरन्तरं ब्रह्म सर्वभूतगणे तथा ॥

जैसे सर्वव्यापक एक आकाश घड़े के भीतर और बाहर
विद्यमान है, इसी प्रकार अविनाशी निरन्तर ब्रह्म सर्वभूतों के
बाहर भीतर वर्त्तमान है ।

यथा न तोयतो भिन्ना स्तरङ्गाः फेनबुद्बुदाः।
आत्मनो न तथा भिन्नं विश्वमात्मविनिर्गतम्॥

जैसे तरङ्गें, फेन और बुलबुले जल से भिन्न नहीं होते हैं, वैसे ही आत्मा से उत्पन्न यह संसार आत्मा से भिन्न नहीं है।

आत्माज्ञानाज्जगद्भाति आत्मज्ञानान्न भासते।
रज्ज्वज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद्भासते न हि॥

आत्मा के अज्ञान से ही जगत् भासता है, आत्मा के ज्ञान से नहीं। जैसे रस्सी के अज्ञान से ही साँप की प्रतीति होती है, रस्सी के ज्ञान से नहीं।

न मे बन्धोऽस्ति मोक्षो वा भ्रान्तिः शान्ता निराश्रया।
अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितम्॥

वस्तुतः न मेरा बन्ध है न मोक्ष है, अहो! संसार मुझ में स्थित होता हुआ भी वस्तुतः मुझ में स्थित नहीं है, इस प्रकार के ज्ञान से ही संसार का भ्रम आश्रयहीन होकर शान्त हुआ है। (भ्रान्ति का आश्रय अज्ञान है अज्ञान के नष्ट हो जाने से भ्रान्ति भी निराश्रया हो जाती है)।

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्।
अयमेव हि मे बन्ध आसीद्या जीविते स्पृहा॥

मैं देह नहीं हूँ, न मेरा देह है, मैं जीव (अहङ्कार) नहीं हूँ, मैं केवल चित्स्वरूप हूँ, जो मेरी जीवन में इच्छा थी वही मेरा बन्ध था। (अब सच्चिदानन्द-स्वरूपानुभव से मुझ असङ्ग को प्राण के धारण की भी इच्छा नहीं है)।

आत्माज्ञानादहो प्रीति र्विषयभ्रमगोचरे ।
शुक्तेरज्ञानतो लोभो यथा रजतविभ्रमे ॥

हे शिष्य ! आत्मा का ज्ञान न होने के कारण भ्र... उत्पन्न विषयों में तेरी प्रीति थी, जैसे सीप के अज्ञान से उ... रजत की भ्रान्ति लोभ का कारण होती है ।

चेष्टमानं शरीरं स्वं पश्यत्यन्यशरीरवत् ।
संस्तवे चापि निन्दायां कथं क्षुभ्येन्महाशयः ॥

जो अन्य पुरुष के शरीर के समान अपने शरीर को ... करते हुए देखता है, वह महाशय स्तुति और निन्दा से क्षु... चित्त क्यों हो ?

आत्मैवेदं जगत्सर्वं ज्ञातं येन महात्मना ।
यदृच्छया वर्त्तमानं तं निषेद्धुं क्षमेत कः ॥

"यह सब जगत् आत्मा ही है"—ऐसा जिस महात्मा... जान लिया है, प्रारब्ध के अधीन वर्त्तमान उस तत्ववेत्ता... कौन शास्त्र, विधि निषेध में प्रवृत्त या निवृत्त करने को समर्थ...

अहं वा सर्वभूतेषु सर्वभूतान्यथो मयि ।
इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः ॥

मैं ही सब भूतों में (सत्ता तथा स्फूर्ति देने वाला ... अतः सब भूत मुझ में ही हैं, यह ज्ञान का स्वरूप है... लिये आत्मा का त्याग, ग्रहण या लय कुछ भी नहीं किया... सकता ।

तदा बन्धो यदा चित्तं सक्तं काश्वपि दृष्टिषु ।
तदा मोक्षो यदा चित्त मसक्तं सर्वदृष्टिषु ॥

जब चित्त किसी भी अनात्म-दृष्टि में आसक्त हो तब बन्ध समझना चाहिए, और जब चित्त समस्त अनात्म-दृष्टियों से असङ्ग रहे तब मोक्ष समझना चाहिए।

वासना एव संसार इति सर्वा विमुञ्चत।
तत्त्यागो वासनात्यागा त्स्थितिरद्य यथा तथा॥

विषय-वासनाएं ही संसार का कारण हैं, इस लिये उन सब को छोड़ दो, वासनाओं के त्यागने से संसार का भी त्याग हो जायगा, और उस के पश्चात् प्रारब्धानुसार शरीर की स्थिति जैसे कैसे भी रहे।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त महमेवेति निश्चयी।
निर्विकल्पः शुचिः शान्तः प्राप्ताप्राप्तविनिर्वृतः॥

ब्रह्मा से लेकर तिनके तक सब जगत् मैं ही हूँ—ऐसे निश्चय वाला पुरुष सङ्कल्पों से रहित, शुचि (विषयसङ्ग मल से रहित), शान्त, प्राप्ति तथा अप्राप्ति में सन्तुष्ट रहता है।

क धनानि क मित्राणि क मे विषयदस्यवः।
क शास्त्रं क च विज्ञानं यदा मे गलिता स्पृहा॥

जब मेरी विषयसम्बन्धिनी इच्छाएँ ही नष्ट हो गईं तब कहां धन, कहां मित्र, कहां विषय रूपी लुटेरे, कहां शास्त्र और कहां विज्ञान ?

मोक्षो विषयवैरस्यं बन्धो वैषयिको रसः।
एतावदेव विज्ञानं यथेच्छसि तथा कुरु॥

विषयों में वैराग्य ही मोक्ष है, विषयों में अनुराग ही बन्ध है, बस ! इतना ही विज्ञान है, जैसा चाहो वैसा करो।

न त्वं देहो न ते देहो भोक्ता कर्त्ता न वा भवान्।
चिद्रूपोऽसि सदा साक्षी निरपेक्षः सुखं चर॥

न तू देह है न तेरा देह है, और न तू कर्त्ता या भोक्ता ही है, तू तो चिद्रूप सदा साक्षी और निरपेक्ष है, अतः सुखी होकर विचर।

रागद्वेषौ मनोधर्मौ न मनस्ते कदाचन।
निर्विकल्पोऽसि बोधात्मा निर्विकारः सुखं चर॥

रागद्वेष मन के धर्म हैं, मन कभी भी तेरा नहीं है, तू तो निर्विकल्प, ज्ञानस्वरूप और निर्विकार है, अतः सुखी होकर विचर।

एकस्मिन्नव्यये शान्ते चिदाकाशेऽमले त्वयि।
कुतो जन्म कुतः कर्म कुतोऽहङ्कार एव च॥

तू एक, अव्यय, शान्त, चिदाकाश और निर्मल है, तुझ में न जन्म है न कर्म, और अहङ्कार तो कहाँ?

भ्रान्तिमात्रमिदं विश्वं न किञ्चिदिति निश्चयी।
निर्वासनः स्फूर्तिमात्रो न किञ्चिदिव शाम्यति॥

यह संसार भ्रान्तिमात्र है, वस्तुतः कुछ भी नहीं—ऐसे निश्चय वाला पुरुष वासनाओं से रहित, ज्ञान-मात्र और शून्य के समान हो कर शान्ति को प्राप्त होता है।

यस्याभिमानो मोक्षेऽपि देहेऽपि ममता तथा।
न च ज्ञानी न वा योगी केवलं दुःखभागसौ॥

"मैं ज्ञानी हूँ, त्रिकालदर्शी हूँ, मुक्त हूँ" इस प्रकार का अभि

अभिमान है, और देह में भी जिसको ममता है, वह पुरुष न ज्ञानी है न योगी है, केवल दुःख का भागी है।

बुभुक्षुरिह संसारे मुमुक्षुरपि दृश्यते।
भोगमोक्षनिराकाङ्क्षी विरलो हि महाशयः॥

इस संसार में बुभुक्षु (भोगेच्छा वाला) और मुमुक्षु दोनों प्रकार के पुरुष दिखाई देते हैं, परन्तु भोग तथा मोक्ष दोनों की इच्छा न रखने वाला विरला ही कोई महाशय है।

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन्गृह्णन्वदन् व्रजन्।
ईहितानीहितैर्मुक्तो मुक्त एव महाशयः॥

देखता हुआ, सुनता हुआ, छूता हुआ, सूँघता हुआ, खाता हुआ, पकड़ता हुआ, बोलता हुआ और चलता हुआ जो इच्छा द्वेष से रहित है—वह महाशय मुक्त ही है।

सानुरागां स्त्रियं दृष्ट्वा मृत्युं वा समुपस्थितम्।
अविह्वलमना स्वस्थो मुक्त एव महाशयः॥

जिसका मन अनुरागवती नारी को और आई हुई मृत्यु को देख कर चलायमान नहीं होता और अपने स्वरूप में स्थित रहता है, वह महाशय मुक्त ही है।

यस्य बोधोदये ताव त्स्वप्नवद्भवति भ्रमः।
तस्मै सुखैकरूपाय नमः शान्ताय तेजसे॥

जिसकी दृष्टि में ज्ञान के उत्पन्न होते ही प्रपञ्चरूप भ्रम स्वप्न के तुल्य हो जाता है उस सुखैकरूप, शान्त तथा स्वप्रकाश विज्ञान के लिये नमस्कार है।

निर्वासनो निरालम्बः स्वच्छन्दो मुक्तबन्धनः।
क्षिप्तः संस्कारवातेन चेष्टते शुष्कपर्णवत्॥

विषय-वासनाओं से, कर्तव्य की चिन्ता से, राग द्वे
और बन्धन के कारण अज्ञान से निर्मुक्त ज्ञानी पुरुष, प्रा
रूप वायु से फेंका गया सूखे पत्ते के समान चेष्टा करता है।

मूढो नाप्नोति तद्ब्रह्म यतो भवितुमिच्छति ।
अनिच्छन्नपि धीरो हि परब्रह्मस्वरूपभाक् ॥

अज्ञानी उस ब्रह्म को नहीं पाता क्योंकि वह (वि
निरोध से) ब्रह्म होने की इच्छा करता है, और ज्ञा
चाहता हुआ भी परब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त होता है।

श्रोत्रियं देवतां तीर्थं मङ्गनां भूपतिं प्रियम् ।
दृष्ट्वा संपूज्य धीरस्य न कापि हृदि वासना ॥

श्रोत्रिय, देवता, तीर्थ, अङ्गना, राजा और पुत्रादि को
कर या पूजन करके ज्ञानवान् पुरुष के हृदय में किसी प्र
की वासना उत्पन्न नहीं होती ।

पततूदेतु वा देहो नास्य चिन्ता महात्मनः ।
स्वभावभूमिविश्रान्ति विस्मृताशेषसंसृतेः ॥

जिस पुरुष को आत्मस्वरूप भूमि में ही विश्रान्त हो
के कारण अशेष संसार भूल गया है, ऐसे महात्मा को
देह मर जाय या जीता रहे" इत्यादि कोई भी चिन्ता नहीं ह

सवत्रानवधानस्य न किञ्चिद्वासना हृदि ।
मुक्तात्मनो वितृप्तस्य तुलना केन जायते ॥

जिसका मन किसी विषय में नहीं लगता उसके म
किसी प्रकार की वासना उत्पन्न नहीं होती, ऐसे मुक्ता
तथा विशेषतः आत्मानन्द से तृप्त पुरुष की किस से तु
दी जाय ?

* समाप्तम् *

ॐ

"धन्याष्टकम्"



तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां
तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सुनिश्चितार्थम् ।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः
शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्तः ॥

ज्ञान वही है जो इन्द्रियों की शान्ति करने वाला है, ज्ञेय वह है जो उपनिषदों का निश्चित अर्थ है, संसार में धन्य वे लोग हैं जिन्हें परमार्थ-विषयक तीव्र इच्छा है, और शेष पुरुष तो भ्रमगृह में परिभ्रमण कर रहे हैं।

आदौ विजित्य विषयान्मदमोहराग-
द्वेषादिशत्रुगणमाहृतयोगराज्याः ।
ज्ञात्वा मतं समनुभूय परात्मविद्या-
कान्तासुखं वनगृहे विचरन्ति धन्याः ॥

विषयों तथा मद मोह राग द्वेष आदि शत्रुगणों को जीत कर, योगरूपी राज्य को प्राप्त करके, सिद्धान्त को जान कर और परात्मविद्यारूप कान्ता के सुख को अनुभव करके वन-रूप घर में पुण्यवान् पुरुष ही विचरते हैं।

त्यक्त्वा गृहे रतिमधोगतिहेतुभूता-
मात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिबन्तः ।

वीतस्पृहा विषयभोगपदे विरक्ता
धन्याश्चरन्ति विजनेषु विरक्तसङ्गाः ॥

पुण्यात्मा लोग अधोगति के कारण गृह-प्रेम को त्याग कर, आत्मजिज्ञासा से उपनिषदों के सरस अर्थ को पान कर स्पृहा से रहित तथा विषयभोगों से विरक्त होकर, जनशून्य देश में असङ्ग होकर विचरते हैं।

त्यक्त्वा ममाहमितिबन्धकरे पदे द्वे
मानावमानसदृशाः समदर्शिनश्च ।
कर्त्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि
कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः ॥

बन्धन के कारण "मम" और "अहम्" इन दोनों को छोड़ कर एक ईश्वर को ही कर्त्ता समझ कर कर्मों के फल उसी के अर्पण करके मान अपमान से रहित समदर्शी धन्य पुरुष ही कर्मों को करते हैं।

त्यक्त्वैषणात्रयमवेक्षितमोक्षमार्गा
भैक्षामृतेन परिकल्पितदेहयात्राः ।
ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं
धन्या द्विजा रहसि हृद्यवलोकयन्ति ॥

एषणात्रय को त्याग कर, मोक्षमार्ग को विचार कर, भैक्ष रूप अमृत से देहयात्रा करते हुए "परात्पर" परमात्म नामकज्योतिः को एकान्त में तथा हृदय में धन्य द्विज अवलोकन करते हैं।

नासन्न सन्न सदसन्न महन्न चाणु
न स्त्री पुमान्न च नपुंसमेकबीजम् ।

यैर्ब्रह्म तत्समसुपासितमेकचित्तै-
र्धन्या विरेजुरितरे भवपाशबद्धाः ॥

न असत् है न सत्, न सदसत् है, न महान् है न अणु, न पुमान् (पुरुष) है न नपुंसक, केवल कारणस्वरूप है, जिन पुरुषों ने इस प्रकार का ब्रह्म एकचित्त होकर ध्याया है वे श्रेष्ठ पुरुष ही शोभावान् हैं, अन्य लोग संसार के जाल में बन्धे हुए हैं।

अज्ञानपङ्कपरिमग्नमपेतसारं
दुःखालयं मरणजन्मजरावसक्तम्।
संसारबन्धनमनित्यमवेत्य धन्या
ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति ॥

अज्ञानरूप दलदल में मग्न, सारहीन, दुःख के घर, मरण जन्म बुढ़ापे आदि से युक्त, अनित्य संसार रूप इस बन्धन को ज्ञानरूप खड्ग से काट कर भाग्यवान् लोग ही अपने स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं।

शान्तैरनन्यमतिभिर्मधुरस्वभावै-
रेकत्वनिश्चितमनोभिरपेतमोहैः।
साकं वनेषु विदितात्मपदस्वरूपं
तद्वस्तु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः ॥

जो पुरुष शान्त, अनन्यमति (जिनका चित्त भगवान् को छोड़ कर अन्य में नहीं है), मधुर स्वभाव वाले, मोहरहित और ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों के साथ वनों में रह कर तथा अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जान कर दिन रात उसी का ध्यान करते हैं वे धन्य हैं।

* समाप्तम् *

ॐ

"अनात्मश्री-विगर्हण-प्रकरणम्।"

लब्धा विद्या राजमान्या ततः किं
प्राप्ता संपत्प्रभवाढ्या ततः किम् ।
भुक्ता नारी सुन्दराङ्गी ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥

जिसने अपना आत्मा साक्षात् नहीं किया उसने राजमान्यविद्या को पाया तो क्या? प्रभुतायुक्त संपदा पाई तो क्या? और सुन्दराङ्गी नारी भी भोगी तो भी क्या?

स्नातस्तीर्थे जह्नुजादौ ततः किं
दानं दत्तं अष्टसंख्यं ततः किम् ।
जप्ता मन्त्राः कोटिशो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥

जिसने अपने आत्मा का साक्षात्कार नहीं किया उसने गङ्गा आदि तीर्थों में स्नान किया तो क्या? सोलह दान दिये तो क्या? और करोड़ों मन्त्र भी जपे तो क्या?

अग्नैर्विप्रास्तर्पिता वा ततः किं
यज्ञैर्देवास्तोपिता वा ततः किम् ।
कीर्त्या व्याप्ताः सर्वलोकास्ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥

जिसने आत्मा का साक्षात्कार नहीं किया उसने अन्नं

से विप्रों को तृप्त किया तो क्या ? यज्ञों से देवों की तृप्ति की तो क्या ? उसका यश त्रिलोकी में व्याप्त भी हो गया तो क्या ?

कायः क्लिष्टश्चोपवासैस्ततः किं
लब्धाः पुत्राः स्वीयपत्न्यास्ततः किम् ।
प्राणायामः साधितो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥

जिसने अपने आत्मा को नहीं जाना उसने उपवासों से शरीर को क्लेश दिया तो क्या ? अपनी पत्नी से पुत्रों की प्राप्ति की तो क्या ? और प्राणायाम भी सिद्ध किये तो क्या ?

भूपेन्द्रत्वं प्राप्तमुर्व्यां ततः किं
देवेन्द्रत्वं चोपलब्धं ततः किम् ।
मुण्डीन्द्रत्वं चोपलब्धं ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥

जिसने स्वात्मसाक्षात्कार नहीं किया उसने पृथिवी पर राजराजत्व-पद प्राप्त किया तो क्या ? अथवा देवेन्द्रत्व-पद पाया तो क्या ? मुण्डीन्द्रत्व (सन्यासियों का राजा) पदवी भी पाई तो क्या ?

धातुर्लोकः साधितो वा ततः किं
विष्णोर्लोको वीक्षितो वा ततः किम् ।
शम्भोर्लोकः शासितो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥

जिसने आत्मदर्शन नहीं किया उसने ब्रह्मलोक को पाया तो क्या ? विष्णुलोक को देख लिया तो क्या ? और शिव-लोक पर भी शासन किया तो क्या ?

ॐ

"प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका।"

मदिरेव मोहजनकः कः स्नेहः के च दस्यवो विषयाः।
का भववल्ली तृष्णा को वैरी यस्त्वनुद्योगः॥

मदिरा के समान मोहजनक कौन है ? स्नेह। दस्यु (डाकू) कौन है ? विषय। संसारलता कौन है ? तृष्णा। वैरी कौन है ? उद्योग का न करना।

कस्माद्भयमिह मरणा दन्धादिह को विशिष्यते रागी।
कः शूरो यो ललना लोचनबाणैर्न च व्यथितः॥

डर किस से है ? मृत्यु से। अन्धे से बढ़ कर कौन है ? रागी। शूर कौन है ? जो ललनाओं के लोचनरूप बाणों से बिंधा नहीं।

पातुं कर्णाञ्जलिभिः किममृतमिह युज्यते सदुपदेशः।
किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम॥

श्रवणरूप अञ्जलियों से कौन से अमृत का पान करना चाहिए ? सदुपदेश का। गुरुता का मूल क्या है ? प्रार्थना का न करना।

किं गहनं स्त्रीचरितं कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दुःखमसन्तोषः किं लाघवमधमतो याच्ञा॥

किं जीवितमनवद्यं किं जाड्यं पठतोऽध्ययनानभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः॥

गहन क्या है? स्त्रीचरित्र। चतुर कौन है? जो स्त्री-चरित्र से दूषित नहीं हुआ। दुःख क्या है? असन्तोष। लघुता क्या है? नीच से मांगना। जीवन क्या है? निन्दा का न होना। पढ़ते हुए भी मूर्खता क्या है? पढ़े हुए का अभ्यास न करना। जागता कौन है? विवेकी। निद्रा क्या है? प्राणी की मूढ़ता।

नलिनीदलगतजलव त्तरलं किं यौवनं धनं चायुः।
कथय पुनः के शशिनः किरणसमाः सज्जना एव॥

नलिनीपत्र पर पड़े हुए जल के तुल्य चञ्चल कौन है? यौवन, धन और आयु। अच्छा कहो चन्द्र की किरणों के समान कौन हैं? सज्जन।

को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसङ्गविरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं प्रियं च किं प्राणिनामसवः॥

नरक क्या है? पराधीनता। सुख क्या है? सब सङ्गों से उपरति। सत्य क्या है? भूतों का हित। प्राणियों को प्यारे क्या हैं? प्राण।

किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्घं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात्किं शल्यं प्रच्छन्नं यत्कृतं पापम्॥

मृत्यु क्या है? मूर्खता। अमूल्य क्या है? जो अवसर पर दिया जाय। मरणपर्य्यन्त काण्टा क्या है? जो गुप्त पाप किया है।

कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने ।
अवधीरणा क्व कार्या खलपरयोषित्परधनेषु ॥

यत्न किस विषय में करना चाहिए ? विद्याभ्यास, औषध और दान में । तिरस्कार किसका करना चाहिये ? दुष्ट, पर नारी और परधन का ।

काहर्निशमनुचिन्त्या संसारासारता न तु प्रमदा ।
का प्रेयसी विधेया करुणा दीनेषु सज्जने मैत्री ॥

दिन रात किस का चिन्तन करना चाहिए ? संसार की असारता का, न कि नारी का । अत्यन्त प्यारी किसे बनाना चाहिए ? दीनों पर करुणा को और सज्जनों से मैत्री को ।

कः साधुः सद्वृत्तः कमधममाचक्षते त्वसद्वृत्तम् ।
केन जितं जगदेत त्सत्यतितिक्षावता पुंसा ॥

साधु कौन है ? सदाचारी । अधम किसे कहते हैं ? दुराचारी को । इस जगत् को किस ने जीता है ? सत्यवान् और तितिक्षावान् पुरुष ने ।

किं दानमनाकाङ्क्षं किं मित्रं यो निवारयति पापात् ।
कोऽलङ्कारः शीलं किं वाचां मण्डनं सत्यम् ॥

दान क्या है ? जो निराकाङ्क्ष दिया जाय । मित्र कौन है ? जो पाप से हटाता है । अलङ्कार क्या है ? शील । वाणी का भूषण क्या है ? सत्य ।

कुत्र विधेयो वासः सज्जननिकटेऽथवा काश्याम् ।
कः परिहार्यो देशः पिशुनयुतो लुब्धभूपो वा ॥

वास कहाँ करना चाहिए ? सज्जन के निकट या काशी में। त्याग ने योग्य देश कौन है ? जहाँ लोभी राजा या चुगली करने वाले पुरुष रहते हों।

किं लघुताया मूलं प्राकृतपुरुषेषु या याच्ञा।
रामादपि कः शूरः स्मरशरनिहतो न यश्चलति॥

छुटप्पन का कारण क्या है ? प्राकृत (छोटे) पुरुषों से माँगना। राम से भी बढ़ कर शूर कौन है ? जो काम के बाणों से बिंधा गया चलायमान नहीं होता।

किमहर्निशमनुचिन्त्यं भगवच्चरणं न संसारः।
चक्षुष्मन्तोऽप्यन्धाः के स्युर्ये नास्तिका मनुजाः॥

दिन रात किस का चिन्तन करना चाहिए ? भगवान् के चरणों का, संसार का नहीं। आंखों वाले भी अन्धे कौन हैं ? जो नास्तिक लोग हैं।

किं स्मर्तव्यं पुरुषै हरिनाम सदा न यावनीभाषा।
को हि न वाच्यः सुधिया परदोषश्चानृतं तद्वत्॥

पुरुषों को क्या स्मरण करना चाहिए ? सदा हरि का नाम, म्लेच्छभाषा नहीं। बुद्धिमान् को क्या नहीं कहना चाहिए ? पराया दोष और झूठ।

का दुर्लभा नराणां हरिभक्तिः पातकं च किं हिंसा।
को हि भगवत्प्रियः स्या द्योऽन्यं नोद्वेजयेदनुद्विग्नः॥

मनुष्यों को दुर्लभ क्या है ? हरि-भक्ति। पातक क्या है ? हिंसा। भगवत्प्रिय कौन हो सकता है ? जो दूसरों को भय न देवे और स्वयं भी निर्भय रहे।

को वर्धते विनीतः को वा हीयेत यो दृप्तः।
को न प्रत्येतव्यो ब्रूते यश्चानृतं शश्वत् ॥

वृद्धि को कौन पाता है ? जो विनीत है। ह्रास को कौन प्राप्त होता है ? जो अभिमानी है। विश्वास किस पर नहीं करना चाहिए ? जो सदा झूठ बोलता है।

मुक्तिं लभेत कस्मा न्मुकुन्दभक्तेर्मुकुन्दः कः।
यस्तारयेदविद्यां का चाविद्या यदात्मनोऽस्फूर्तिः॥

मुक्ति किस से मिलती है ? मुकुन्द की भक्ति से। मुकुन्द कौन है ? जो अविद्या को नाश करता है। अविद्या क्या है ? आत्मा को न जानना।

को मायी परमेशः क इन्द्रजालायते प्रपञ्चोऽयम्।
कः स्वप्ननिभो जाग्र द्व्यवहारः सत्यमपि च किं ब्रह्म॥

मायी कौन है ? परमेश्वर। इन्द्रजाल के सदृश क्या है ? यह प्रपञ्च। स्वप्न के तुल्य क्या है ? जाग्रद्व्यवहार। और सत्य क्या है ? ब्रह्म।

किं मिथ्या यद्विद्या नाश्यं तुच्छं तु शशविषाणादि।
का चानिर्वचनीया माया किं कल्पितं द्वैतं ॥

मिथ्या क्या है ? जिस का विद्या से नाश हो, और शश-विषाण (खरगोश के सींग) आदि तो तुच्छ हैं, मिथ्या नहीं। अनिर्वचनीय क्या है ? माया। कल्पित क्या है ? द्वैत।

प्रत्यक्षदेवता का माता पूज्यो गुरुश्च कस्तातः।
कः सर्वदेवतात्मा विद्याकर्मान्वितो विप्रः ॥

प्रत्यक्ष देवता कौन है ? माता। पूज्य और गुरु कौन है ? पिता। सर्वदेवतारूप कौन है ? विद्या और कर्मयुक्त विप्र।

ॐ

"काशी-पञ्चकम् ।"

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका च ।
ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा सा काशिकाहं निजबोधरूपा ॥

जिस में परम शान्ति को देने वाली मनोनिवृत्ति (उपरति) ही मणिकर्णिका रूप श्रेष्ठ तीर्थ है और निर्मल ज्ञानप्रवाह ही आदिगङ्गा है, वह निजबोधरूप काशी मैं हूँ ।

यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं चराचरं भाति मनोविलासम् ।
सच्चित्सुखैका परमात्मरूपा सा काशिकाहं निजबोधरूपा ॥

जिस में इन्द्रजाल के समान कल्पित चराचर मनोविलासमात्र प्रतीत होता है, वह केवल सत् चित् परमात्मरूप और निजबोधरूप काशी मैं हूँ ।

कोशेषु पंचस्वधिराजमाना बुद्धिर्भवानी प्रतिदेहगेहम् ।
साक्षी शिवः सर्वगतोन्तरात्मा सा काशिकाहं निजबोधरूपा ॥

जहां पांच कोशों में प्रकाशित होती हुई बुद्धि, प्रत्येक देह रूप घर में भवानी के समान है और सर्वव्यापक अन्तरात्मा साक्षी शिव के समान है, वह निजबोधरूप काशी मैं हूँ ।

काश्यां हि काश्यते काशी काशी सर्वप्रकाशिका ।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका ॥

आत्मरूपकाशी में भौतिककाशी प्रकाशित हो रही है, जो काशी (आत्मा) सबको प्रकाशित कर रही है, वह काशी जिसने जान ली है, उसी ने पारमार्थिक काशी को पाया है।

काशीक्षेत्रं शरीरं त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगङ्गा
भक्तिश्रद्धागयेयं निजगुरुचरणध्यानयोगः प्रयागः।
विश्वेशोयं तुरीयः सकलजनमनःसाक्षिभूतोऽन्तरात्मा
देहे सर्वं मदीये यदि वसति पुनस्तीर्थमन्यत् किमस्ति।

शरीर काशीक्षेत्र है, ज्ञान ही त्रिभुवनजननी सर्वव्यापिनी गङ्गा है, भक्ति और श्रद्धा गया के समान हैं। अपने गुरु के चरणों में ध्यान लगाना प्रयाग है, और सकल मनुष्यों के मन का साक्षिभूत तुरीय अन्तरात्मा विश्वेश्वर के समान है। इस प्रकार यदि मेरे शरीर में सब तीर्थ निवास करते हैं तो फिर मेरे लिये और कौनसा तीर्थ चाहिए ?

समाप्तम्।

ॐ

"परा पूजा।"

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः॥

सर्वव्यापक ब्रह्म का आवाहन कहां करें? जो सब का आधार है उसे आसन कैसा? स्वच्छ के लिये पाद्य और अर्घ्य क्यों करें? और शुद्ध के लिये आचमन कैसा?

निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च।
निरालम्बस्योपवीतं पुष्पं निर्वासनस्य च॥

निर्मल का स्नान किस लिये? सब संसार जिसके उदर में है उसके लिये कपड़ा कैसा? निराश्रय का उपवीत और वासनारहित के लिये पुष्प कैसे?

निर्लेपस्य कुतो गन्धो रम्यस्याभरणं कुतः।
नित्यतृप्तस्य नैवेद्यं ताम्बूलं च कुतो विभोः॥

निर्लेप के लिये गन्ध कैसा? रमणीय के लिये भूषण किस लिये? नित्यतृप्त परमात्मा के लिये नैवेद्य और ताम्बूल कैसा?

प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः।
वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते॥

अनन्त की प्रदक्षिणा क्यों कर ? अद्वय को नमस्कार कर ? जो वेदवाक्यों से भी नहीं जाना जाता उस के स्तोत्र क्यों बनाया जाता है ?

स्वयंप्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः ।
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत् ॥

स्वयंप्रकाशमान विभु की नीराजना (आरती) कि लिये ? बाहर भीतर परिपूर्ण परमेश्वर का उद्वासन (वि- र्जन) कैसे हो ?

एवमेव परा पूजा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
एकबुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमैः ॥

ब्रह्मवेत्ता पुरुषों को इस (आगे कहे) प्रकार से स अवस्थाओं में और सदा देवेश के विषय में एक बुद्धि से पूजा करनी चाहिए ।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारस्तु पदोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥

हे शम्भो ! तू आत्मा है, पार्वती मति है, प्राण सहचर (गण) हैं, शरीर घर है, अनेक प्रकार के उपभोगों की रचना तेरी पूजा है, निद्रा ही समाधि अवस्था है, पांव से चलना तेरी प्रदक्षिणविधि है, सब वचन तेरे स्तोत्ररूप हैं और जो कर्म करता हूँ, वह सब तेरा ही आराधन है।

मनः कुत्रोद्युक्तं सपदि वद मे गम्यपदवीं
नरे वा नार्यां वा गमनमुभयत्राप्यनुचितम् ।
यतस्ते क्लीवत्वं प्रतिपदमहो हास्यपदवीं
ततो गन्ता नूनं तदनुसर तद्ब्रह्म परमम् ॥

हे मन ! तू ने कहां जाने का उद्योग किया है ? जाने योग्य स्थान मुझ को बता ? नर या नारीरूप दोनों स्थानों में तेरा गमन अनुचित है, क्योंकि तू प्रतिपद नपुंसक है (अर्थात् स्वान्तं, हृदयं, हृत्, मानसम्, मनः, चेतः, अन्तःकरणम् इत्यादि मनःपर्य्याय प्रत्येक पद नपुंसकलिङ्ग है) वहां जाने से तू अवश्य हँसी को प्राप्त होगा, इसलिये निश्चय करके उस परब्रह्म का अनुसरण कर, क्योंकि ब्रह्म (पद) भी नपुंसक (लिङ्ग) है ।



ॐ

"यति-पञ्चकम् ।"

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः
विशोकमन्तःकरणे रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः

वेदान्तवाक्यों का सदा अभ्यास करते हुए, भिक्षा-अन्नमात्र से तुष्टि रखते हुए, शोकरहित होकर अन्तः[करण] (आत्मा) में रमण करते हुए कौपीनवान् पुरुष निश्चय से भाग्यवान् हैं।

मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः पाणिद्वयं भोक्तुममन्त्रयन्तः
कन्यामिव श्रीमपि कुत्सयन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः

केवल पेड़ की जड़ में आश्रय लेने वाले, दोनों हाथ[ों को] पात्र के काम में लाने वाले, कन्या के समान लक्ष्मी [की] निन्दा करने वाले कौपीन धारी ही भाग्यवान् हैं।

देहादिभावं परिवर्तयन्तः आत्मानमात्मन्यवलोकयन्तः
नान्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः

देह में आत्मबुद्धि को छोड़ने वाले, आत्मा को [आत्मा] में ही देखने वाले और भीतर मध्य तथा बाहर के विषयों [का] स्मरण न करने वाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं।

स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः　सुशान्तसर्वेन्द्रियतुष्टिमन्तः।
अहर्निशं ब्रह्मसुखे रमन्तः　कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥

अपने आनन्दस्वरूप में सन्तुष्ट रहने वाले, अच्छे प्रकार शान्त हुई सब इन्द्रियों से सन्तुष्ट होकर दिन रात ब्रह्मानन्द में रमण करने वाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं।

पञ्चाक्षरं पावनमुच्चरन्तः　पतिं पशूनां हृदि भावयन्तः।
भिक्षाशिनो दिक्षु परिभ्रमन्तः　कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥

परम पवित्र पञ्चाक्षर मन्त्र का उच्चारण करने वाले, शिव जी को हृदय में चिन्तन करने वाले और भिक्षा करके दिशाओं में परिभ्रमण करने वाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं।

"नमः शिवाय" इति पञ्चाक्षरं नाम मन्त्रम्।





"प्रबोध-सुधाकरः ।"

—— :✻: ——

यं वर्णयितुं साक्षा च्छ्रुतिरपि मूकेव मौनमाचरति ।
सोऽस्माकं मनुजानां किं वाचां गोचरो भवति ॥

जिसको निरूपण करने में साक्षात् श्रुति भी मूक=गूंगे के समान मौन का अवलम्बन करती है, क्या वह हमारी वाणी का विषय हो सकता है ?

वैराग्यमात्मबोधो भक्तिश्चेति त्रयं गदितम् ।
मुक्तेः साधनमादौ तत्र विरागो वितृष्णता प्रोक्ता ॥

वैराग्य, आत्मबोध और भक्ति यह तीनों ही मुक्ति के मुख्य साधन कहे गये हैं। तृष्णाभाव को ही वैराग्य कहते हैं।

तदिदं य एवमार्यो वेद ब्रह्माहमस्मीति ।
स इदं सर्वं च स्या त्तस्य हि देवाश्च नेशते भूत्या ॥

जो श्रेष्ठ पुरुष इस आत्मा को "मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार जानता है वह सर्वरूप हो जाता है, देवता भी अपने ऐश्वर्य से उस पर शासन करने में असमर्थ हो जाते हैं, क्योंकि वह देवताओं का आत्मा ही है।

एषां स भवत्यात्मा न्योऽन्याश्च देवतामुपास्ते यः ।
अहमन्योऽसावन्य श्चेत्थं यो वेद पशुवत्सः ॥

जिन की दृष्टि में आत्मा अन्य है और जो अन्य देवता की उपासना करते हैं, "मैं अन्य हूँ वह अन्य है" इस प्रकार जो मानते हैं वह पशु के समान हैं। "एवां स भवत्यात्मा" इतना अंश पूर्वश्लोक में अन्वयी है।

मानुष-मतङ्ग-महिष-श्व सूकरादिष्वनुस्यूतम्।
यः पश्यति जगदीशं स एव भुङ्क्तेऽद्वयानन्दम्॥

जो पुरुष मानुष, हस्ती, भैंसे, कुत्ते और सुअर आदि में व्यापक जगदीश को देखता है, वही अद्वय आनन्द को अनुभव करता है।

निष्ठुरकुठारघातैः काष्ठे संछेद्यमानेऽपि।
अन्तर्वर्ती वह्निः किं घातैश्छेद्यते तद्वत्॥
तनुसम्बन्धाज्जातैः सुखदुःखैर्लिप्यते नात्मा।
ब्रूते श्रुतिरपि भूयो ऽनश्नन्नन्योऽभिचाकशीत्यादि॥

तेज़ कुल्हाड़े आदि के आघात से लकड़ी के कटने पर भी तन्मध्यवर्त्ती अग्नि क्या उसके प्रहारों से कटता है? इसी प्रकार शरीरसम्बन्ध से उत्पन्न हुए सुख दुःखों से आत्मा लिप्त नहीं होता। इसी बात को "अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति" इत्यादि श्रुति कहती है (श्रुत्यर्थ-ज्ञानवान् सुख दुःखों को न भोगता हुआ साक्षिमात्र रहता है)।

चित्तं विषयोपरमा द्यथा यथा याति नैश्चल्यम्।
वेणोरिव दीर्घतर स्तथा तथा श्रूयते नादः॥

मन विषयों से हट कर जैसे जैसे निश्चल होता जाता है, वैसे वैसे वेणु (बाँसुरी) के नाद के समान दीर्घ नाद सुनाई देने लगता है।

परमानन्दानुभवा त्सुचिरं नादानुसन्धानात् ।
श्रेष्ठश्चित्तलयोऽयं सत्स्वन्यलयेष्वनेकेषु ॥

यद्यपि चित्त के लयप्रकार और भी हैं तथापि सब श्रेष्ठ चित्तलय का प्रकार यही है जो चिरकाल तक नाद अनुचिन्तन और उस से होने वाले परमानन्द के अनुभव होता है ।

आत्मन्यनुप्रविष्टं चित्तं नापेक्षते पुनर्विषयान् ।
क्षीरादुद्धृतमाज्यं यथा पुनः क्षीरतां न यातीह ।

आत्मा में अनुप्रविष्ट (संलग्न) मन फिर विषयों की अपेक्षा नहीं करता, जैसे दूध से निकाला गया घृत फिर क्षीरभाव प्राप्त नहीं होता ।

दर्पणतः प्राक् पश्चा दस्ति मुखं प्रतिमुखं तदाभाति
आदर्शेऽपि च नष्टे मुखमस्ति मुखे तथैवात्मा ॥

जैसे दर्पण के पहले और पीछे मुख वर्त्तमान है, वही मुख आदर्श में प्रतिमुख होकर प्रतीत होता है, दर्पण के नष्ट होने पर मुख तो अपने स्थान में विद्यमान ही रहता है, इसी प्रकार आत्मा है ।

शुध्यति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोज-भक्तिमृते
वसनमिव क्षारोदै र्भक्त्या प्रक्षाल्यते चेतः ॥

श्रीकृष्ण-पादारविन्द की भक्ति के बिना यह मन शुद्ध नहीं हो सकता, जैसे क्षारजल से वस्त्र प्रक्षालित होते हैं, उसी प्रकार अन्तःकरण भक्ति से शुद्ध हो जाता है ।

प्रमितयदृच्छालाभे सन्तुष्टिर्दारपुत्रादौ ।
ममताशून्यत्वमतो निरहङ्कारत्वमक्रोधः ॥
मृदुभाषिता प्रसादो निजनिन्दायां स्तुतौ समता ।
सुखदुःखशीतलोष्ण द्वन्द्वसहिष्णुत्वमापदो न भयम् ॥
निद्राहारविहारेष्व नादरः सङ्गराहित्यम् ।
वचने चानवकाशः कृष्णस्मरणेन शाश्वती शान्तिः ॥
जन्तुषु भगवद्भावं भगवति भूतानि पश्यति क्रमशः ।
एतादृशी दशा चे त्तदैव हरिदासवर्यः स्यात् ॥

परिमित और स्वतःप्राप्त वस्तु में सन्तोष, स्त्री पुत्र आदि में ममता का न होना, अहङ्कार और क्रोध का न करना, मृदु बोलना, प्रसन्नता, अपनी निन्दा स्तुति में सम रहना, सुख दुःख शीत उष्ण आदि द्वन्द्वों का सहना, आपदा से भय न करना, निद्रा आहार विहार में अनादर, असङ्गपन, बातें न करना, कृष्णस्मरण से निरन्तर शान्ति का होना, प्राणियों में भगवद्बुद्धि, और भगवान् में सब भूतों को जानना, जब क्रमशः ऐसी अवस्था हो जाय तो मनुष्य हरि के दासों में श्रेष्ठ दास होता है ।

इतरे दृश्यपदार्था लक्ष्यन्तेऽनेन चक्षुषा सर्वे ।
भगवाननया दृष्ट्या न लक्ष्यते ज्ञानदृग्गम्यः ॥

अन्य सब दृश्य पदार्थ इन आंखों से दिखाई देते हैं, भगवान् इस दृष्टि से दिखाई नहीं देता, वह ज्ञानदृष्टि से ही जाना जाता है ।

यद्विश्वरूपदर्शन समये पार्थाय दत्तवान्भगवान् ।
दिव्यं चक्षुस्तस्मा द्दृश्यता युज्यते नृहरौ ॥

यतः भगवान् ने अर्जुन को विश्वरूप दिखाने के समय दिव्यचक्षुः दिया था अतः नृहरि का इन आंखों से अदृश्यपना ही युक्त है ।

लोहशलाकानिवहैः स्पर्शाश्मनि भिद्यमानेऽपि ।
स्वर्णत्वमेति लौहं द्वेषादपि विद्विषां तथा प्राप्तिः ॥

जैसे लोहे की सलाइयों से भेदन किया हुआ भी पारसमणि, लोहे को सोना बनाता ही है, इसी प्रकार द्वेष करने पर भी भगवद्विद्वेषी (हिरण्यकशिपु-रावण आदि) पुरुषों को भगवान् की प्राप्ति अवश्य होती है ।

चेतश्चञ्चलतां विहाय पुरतः सन्धाय कोटिद्वयं
तत्रैकत्र निधेहि सर्वविषयानन्यत्र च श्रीपतिम् ।
विश्रान्तिर्हितमप्यहो क्व नु तयोर्मध्ये तदालोच्यतां
युक्त्या वानुभवेन यत्र परमानन्दश्च तत्सेव्यताम् ॥

हे चित्त ! चञ्चलता को छोड़ कर सामने दो कोष्ठों की रचना कर, एक कोष्ठ में सब विषयों को रख और दूसरे में श्रीपति को, और दोनों के विषय में विचार कर कि किसमें सुख और कल्याण है, युक्ति और अनुभव से जहाँ परमानन्द की प्राप्ति देखे उसे ही सेवन कर ।

अयमुत्तमोऽयमधमो जात्या रूपेण सम्पदा वयसा ।
श्लाघ्योऽश्लाघ्यो वेत्थं न वेत्ति भगवाननुग्रहावसरे ॥

भगवान् अनुग्रह-काल में जाति, रूप, सम्पदा, आयु आदि से यह पुरुष उत्तम है, यह अधम है, यह श्लाघनीय है अथवा अश्लाघ्य है, इस प्रकार कुछ विचार नहीं करते।

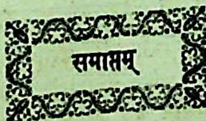
* समाप्तम् *

ॐ

"एक-श्लोकी।"

किं ज्योतिस्तव भानुमानहनि मे रात्रौ प्रदीपादिकं
स्यादेवं रविदीपदर्शनविधौ किं ज्योतिराख्याहि मे।
चक्षुस्तस्य निमीलनादिसमये किं धीर्धियोऽदर्शने
किं तत्राहमतो भवान्परमकं ज्योतिस्तदस्मि प्रभो॥

तेरा ज्योतिः क्या है? दिन में सूर्य, और रात में प्रदीप आदिक मेरे ज्योति हैं। सूर्य दीप आदि को देखने के लिये कौन सी ज्योतिः है सो मुझ से कहो? आँख। आंख के निमीलनादि समय में कौन सी ज्योति है? बुद्धि। बुद्धि के अभाव में कौन? उस समय "मैं" ही स्वयं ज्योतिः हूँ, अतः प्रभो! वह परम ज्योतिः मैं ही हूँ।



ॐ

"सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सारसंग्रहः"

मृदादिकारणं नित्यं त्रिषु कालेषु दर्शनात्।
घटाद्यनित्यं तत्कार्यं यतस्तन्नाश ईक्ष्यते ॥
तथैवैतज्जगत्सर्व मनित्यं ब्रह्मकार्यतः।
तत्कारणं परं ब्रह्म भवेन्नित्यं मृदादिवत् ॥

मिट्टी आदि कारण नित्य है, क्योंकि तीनों कालों में दिखाई देता है और उस के कार्य्य घड़े आदि अनित्य हैं क्योंकि उन का नाश देखने में आता है। इसी प्रकार यह सब जगत् ब्रह्म का कार्य्य होने से अनित्य है और उस का कारण परब्रह्म मृदादि के समान नित्य है।

ऐहिकामुष्मिकार्थेषु ह्यनित्यत्वेन निश्चयात्।
नैःस्पृह्यं तुच्छबुद्ध्या यत्तद्वैराग्यमितीर्यते ॥
नित्यानित्यपदार्थ विवेकात्पुरुषस्य जायते सद्यः।
स्रक्चन्दनवनितादौ सर्वत्रानित्यवस्तुनि विरक्तिः।

इस लोक और परलोक के पदार्थों में अनित्यत्व के निश्चय होने से उन्हें तुच्छ जान कर जो निराकाङ्क्षता है उसे वैराग्य कहते हैं। नित्य और अनित्य पदार्थों के विवेक से पुरुष को माला चन्दन स्त्री आदि सब अनित्य पदार्थों में शीघ्र ही वैराग्य हो जाता है।

श्रुत्या निरुक्तं सुखतारतम्यं
ब्रह्मान्तमारभ्य महीमहेशम्।
औपाधिकं तत्तु न वास्तवं चे-
दालोच्य को वा विरतिं न याति ॥

सार्वभौमराजसुख से लेकर ब्रह्मलोक-सुख पर्यन्त श्रुति ने सुखतारतम्य (सुख की क्रमशः अधिकता) का निरूपण किया है, यदि विचार करने से वे सब सुख औपाधिक हैं वास्तविक नहीं—ऐसा निश्चय हो जाय तो इन सब सुखों में किस को वैराग्य नहीं होगा ?

कोशक्रिमिस्तन्तुभिरात्मदेह-
मावेष्ट्य चावेष्ट्य च गुप्तिमिच्छन्।
स्वयं विनिर्गन्तुमशक्त एव सं-
स्ततस्तदन्ते म्रियते च लग्नः ॥
यथा तथा पुत्रकलत्रमित्र-
स्नेहानुबन्धैर्ग्रथितो गृहस्थः।
कदापि वा तान्परिमुच्य गेहा-
द्गन्तुं न शक्तो म्रियते मुधैव ॥

जैसे कोशक्रिमि (रेशम आदि का कीड़ा) अपनी रक्षा की इच्छा से अपने देह पर तन्तुओं को लपेट लपेट कर इतना बँध जाता है कि उसमें से निकलने को स्वयं असमर्थ होकर अन्ततः उसी कोश में ही जकड़ा हुआ मर जाता है, ऐसे ही पुत्र स्त्री मित्र आदि के स्नेह-पाशों से बँधा हुआ गृहस्थ

कभी भी उनको छोड़कर घरसे चले जाने को समर्थ नहीं होता और वृथा वहीं मर जाता है ।

आशापाशशतेन पाशितपदो नोत्थातुमेव क्षमः
कामक्रोधमदादिभिः प्रतिभटैः संरक्ष्यमाणोऽनिशम्।
संमोहावरणेन गोपनवतः संसारकारागृहा-
न्निर्गन्तुं त्रिविधैषणापरवशः कः शक्नुयाद्रागिषु ॥

जिसके पाँव सैकड़ों आशाओंके पाशों से बँधे हुए हैं उठने में भी समर्थ नहीं है, तथा काम, क्रोध, मद आदि सैनिकों से हर समय संरक्षित रहता है और तीन प्रकार की एषणाओं के वश में पड़ा हुआ कौन ऐसा रागवान पुरुष है जो इस संसाररूप कारागृह से जो अज्ञानरूप दीवार आदि से सुरक्षित तथा दृढ़तर बनाया गया है निकल जा सके ।

येषामाशा निराशा स्या दारापत्यधनादिषु ।
तेषां सिध्यति नान्येषां मोक्षाशाभिमुखी गतिः ॥

जिन पुरुषों की दारासन्तानधनादि-विषयक आशा नष्ट हो गई है, उन्हीं को ही मोक्ष की ओर ले जाने वाली गति मिली है औरों को नहीं ।

संसारमृत्योर्वलिनः प्रवेष्टुं
द्वाराणि तु त्रीणि महान्ति लोके ।
कान्ता च जिह्वा कनकं च तानि
रुणद्धि यस्तस्य भयं न मृत्योः ॥

इस लोक में बलवान् मृत्यु के घुसने के नारी, जिह्वा और

सुवर्ण—ये तीन बड़े बड़े द्वार हैं इन तीनों द्वारों को जो बन्द रखता है उसे मृत्यु से भय नहीं है।

मुक्तिश्रीनगरस्य दुर्जयतरं द्वारं यदस्त्यादिमं
तस्य द्वे अररे धनं च युवती ताभ्यां पिनद्धं दृढम्।
कामाख्यार्गलदारुणा बलवता द्वारं तदेतत्त्रयं
धीरो यस्तु भिनत्ति सोऽर्हति सुखं भोक्तुं विमुक्तिश्रियः॥

मुक्तिरूप श्रीनगर का जो अत्यन्त दुर्जेय प्रथम द्वार है, उस की धन और युवती—यह दो अर्गल हैं, इन दोनों अर्गलों से वह द्वार दृढ़तापूर्वक बन्द है और तीसरा अर्गल अत्यन्त बलवान् कामरूप काष्ठ से बना हुआ है, जो धीर पुरुष इन तीनों अर्गलों को तोड़ सकता है वही मुक्ति-श्रीनगर के सुख को भोग सकता है।

आरूढस्य विवेकाश्वं तीव्रवैराग्यखड्गिनः।
तितिक्षावर्मयुक्तस्य प्रतियोगी न दृश्यते॥

जो विवेक के घोड़े पर सवार है, तीव्र वैराग्य का खड्ग जिस के हाथ में है, तथा तितिक्षा का वर्म (ज़िरह बकतर) पहने हुए है, उस पुरुष का सामना करने वाला कोई दिखाई नहीं देता।

कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मोहश्च मत्सरः।
न जिताः षडिमे येन तस्य शान्तिर्न सिध्यति॥

काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मत्सर, जिसने इन छः को नहीं जीता उस पुरुष को शान्ति नहीं मिलती।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च दया भूतेष्ववक्रता ।
विषयेष्वतिवैतृष्ण्यं शौचं दम्भविवर्जनम् ॥
सत्यं निर्ममता स्थैर्य मभिमानविसर्जनम् ।
ईश्वरध्यानपरता ब्रह्मविद्भिः सह स्थितिः ॥
ज्ञानशास्त्रैकपरता समता सुखदुःखयोः ।
मानानासक्तिरेकान्त शीलता च मुमुक्षुता ॥
यस्यैतद्विद्यते सर्वं तस्य चित्तं प्रसीदति ।
न त्वेतद्धर्मशून्यस्य प्रकारान्तरकोटिभिः ॥

ब्रह्मचर्य्य, अहिंसा, भूतों पर दया, अकुटिलता, विषयों [illegible] अतिवैराग्य, शौच, दम्भाभाव, सत्य, निर्ममता, स्थिर[illegible] अनभिमान, ईश्वरोपासना में तत्परता, ब्रह्मवित् पुरुषों के स[illegible] वास, ज्ञानशास्त्र में तत्परता, समता (सुख दुःख में स[illegible] भावना), मान में अप्रीति, एकान्त रहने की प्रकृति और मो[illegible] की इच्छा, जो पुरुष इन समस्त साधनों से युक्त है, उसी[illegible] चित्त शुद्ध हो सकता है, और इन धर्मों से रहित पुरुष [illegible] मन अन्य करोड़ों उपायों से भी शुद्ध नहीं हो सकता।

प्रत्यग्ब्रह्मविचारपूर्वमुभयोरेकत्वबोधाद्विना
कैवल्यं पुरुषस्य सिध्यति परब्रह्मात्मतालक्षणम् ।
न स्नानैरपि कीर्तनैरपि जपैर्नो कृच्छ्रचान्द्रायणै-
र्नो वाप्यध्वरयज्ञदाननिगमैर्नो मन्त्रतन्त्रैरपि ॥

प्रत्यग्ब्रह्म-विचार तथा जीव ईश्वर के एकत्वज्ञान वि[illegible]
स्नान, कीर्त्तन, जप, कृच्छ्र चान्द्रायण आदि तप, अध्वर (वि[illegible]

हिंसा का याग), यज्ञ, दान, वेद, मन्त्र तथा तन्त्र से परब्रह्म-स्वरूप मोक्ष प्राप्त नहीं होता है।

जन्मानेकसहस्रेषु तपसाराधितेश्वरः।
तेन निःशेषनिर्धूत हृदयस्थितकल्मषः॥
शास्त्रविद्गुणदोषज्ञो भोग्यमात्रे विनिःस्पृहः।
नित्यानित्यपदार्थज्ञो मुक्तिकामो दृढव्रतः॥
निष्टप्तमग्निना पात्र मुद्भास्य त्वरया यथा।
जहाति गेहं तद्वच्च तीव्रमोक्षेच्छया द्विजः॥

जो शास्त्रवेत्ता, अनेक सहस्र जन्मों में तपस्यापूर्वक ईश्वर की आराधना से हृदयस्थित मलिनता को निःशेष नष्ट कर चुका है, और जो गुणदोष को जानने वाला, भोग्यमात्र से निःस्पृह, नित्य और अनित्य पदार्थों को जानने वाला, मुक्ति की कामना वाला तथा दृढ़व्रत पुरुष है। वह मोक्ष की तीव्र इच्छा से घर को ऐसे छोड़ देता है जैसे आग से अत्यन्त जले हुए पात्र सर्वथा छोड़ दिये जाते हैं।

नृजन्म जन्तोरतिदुर्लभं विदु-
स्ततोऽपि पुंस्त्वं च ततो विवेकः।
लब्ध्वा तदेतत्त्रितयं महात्मा
यतेत मुक्त्यै सहसा विरक्तः॥

प्राणी को मानुषजन्म की प्राप्ति अतिदुर्लभ है, उसे पाकर भी पुरुष होना कठिन है, पुरुष होकर विवेकवान् होना और भी दुर्लभ है। महात्मा पुरुष इन तीनों को पाकर विरक्त होकर शीघ्र ही मुक्ति का यत्न करे।

खादते मोदते नित्यं शुनकः सूकरः खरः।
तेषामेषां विशेषः को वृत्तिर्येषां तु तैः समा॥

कुत्ते, सुअर और गधे भी खाते हैं और नित्य आनन्द करते हैं, इनका और उन पुरुषों का भेद ही क्या है जिनकी प्रवृत्ति कुत्ते आदि के समान है।

यावन्नाश्रयते रोगो यावन्नाक्रमते जरा।
यावन्न धीर्विपर्येति यावन्मृत्युं न पश्यति॥
तावदेव नरः स्वस्थः सारग्रहणतत्परः।
विवेकी प्रयतेताशु भवबन्धविमुक्तये॥

जब तक रोग प्रवेश नहीं करता, बुढ़ापा आक्रमण नहीं करता, बुद्धि नहीं बिगड़ती और मृत्यु को नहीं देख पाता तब तक ही स्वस्थ, सारग्रहणतत्पर और विवेकी पुरुष संसार-बन्धन से छूटने के लिए शीघ्र प्रयत्न करे।

देवर्षिपितृमर्त्यर्णं बन्धमुक्तास्तु कोटिशः।
भवबन्धविमुक्तस्तु यः कश्चिद्ब्रह्मवित्तमः॥

देव, ऋषि, पितरों और मनुष्यों के ऋणरूप बन्धन से करोड़ों करोड़ों मनुष्य मुक्त हुए हैं, परन्तु संसारबन्धन से कोई ही ब्रह्मवित्तम पुरुष मुक्त हुआ है।

शिव एव गुरुः साक्षात् गुरुरेव शिवः स्वयम्।
उभयोरन्तरं किंचि न द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः॥

शिव ही साक्षात् गुरु है, गुरु ही स्वयं शिव है, मुमुक्षु पुरुषों को दोनों में कुछ भेद नहीं देखना चाहिए।

हुताशनानां शशिनामिनाना-
मप्यर्बुदं वापि न यन्निहन्तुम् ।
शक्नोति तद्ध्वान्तमनन्तमान्तरं
हन्यादात्मवेत्ता सकृदीक्षणेन ॥

भीतर के जिस अनन्त अन्धकार को अरबों अरबों अग्नि चन्द्र और सूर्य्य भी दूर करने में समर्थ नहीं हो सकते, उसे आत्मवेत्ता पुरुष अपनी दृष्टि से एकबार ही नष्ट कर देता है।

दिवान्धदृष्टेस्तु दिवान्धकारः प्रत्यक्षसिद्धोऽपि स किं यथार्थः।
तद्वद्भ्रमेणावगतः पदार्थो भ्रान्तस्य सत्यः सुमतेर्मृषैव ॥

उल्लू की दृष्टि में दिन में अन्धकार प्रत्यक्ष सिद्ध भी है तथापि वह अन्धकार क्या यथार्थ है? इसी प्रकार भ्रम से ज्ञात पदार्थ भ्रान्त पुरुष की दृष्टि में सत्य है, परन्तु अभ्रान्त की दृष्टि में झूठा ही है।

लोकान्तरे वात्र गुहान्तरे वा तीर्थान्तरे कर्मपरम्परान्तरे ।
शास्त्रान्तरे नास्त्यनुपश्यतामिह स्वयं परं ब्रह्म विचार्यमाणे ॥

ब्रह्म किसी लोक में, या किसी गुहा में, या तीर्थान्तर में, या किसी कर्म-परम्परा में अथवा शास्त्र में नहीं है, विचार करने से बुद्धिमान् पुरुषों की दृष्टि में अपने आप ही परब्रह्म है।

बन्धश्च मोक्षो मनसैव पुंसा मर्थोऽप्यनर्थोऽप्यमुनैव सिध्यति।
शुद्धेन मोक्षो मलिनेन बन्धो विवेकतोऽर्थोऽप्यविवेकतोऽन्यः॥

पुरुषों के बन्ध और मोक्ष मन करके ही हैं, अर्थ और अनर्थ भी मन से ही सिद्ध होते हैं। शुद्ध मन से मोक्ष और

अशुद्ध मन से बन्ध होता है, विवेक से अर्थ और अविवेक से अनर्थ होता है।

रजोदोषैर्युक्तं यदि भवति विक्षेपकगुणैः
प्रतीपैः कामाद्यैरनिशमभिभूतं व्यथयति।
कथंचित्सूक्ष्मार्थावगतिमदपि भ्राम्यति भृशं
मनो दीपो यद्वत्प्रबलमरुता ध्वस्तमहिमा॥

जब मन विक्षेपजनक रजोगुण के दोषों से युक्त होता है तब विरोधी काम आदि के वशीभूत हो कर दिन रात दुःख देता है। और किसी प्रकार सूक्ष्म अर्थ को जान कर भी वह मन अत्यन्त भ्रम में रहता है, जैसे दीपक प्रबल वायु से निस्तेज हो कर निरन्तर चलायमान रहता है।

ततो मुमुक्षुर्भवबन्धमुक्त्यै रजस्तमोभ्यां च तदीयकार्यैः।
वियोज्य चित्तं परिशुद्धसत्त्वं प्रियं प्रयत्नेन सदैव कुर्यात्॥

अतः मुमुक्षु पुरुष संसार-बन्धन से छूटने के लिये, रजोगुण, तमोगुण तथा उनके कार्य्यों से अपने चित्त को हटा कर, उसे निर्मल सत्त्वगुण वाला करके प्रयत्न से सदा आत्महित सम्पादन करे।

यमेषु निरतो यस्तु नियमेषु च यत्नतः।
विवेकिनस्तस्य चित्तं प्रसादमधिगच्छति॥

जो विवेकवान् पुरुष यत्नपूर्वक यम और नियमों में लगा हुआ है उसी का चित्त निर्मलता को प्राप्त होता है। (अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी का न करना), ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह (संग्रह न करना) यह पांच यम हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान यह पांच नियम हैं।)

परद्रव्य-परद्रोह परनिन्दा-परस्त्रियः।
नालम्बते मनो यस्य तस्य चित्तं प्रसीदति ॥

जिसका मन परद्रव्य, परद्रोह, परनिन्दा और परनारी को नहीं चाहता है, उसका मन शुद्ध हो जाता है।

अत्यन्तश्रद्धया भक्त्या गुरुमीश्वरमात्मनि।
यो भजत्यनिशं क्षान्त स्तस्य चित्तं प्रसीदति ॥

जो अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से गुरु और ईश्वर को मन में दिन रात चिन्तन करता है और क्षमावान है, उसका चित्त स्वच्छ हो जाता है।

हितपरिमितभोजी नित्यमेकान्तसेवी
सकृदुचितहितोक्तिः स्वल्पनिद्राविहारः।
अनुनियमनशीलो यो भजत्युक्तकाले
स लभत इह शीघ्रं साधु चित्तप्रसादम् ॥

जो पुरुष हित और परिमित भोजन करनेवाला, नित्य एकान्त में रहनेवाला, एक बार ही उचित हित वचन बोलने वाला, बहुत थोड़ा सोने और घूमनेवाला, और उक्त समय में प्राणों को नियमन करनेवाला है, शीघ्र ही उसका मन इस लोक में शुद्ध हो जाता है।

न ह्यर्कः कुरुते कर्म न कारयति जन्तुभिः।
स्वस्वभावानुरोधेन वर्तन्ते स्वस्वकर्मसु ॥
तथैव प्रत्यगात्मापि रविवन्निष्क्रियात्मना।
उदासीनतयैवास्ते देहादीनां प्रवृत्तिषु ॥

जैसे सूर्य्य न कर्म करता है न प्राणियों से कर्म करवाता है, सब प्राणी सूर्य्योदय होते ही अपने अपने स्वभावानुसार स्वस्वकर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं, ऐसे ही प्रत्यगात्मा भी सूर्य के समान निष्क्रिय है, मनुष्य की सब चेष्टाओं में उदासीन है।

जन्मास्तित्वविवृद्धयः परिणतिश्चापक्षतिर्नाशनं।
दृश्यस्यैव भवन्ति षड्विकृतयो नानाविधा व्याधयः॥
स्थूलत्वादि च नीलताद्यपि मितिर्वर्णाश्रमादिप्रथा।
दृश्यन्ते वपुषो न चात्मन इमे तद्विक्रियासाक्षिणः॥

जन्म, अस्तित्व, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय (घटना) और नाश, ये छः प्रकार के विकार दृश्य वस्तु में ही हैं, अनेक प्रकार के रोग, स्थूलता आदि, नीलता आदि, ज्ञान, वर्णाश्रम आदि और नाम—ये सब शरीर के ही धर्म हैं, शरीरगत विकारों के साक्षी आत्मा के नहीं।

अस्मिन्नात्मन्यनात्मत्व मनात्मन्यात्मतां पुनः।
विपरीततयाध्यस्य संसरन्ति विमोहतः॥

अज्ञान से इस आत्मा में अनात्मता को तथा अनात्मा (देहादि) में आत्मता को मान कर प्राणी संसार में फँसे हुए हैं।

भ्रान्त्या यत्र यदध्यास स्तत्कृतेन गुणेन वा।
दोषेणाप्यणुमात्रेण स न संबध्यते क्वचित्॥

भ्रान्ति से जिस वस्तु में जिस वस्तु की कल्पना होती है, उस कल्पित वस्तु के गुणों अथवा दोषों से वह अधिष्ठानभूत पदार्थ (आत्मा) किञ्चिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं रखता।

आत्माभासं ततो बुद्धि र्बुद्ध्याभासं ततो मनः।
अक्षाणि मन आभासा न्यक्षाभासमिदं वपुः।
अत एवात्मताबुद्धि र्देहाक्षादावनात्मनि ॥

बुद्धि आत्मा के तुल्य भासती है, मन बुद्धि के समान भासता है, इन्द्रिय मन के तुल्य प्रतीत होते हैं, और यह शरीर इन्द्रियों के समान प्रतीत होता है, अतएव देह इन्द्रिय मन आदि में आत्मबुद्धि मूढ़ पुरुषों को हो रही है।

निद्रा यथा पूरुषमप्रमत्तं समावृणोतीयमपि प्रतीचम्।
तथावृणोत्यावृतिशक्तिरन्त र्विक्षेपशक्तिं परिजृम्भयन्ती ॥

जैसे निद्रा अप्रमत्त पुरुष को घेर लेती है, इसी प्रकार यह आवरणशक्ति भी अन्दर ही अन्दर विक्षेपशक्ति की वृद्धि करती हुई आत्मा को आच्छादन कर लेती है।

शक्त्या महत्यावरणाभिधानया समावृते सत्यमलस्वरूपे।
पुमाननात्मन्यहमेष एवे त्यात्मत्वबुद्धिं विदधाति मोहात् ॥

जब आवरण-नामक महाशक्ति सत्यस्वरूप आत्मा का आवरण कर लेती है तब पुरुष देहादि में "मैं देह हूँ"—इस प्रकार मोह से आत्मत्वबुद्धि कर लेता है।

यथा प्रसुप्तिप्रतिभासदेहे स्वात्मत्वधीरेष तथा ह्यनात्मनः।
जन्माप्ययक्षुद्भयतृट्छ्रमादी नारोपयत्यात्मनि तस्य धर्मान् ॥

जैसे स्वप्न के देहमें आत्मबुद्धि हो जाती है, इसी प्रकार पुरुष, शरीर के जन्म मृत्यु भूख प्यास आदि धर्मों को अपने स्वरूप में आरोप कर लेता है।

अध्यासदोषात्समुपागतोऽयं संसारबन्धः प्रबलः प्रतीचः।
यद्योगतः क्लिश्यति गर्भवास जन्माप्ययक्लेशभयैरजस्रम्॥

प्रत्यगात्मा के अध्यास के दोष से यह संसाररूप प्रबल बन्धन प्राप्त हुआ है, जिस अध्यास के सम्बन्ध से गर्भवास, जन्म, मृत्यु, क्लेश और भयों से निरन्तर दुःखों को पा रहा है।

यस्येदं सकलं विभाति महसा तस्य स्वयंज्योतिषः
सूर्यस्येव किमस्ति भासकमिह प्रज्ञादि सर्वं जडम् ।
न ह्यर्कस्य विभासकं क्षितितले दृष्टं तथैवात्मनो
नान्यः कोऽप्यनुभासकोऽनुभविता नातः परः कश्चन ॥

सूर्य्य के समान स्वयम्प्रकाशरूप जिस आत्मा के तेज से यह सम्पूर्ण जगत् भासमान है, क्या उस आत्मा को यह बुद्धि आदि जड़ पदार्थ प्रकाशन कर सकते हैं ? धरातल पर सूर्य्य का प्रकाशक कोई पदार्थ देखने में नहीं आता, इसी प्रकार आत्मा का भासक या अनुभव करनेवाला कोई अन्य पदार्थ दिखाई नहीं देता ।

सर्वस्य दाहको वह्नि वंह्नेर्नान्योस्ति दाहकः ।
यथा तथात्मनो ज्ञातु ज्ञाता कोऽपि न दृश्यते ॥

जैसे अग्नि सब का दाहक है, उसका दाहक कोई नहीं है, ऐसे ही सब को जाननेवाले आत्मा का ज्ञाता भी कोई दिखाई नहीं देता ।

अनुस्यूतात्मनः सत्ता जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
अहमस्मीत्यतो नित्यो भवत्यात्मायमव्ययः ॥

जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति में आत्मा की सत्ता "मैं हूँ"

इस प्रकार अनुगत है, अतएव यह आत्मा नित्य है और विनाश से रहित है।

यः स्वप्नमद्राक्षमहं सुखं यो स्वाप्सं स एवास्म्यथ जागरूकः।
इत्येवमच्छिन्नतयानुभूयते सत्तात्मनो नास्ति हि संशयोऽत्र॥

जो मैं स्वप्न को देखता था और सुखपूर्वक सो रहा था वही मैं अब जाग रहा हूँ, इस प्रकार आत्मा की सत्ता अटूट प्रतीत हो रही है, इसमें कोई संशय नहीं।

यं न प्रकाशयति किंचिदिनोऽपि चन्द्रः
नो विद्युतः किमुत वह्निरयं मिताभः।
यं भान्तमेतमनुभाति जगत्समस्तं
सोऽयं स्वयं स्फुरति सर्वदशासु चात्मा॥

जिस आत्मा को सूर्य्य, चन्द्रमा और विद्युत् भी प्रकाशित नहीं कर सकते, यह परिमित प्रकाशवाला अग्नि तो क्या वस्तु है! प्रत्युत यह समस्त जगत् ही जिस आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित है, वह आत्मा सब दिशाओं में स्वयं प्रकाशित हो रहा है।

यथा कुवलयोल्लास श्चन्द्रस्यैव प्रसादतः।
तथानन्दोदयोऽप्येषां स्फुरणादेव वस्तुनः॥

जैसे कुमुदिनी का खिलना चाँद के अनुग्रह से ही होता है, इसी प्रकार आत्मा के स्फुरण से ही जीवों का आनन्दोदय भी होता है।

रज्जोः स्वरूपाधिगमे न सर्पधी रज्ज्वां विलीना तु यथा तथैव।
ब्रह्मावगत्या तु जगत्प्रतीति स्तत्रैव लीना तु सह भ्रमेण॥

जैसे रस्सी के ज्ञान के अनन्तर सर्पबुद्धि नहीं रहती और रस्सी में ही लीन हो जाती है, ऐसे ही ब्रह्मज्ञान से जगत् की प्रतीति भ्रम समेत उसी ब्रह्म में ही लीन हो जाती है।

अच्छिन्नश्छिन्नवद्भाति पामराणां घटादिना ।
ग्रामक्षेत्राद्यवधिभि र्भिन्नेव वसुधा यथा ॥

पामर पुरुषों को अपरिच्छिन्न आकाश, घट आदि के कारण परिच्छिन्न सा भासता है, जैसे ग्रामक्षेत्र आदि के कारण पृथिवी भिन्न भिन्न सी भासती है।

तथैव परमं ब्रह्म महतां च महत्तमम् ।
परिच्छिन्नमिवाभाति भ्रान्त्या कल्पितवस्तुना ॥

इसी प्रकार अन्तःकरण के कारण महान् पदार्थों से भी महत्तम परमब्रह्म भ्रान्ति से परिच्छिन्न सा प्रतीत होता है।

निद्राभूतशरीरधर्मसुखदुःखादिप्रपञ्चोऽपि वा
जीवेशादिभिदापि वा न च ऋतं कर्तुं क्वचिच्छक्यते।
मायाकल्पितदेशकालजगदीशादिभ्रमस्तादृशः
को भेदोऽस्त्यनयोर्द्वयोस्तु कतमः सत्योन्यतः को भवेत्॥

जैसे निद्रादोष से उत्पन्न शरीर, धर्म, सुख, दुःख आदि प्रपञ्च अथवा जीव ईश आदि भेद कभी सत्य सिद्ध नहीं किया जा सकता, वह सर्वथा असत्य ही है, इसी प्रकार माया से कल्पित देश, काल, जगत्, ईश आदि भ्रम भी असत्य है, निद्रा से कल्पित हो या माया से, इन दोनों में भेद ही क्या है ? तथा इन दोनों में सत्य भी कौन सा है ?

यज्जायते वस्तु तदेव वर्धते तदेव मृत्युं समुपैति काले।
जन्मैव ते नास्ति तथैव मृत्यु र्नास्त्येव नित्यस्य विभोरजस्य॥

जो वस्तु उत्पन्न होती है वही बढ़ती है, और काल पाकर मृत्यु को भी प्राप्त होती है और नित्य विभु अजरूप तुम्ह आत्मा का तो न जन्म ही है न मृत्यु ही।

श्रुत्युक्तमव्ययमनन्तमनादिमध्य-
मव्यक्तमक्षरमनाश्रयमप्रमेयम्।
आनन्दसद्घनमनामयमद्वितीयं
यद्ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम्॥

श्रुति में कहा गया अव्यय, अनन्त, अनादि, अमध्य, अव्यक्त, अक्षर, अनाश्रय, अप्रमेय, आनन्द, सद्घन, रोग से रहित, अद्वितीय, केवल और ज्ञानमात्र जो ब्रह्म है सो तू है।

पश्यतस्त्वहमेवेदं सर्वमित्यात्मनाखिलम्।
भयं स्याद्विदुषः कस्मा त्त्वस्मान्न भयमिष्यते॥

जो विद्वान् पुरुष इस सम्पूर्ण जगत् को आत्मभावेन "यह सब कुछ मैं ही हूँ"—इस प्रकार देखता है, उसे किसका भय है? अपने से भय किसी को नहीं होता है!

अखण्डामेवैतां घटितपरमानन्दलहरीं
परिध्वस्तद्वैतप्रमितिममलां वृत्तिमनिशम्।
अमुञ्चानः स्वात्मन्यनुपमसुखं ब्रह्मणि परे
रमस्व प्रारब्धं क्षपय सुखवृत्त्या त्वमनया॥

हे शिष्य! जिस ब्रह्माकारवृत्ति ने द्वैतबुद्धि का नाश

कर दिया है उस परम सुखदायक निर्मल वृत्ति का तू निरन्तर अवलम्बन करके स्वात्मभूत, उपमा से रहित और सुखात्मक परब्रह्म में रमण कर, तथा इसी सुखदायक वृत्ति से प्रारब्ध को समाप्त कर।

प्रचण्डातपमध्यस्थ दीपवन्नष्टदीधितिः ।
तत्तेजसाभिभूतं स लीनोपाधितया ततः ॥
बिम्बभूतपरब्रह्म मात्रं भवति केवलम् ।
यथापनीते त्वादर्शे प्रतिबिम्बमुखं स्वयम् ।
मुखमात्रं भवेत्तद्व देतच्चोपाधिसंक्षयात् ॥

जैसे प्रचण्ड धूप में स्थित दीप, सूर्य्य के तेज से निस्तेज होकर प्रकाशरहित सा हो जाता है, इसी प्रकार अन्तःकरण स्थित-चिदाभास उपाधि के लय हो जाने से केवल परब्रह्म मात्र रह जाता है। जैसे दर्पण हटा लेने से प्रतिबिम्बमुख अपने आप मुखमात्र रह जाता है ऐसे ही उपाधि के नाश होने पर चिदाभास चिन्मात्र शेष रह जाता है।

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।
इत्येवैषा वैदिकी वाग्ब्रवीति क्लेशक्षत्यां जन्ममृत्युप्रहाणिम्।

"देव (ब्रह्म) को जान कर सब पाश टूट जाते हैं क्लेशों के क्षीण हो जाने से जन्म मृत्यु का नाश होता है"— यह वैदिकी वाणी क्लेशक्षय से जन्म मृत्यु का नाश कह रही है।

परस्परविरुद्धत्वा त्तयोर्भिन्नस्वभावयोः ।
कर्तृत्वभावनापूर्वं कर्मज्ञानं विलक्षणम् ॥

देहात्मबुद्धेर्विच्छित्यै ज्ञानं कर्मत्विवृद्धये।
अज्ञानमूलकं कर्म ज्ञानं तूभयनाशकं ॥

परस्पर विरुद्ध तथा भिन्न भिन्न स्वभाववाले होने के कारण, कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा की एकत्र स्थिति नहीं हो सकती। कर्म कर्तृत्वभावना-पूर्वक होता है, ज्ञान कर्तृत्व-भावना का नाशक है। ज्ञान देहात्मबुद्धि का विच्छेदक है, कर्म देहात्मबुद्धि का वर्धक है। अज्ञान कर्म का कारण है और ज्ञान तो कर्म तथा देहात्मबुद्धि का नाशक है।

मयि सुखबोधपयोधौ महति ब्रह्माण्डबुद्बुदसहस्रम्।
मायामयेन मरुता भूत्वा भूत्वा पुनस्तिरोधत्ते ॥

महासुखबोध-समुद्ररूप मुझ आत्मा में सहस्रों ब्रह्माण्डरूप बुलबुले मायामय-वायु से बन बन कर फिर लीन हो जाते हैं।

रवेर्यथा कर्मणि साक्षिभावो वह्नेर्यथा वायसि दाहकत्वम्।
रज्जोर्यथारोपितवस्तुसङ्ग स्तथैव कूटस्थचिदात्मनो मे ॥

जैसे सूर्य्य कर्मों का साक्षी है या लोहे में अग्नि की दाहकता है, यद्वा रज्जु का आरोपित सर्प से सङ्ग है—इसी प्रकार मुझ कूटस्थ चिदात्मा में साक्षीपन है।

अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मा स्म्यहं ब्रह्मेति निश्चयः।
चिदहं चिदहं चेति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

"मैं ब्रह्म हूँ मैं ब्रह्म हूँ मैं ब्रह्म हूँ"—यह निश्चय और "मैं चित् हूँ मैं चित् हूँ"—यह निश्चय, जिस को है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है।

यस्य प्रपञ्चभानं न ब्रह्माकारमपीह न ।
अतीतातीतभावो यो विदेहो मुक्त एव सः ॥

जिस को प्रपञ्च का न भान है तथा जिसका मन न ब्रह्माकार ही है और जो त्रिकालातीत है, वही विदेहमुक्त है ।

सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापह्नव एव हि ।
नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मैव तद्विना ॥

सर्व वस्तु का निषेध करना ही अध्यात्म-शास्त्रों का सिद्धान्त है, न कोई अविद्या ही है न माया-इन सब को छोड़ कर एक शान्त ब्रह्म ही सत्य वस्तु है ।



"विवेक-चूडामणिः ।"

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता
तस्माद्वैदिकधर्ममार्गपरता विद्वत्त्वमस्मात्परम् ।
आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थिति-
र्मुक्तिर्नो शतजन्मकोटिसुकृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते ॥

प्राणियों को मनुष्यजन्म मिलना दुर्लभ है, मनुष्यजन्म से पुँस्त्व दुर्लभ है, पुँस्त्व (पुरुषत्व) की अपेक्षा विप्रता दुर्लभ है, ब्राह्मणत्व की अपेक्षा वैदिकधर्म-मार्ग में तत्परता दुष्प्राप्य है, वैदिकधर्म-मार्गावलम्बी हो कर भी विद्वान् होना और भी दुःसाध्य है, विद्वत्ता पाकर भी आत्मा और अनात्मा का विवेक, फिर उसी के अनुसार अपना अनुभव और ब्रह्माकाररूप से मनःस्थिति का होना और भी दुर्लभ है, इस प्रकार सैंकड़ों जन्मों के करोड़ों शुभकर्मों और पुण्यों बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती ।

इतः कोन्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति ।
दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ॥

दुर्लभ मानुषदेह को पाकर और मानुषदेह में भी पौरुष (पुरुषों से प्रार्थनीय मुक्ति के उपयोगी पुरुषार्थ) को पाकर

जो पुरुष स्वार्थ (मुक्ति) में प्रमाद करता है, उस से बढ़ कर और कौन मूर्ख होगा ?

संन्यस्य सर्वकर्माणि भवबन्धविमुक्तये ।
यत्यतां पण्डितैर्धीरै रात्माभ्यास उपस्थितैः ॥

संसार-बन्धन से मुक्ति पाने के लिये सर्व कर्मों का संन्यास करके पण्डित और धीर पुरुषों को आत्माभ्यास (अध्यात्म-शास्त्र के श्रवण मनन तथा निदिध्यासन) में उपस्थित हो कर यत्न करना चाहिए ।

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये ।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चित्कर्मकोटिभिः ॥

चित्त की शुद्धि के लिये कर्म अपेक्षित है, आत्मरूप वस्तु की प्राप्ति के लिये नहीं, मुक्ति विचार से होती है, करोड़ों कर्मों से कुछ भी नहीं होता ।

अज्ञानयोगात्परमात्मनस्तव ह्यनात्मबन्धस्तत एव संसृतिः ।
तयोर्विवेकोदितबोधवह्नि रज्ञानकार्यं प्रदहेत्समूलम् ॥

तुम्ह परमात्मा का अज्ञान के ,सम्बन्ध से अनात्मवस्तुओं (देहादि) में बन्ध ("मैं, मेरा" रूप मिथ्या अभिमान) है, और उसी बन्ध से संसार है, उन दोनों (आत्मा और अनात्मा) के विवेक से उत्पन्न हुआ ज्ञानरूप अग्नि, संसार को अज्ञान-सहित जला देता है ।

न योगेन न सांख्येन न कर्मणा नो न विद्यया ।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा ॥

न योग से, न सांख्य से, न कर्म से और न किसी विद्या

से ही मोक्ष की सिद्धि होती है, किन्तु ब्रह्मात्मैकत्व-ज्ञान से ही मोक्ष सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं ।

शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः ।
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गमीन भृङ्गा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम् ॥

जब हरिण, हाथी, पतङ्ग, मछली और भँवरा—ये पांचों अपने अपने एक एक शब्दआदि विषय से बन्धे हुए, पांचों (हरिण आदि) शब्दादिद्वारा ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, तब मनुष्य अकेला जो पांचों विषयों से बन्धा हुआ है, क्यों न मृत्यु को प्राप्त होगा ?

आपातवैराग्यवतो मुमुक्षून् भवाब्धिपारं प्रतियातुमुद्यतान् ।
आशाग्रहो मज्जयतेऽन्तराले निगृह्य कण्ठे विनिवर्त्य वेगात् ॥

जो मन्द वैराग्य वाले मुमुक्षु संसारसागर से पार उतरने को तय्यार होते हैं, उन्हें आशारूप ग्राह (विषयवासना रूप मगरमच्छ) बीच में ही मुक्तिमार्ग से बलपूर्वक हटा कर गला पकड़ के डुबो देता है ।

विषयाख्यग्रहो येन सुविरक्त्यसिना हतः ।
स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूहवर्जितः ॥

जिसने विषयरूप ग्राह को तीव्र वैराग्यरूप खड्ग से मार डाला, वह विघ्नों से रहित होकर संसारसागर के पार पहुँच गया ।

अनुक्षणं यत्परिहृत्य कृत्य मनाद्यविद्याकृतबन्धमोक्षणम् ।
देहः परार्थोऽयममुष्य पोषणे यः सज्जते स स्वमनेन हन्ति ॥

जो अनादि अविद्याकृत बन्धन से छुड़ाने वाले साधनों

को छोड़ कर पशु पक्षियों के खाने योग्य इस देह के पोषण में हर समय आसक्त रहता है वह अपना ही घात करता है।

शरीरपोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदृक्षति ।
ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदीं तर्तुं स गच्छति ॥

जो पुरुष शरीरपालन में ही आसक्त रह कर आत्मा के दर्शन की इच्छा करता है वह ग्राह को लकड़ी जान उससे नदी पार उतरना चाहता है।

स्थूलस्य सम्भवजरामरणानि धर्माः
स्थौल्यादयो बहुविधाः शिशुताद्यवस्थाः ।
वर्णाश्रमादिनियमा बहुधाऽऽमयाः स्युः
पूजावमानबहुमानमुखा विशेषाः ॥

स्थूलदेह के जन्म जरा मरण आदि बहुत से धर्म, मोटापन दुबलापन, बालकपन तथा यौवन आदि अनेक अवस्थाएँ, वर्ण आश्रम आदि के नाना नियम, अनेक प्रकार के रोग, तथा पूजा अपमान बहुमान आदि विलक्षणताएँ—ये सब स्थूल शरीर-सम्बन्धी दोष हैं।

इदं शरीरं शृणु सूक्ष्मसंज्ञितं लिङ्गं त्वपञ्चीकृतभूतसम्भवम्।
सवासनं कर्मफलानुभावकं स्वाज्ञानतोऽनादिरुपाधिरात्मनः॥

इस 'सूक्ष्म' संज्ञा वाले लिङ्गशरीर को सुनो, यह (सूक्ष्म शरीर) अपञ्चीकृत भूतों से उत्पन्न हुआ है, वासनाओं से युक्त है, कर्मफल का उपादान-कारण, अनादि और अपने अज्ञान से ही आत्मा का उपाधि है।

माया मायाकार्यं सर्वं महदादिदेहपर्यन्तम् ।
असदिदमनात्मतत्त्वं विद्धि त्वं मरुमरीचिकाकल्पम् ॥

माया और महत्तत्त्व से लेकर देहपर्य्यन्त माया का कार्य असत् है, इसे तू अनात्म-तत्त्व और मरुमरीचि के सदृश समझ ।

यो विजानाति सकलं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
बुद्धितद्वृत्तिसद्भाव मभावमहमित्ययम् ॥
येन विश्वमिदं व्याप्तं यन्न व्याप्नोति किञ्चन ।
आभारूपमिदं सर्वं यं भान्तमनुभात्ययम् ॥
नियमितमनसामुं त्वं स्वमात्मानमात्म-
न्ययमहमिति साक्षाद्विद्धि बुद्धिप्रसादात् ।
जनिमरणतरङ्गापारसंसारसिन्धुं
प्रतर भव कृतार्थो ब्रह्मरूपेण संस्थः ॥

जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति में बुद्धि तथा बुद्धिवृत्तियों के सद्भाव और अभाव को जानता है, "मैं यह हूँ" इस प्रकार जो स्फुरण हो रहा है, जिसने यह सब जगत् व्याप्त किया है और जिस को कोई वस्तु नहीं व्याप्त कर सकती, जिस प्रकाशस्वरूप आत्मा के प्रकाश से ही सब जगत् प्रकाशित हो रहा है। तू अपने उस स्वरूप को अपने में ही एकाग्र मन से अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा साक्षात् जान, ब्रह्मरूप से स्थित हो कर तू कृतार्थ हो और जन्ममरणरूप तरङ्गों से युक्त इस अपार संसारसिन्धु को पार कर जा ।

अत्रानात्मन्यहमितिमतिर्बन्ध एषोऽस्य पुंसः
प्राप्तोऽज्ञानाज्जननमरणक्लेशसम्पातहेतुः ।

येनैवायं वपुरिदमसत्सत्यमित्यात्मबुद्ध्या
पुष्यत्युक्षत्यवति विषयैस्तन्तुभिः कोशकृद्वत् ॥

अनात्मदेहादि में "यह मैं हूँ" ऐसी बुद्धि ही बन्ध है, यह बन्ध पुरुष को अज्ञान से प्राप्त हुआ है, तथा जन्ममरण-रूप क्लेशों का कारण है, जिस के कारण यह पुरुष इस असत्य शरीर को सत्यात्मबुद्धि से पोषण, सिञ्चन और विषयों से रक्षा करता है, जैसे कोशकार (कोश बनाने वाला कीड़ा) तन्तुओं से ।

नास्त्रैर्न शस्त्रैरनिलेन वह्निना छेत्तुं न शक्यो न च कर्मकोटिभिः ।
विवेकविज्ञानमहासिना विना धातुः प्रसादेन सितेन मञ्जुना ॥

विवेक-विज्ञानरूप महाखड्ग और परमात्मा के निर्मल अनुग्रह बिना यह बन्धन न अस्त्रों से, न शस्त्रों से, न वायु से, न अग्नि से और न करोड़ों कर्मों से ही काटा जा सकता है ।

आत्मानात्मविवेकः कर्तव्यो बन्धमुक्तये विदुषा ।
तेनैवानन्दी भवति स्वं विज्ञाय सच्चिदानन्दम् ॥

विद्वान् पुरुष को बन्ध से मुक्त होने के लिये आत्मानात्म-विवेक करना चाहिए, क्योंकि आत्मानात्म-विवेक से ही अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को जान कर सुखी होता है ।

देहात्मधीरेव नृणामसद्धियां जन्मादिदुःखप्रभवस्य बीजम् ।
यतस्ततस्त्वं जहि तां प्रयत्नात् त्यक्ते तु चित्ते न पुनर्भवाशा ॥

आत्मविमुख पुरुषों के जन्मादि दुःखों का कारण देहात्मबुद्धि ही है, अतः तू इस देहात्मबुद्धि को यत्न से नाश कर, क्योंकि देहात्माभिमान के छूट जाने पर संसार फिर नहीं हो सकता ।

स्वप्नेऽर्थशून्ये सृजति स्वशक्त्या भोक्त्रादिविश्वं मन एव सर्वम् ।
तथैव जाग्रत्यपि नो विशेष स्तत्सर्वमेतन्मनसो विजृम्भणम् ॥

पदार्थों से रहित स्वप्न में मन ही अपनी शक्ति से भोक्ता भोग्य आदि सब जगत् को रचता है, इसी प्रकार जाग्रत् के पदार्थ भी मन से ही रचे गये हैं, यह मन का ही फैलाव है।

सुषुप्तिकाले मनसि प्रलीने नैवास्ति किञ्चित्सकलप्रसिद्धेः ।
अतो मनःकल्पित एव पुंसः संसार एतस्य न वस्तुतोस्ति ॥

यह प्रसिद्ध है कि सुषुप्ति काल में मन के (अविद्या में) लीन हो जाने पर कुछ भी नहीं रहता, अतः संसार पुरुष के मन की ही कल्पना है, इस संसार की वास्तविक सत्ता नहीं है।

तस्मान्मनः कारणमस्य जन्तो र्बन्धस्य मोक्षस्य च वा विधाने ।
बन्धस्य हेतुर्मलिनं रजोगुणै र्मोक्षस्य शुद्धं विरजस्तमस्कम् ॥

इस लिये इस प्राणी के बन्ध या मोक्ष का कारण मन ही है, रजः और तमः दोनों गुणों से मलीन हुआ यह मन बन्धन का हेतु है, और रजः तथा तमोगुण से रहित सत्त्वगुण युक्त मन मोक्ष का कारण है।

मोक्षैकसत्त्या विषयेषु रागं
निर्मूल्य संन्यस्य च सर्वकर्म ।
सच्छ्रद्धया यः श्रवणादिनिष्ठो
रजः स्वभावं स धुनोति बुद्धेः ॥

मोक्ष की ही कामना से विषयों में प्रीति का सर्वथा त्याग कर के और सब कर्मों को छोड़ कर सात्त्विक श्रद्धा से श्र

पुरुष वेदान्त-श्रवण आदि में निष्ठा करता है वही बुद्धि के रजोगुणरूप स्वभाव को नष्ट कर सकता है।

स्वस्य द्रष्टुर्निर्गुणस्याक्रियस्य
प्रत्यग्बोधानन्दरूपस्य बुद्धेः ।
भ्रान्त्या प्राप्तो जीवभावो न सत्यो
मोहापाये नास्त्यवस्तुस्वभावात् ॥

द्रष्टा, निर्गुण, अक्रिय, प्रत्यक् (अन्तरात्मा) बोध और आनन्दरूप आत्मा को बुद्धि की भ्रान्ति से ही जीवभाव प्राप्त हुआ है, अज्ञान के नष्ट हो जाने पर जीवपन नहीं रहता, क्योंकि जीवत्व मिथ्या है।

जलं पङ्कवदत्यन्तं पङ्कापाये जलं स्फुटम् ।
यथा भाति तथात्मापि दोषाभावे स्फुटप्रभः ॥

जैसे मलिन जल कीचड़ के बैठ जाने पर अत्यन्त निर्मल प्रतीत होता है, ऐसे ही आत्मा भी अविद्यारूप दोष के दूर हो जाने पर स्पष्ट प्रकाशवाला भान होने लगता है।

योऽयमात्मा स्वयंज्योतिः पञ्चकोश-विलक्षणः ।
अवस्थात्रयसाक्षी स निर्विकारो निरञ्जनः ।
सदानन्दः स विज्ञेयः स्वात्मत्वेन विपश्चिता ॥

जो आत्मा स्वयंप्रकाश, पञ्चकोशों से भिन्न, तीनों अवस्थाओं (जाग्रदादि) का साक्षी, सद्, निर्विकार, निरञ्जन और नित्य आनन्दस्वरूप है, विद्वान् को उसे ही अपना आत्मा जानना चाहिए।

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्म मन्तर्बहिःशून्यमनन्यमात्मनः।
विज्ञाय सम्यङ्निजरूपमेतत् पुमान् विपाप्मा विरजो विमृत्युः॥

नित्य, विभु, सर्वगत, अत्यन्त सूक्ष्म, बाह्य और आभ्यन्तर भेद से रहित तथा अनन्यरूप आत्मा को अच्छे प्रकार जान कर पुरुष पाप, जरा और मृत्यु से रहित हो जाता है।

यदि सत्यं भवेद्विश्वं सुषुप्तावुपलभ्यताम्।
यन्नोपलभ्यते किञ्चि दतोऽसत्स्वप्नवन्मृषा॥

यदि संसार सत्य हो तो सुषुप्ति में भी प्रतीत हो, यतः सुषुप्ति में प्रतीत नहीं होता अतः स्वप्न के समान झूठा ही है।

नेदं नेदं कल्पितत्वान्न सत्यं रज्जुदृष्टव्यालवत्स्वप्नवच्च।
इत्थं दृश्यं साधुयुक्त्या व्यपोह्य ज्ञेयः पश्चादेकभावस्तयोर्यः॥

यह स्थूल तथा सूक्ष्म जगत् रज्जु में कल्पितसर्प तथा स्वप्न के समान कल्पित होने के कारण सत्य नहीं है, इस प्रकार युक्ति से इस संसार का खण्डन करके, स्थूल तथा सूक्ष्म संसार का जो अधिष्ठान है उसे जानना चाहिए।

स देवदत्तोयमितीह चैकता विरुद्धधर्मांशमपास्य कथ्यते।
यथा तथा तत्त्वमसीतिवाक्ये विरुद्धधर्मानुभयत्र हित्वा॥
संलक्ष्य चिन्मात्रतया सदात्मनोरखण्डभावः परिचीयते बुधैः।
एवं महावाक्यशतेन कथ्यते ब्रह्मात्मनोरैक्यमखण्डभावः॥

जैसे "यह वही देवदत्त है"—इस वाक्य में विरुद्ध धर्मों को छोड़ कर "देवदत्त" व्यक्तिमात्र लक्षित है, वैसे ही "तत्त्वमसि" इस वाक्य में तत् और त्वंपद के विरुद्ध धर्मों को छोड़ कर चिन्मात्रतारूप समानांश को लक्ष्य में रख कर विद्वानों

ने जीव और ईश्वर की अखण्डता को जाना है। इस प्रकार सैकड़ों महावाक्यों द्वारा जीव ब्रह्म की एकता या अखण्डता कही गई है।

निद्राकल्पितदेशकालविषयज्ञात्रादिसर्वं यथा
मिथ्या तद्वदिहापि जाग्रति जगत्स्वाज्ञानकार्यत्वतः ।
यस्मादेवमिदं शरीरकरणप्राणाहमाद्यप्यस-
त्तस्मात्त्वमसि प्रशान्तममलं ब्रह्माद्वयं यत्परम् ॥

जैसे निद्रा से कल्पित देश, काल, विषय, ज्ञाता आदि सारा संसार मिथ्या है, ऐसे ही इस जाग्रदवस्था में भी अज्ञान का कार्य्य होने के कारण यह जगत् मिथ्या ही है। इस रीति से यह शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अहङ्कारादि असत् हैं और प्रशान्त निर्मल अद्वय जो परब्रह्म है वही तू है।

ज्ञाते वस्तुन्यपि बलवती वासनाऽनादिरेषा
कर्त्ता भोक्ताप्यहमिति दृढा यास्य संसारहेतुः ।
प्रत्यग् दृष्ट्यात्मनि निवसता सापनेया प्रयत्ना-
न्मुक्तिं प्राहुस्तदिह मुनयो वासनातानवं यत् ॥

परमात्मरूप वस्तु को जान लेने पर भी "मैं कर्त्ता हूँ" "मैं भोक्ता हूँ" इत्यादि-अनादि बलवती और संसार का हेतु जो दृढ़ वासना है, उस वासना को ब्रह्माकारवृत्ति से प्रयत्न-पूर्वक दूर करना चाहिए, क्योंकि मुनि लोग वासना के नाश को ही मुक्ति कहते हैं।

अहंममेति यो भावो देहाक्षादावनात्मनि ।
अध्यासोऽयं निरस्तव्यो विदुषा स्वात्म-निष्ठया ॥

देह, इन्द्रिय आदि अनात्म वस्तुओं में जो "मैं" और "मेरी" इस प्रकार की बुद्धि है—इसी का नाम अध्यास है, विद्वान् पुरुष को स्वात्मनिष्ठा करके इस अध्यास का परित्याग करना चाहिए ।

लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापि च ।
देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ॥

मनुष्यों को लोकवासना, शास्त्रवासना और देहवासना के कारण यथार्थ ज्ञान नहीं होता ।

संसारकारागृहमोक्षमिच्छो रयोमयं पादनिबन्धशृङ्खलम् ।
वदन्ति तज्ज्ञाः पटुवासनात्रयं योऽस्माद्विमुक्तः समुपैति मुक्तिम् ॥

ये तीनों वासनाएँ संसाररूप बन्धन से मुक्त होनेवाले पुरुषों के लिये लोहे की बेड़ियाँ हैं—ऐसा तत्त्ववेत्ता लोग कहते हैं, जो इस वासनात्रय से मुक्त होता है वही मुक्ति को पाता है ।

स्वात्मन्येव सदा स्थित्वा मनो नश्यति योगिनः ।
वासनानां क्षयश्चातः स्वाध्यासापनयं कुरु ॥

जो योगी सदा ब्रह्मात्मनिष्ठा में ही स्थित रहता है उसका मन नष्ट हो जाता है, मन के नाश हो जाने से वासनाएँ भी नष्ट हो जाती हैं, अतः देहादि में आत्मभावना को दूर करो ।

प्रारब्धं पुष्यति वपु रिति निश्चित्य निश्चलः ।
धैर्यमालम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापनयं कुरु ॥

"शरीर का पोषण प्रारब्ध करता है"—ऐसा निश्चय करके

स्थिर होकर तथा धैर्य्य को आलम्बन करके यत्न से अपने भ्रम का नाश करो।

निद्राया लोकवार्त्तायाः शब्दादेरपि विस्मृतेः।
क्वचिन्नावसरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मनि॥

निद्रा, लोकसम्बन्धी अनेक कथाएँ, शब्दरूप आदि विषय और अपने स्वरूप की विस्मृति, इन सब को कुछ भी अवसर न देकर मन में अपने आत्मा का चिन्तन कर।

यत्सत्यभूतं निजरूपमाद्यं चिदद्वयानन्दमरूपमक्रियम्।
तदेत्य मिथ्यावपुरुत्सृजेत शैलूषवद्वेषमुपात्तमात्मनः॥

जो सत्यभूत, चित्, अद्वय, आनन्दरूप, निष्क्रिय अपना आदि स्वरूप है, उसको जान कर मिथ्या देहादि में आत्म-भावना को छोड़ो, जैसे नट अपने वेष को छोड़ कर वास्तविक रूप में आ जाता है।

यावद्वा यत्किञ्चिद्विष दोषस्फूर्तिरस्ति चेद्देहे।
कथमारोग्याय भवे त्तद्वदहन्तापि योगिनो मुक्त्यै॥

जब तक शरीर में कुछ भी विष के दोष का प्रभाव रहता है तब तक आरोग्य किसी प्रकार नहीं हो सकता, इसी प्रकार अहङ्कार भी योगी की मुक्ति का नाशक है।

ततोऽहमादेर्विनिवर्त्य वृत्तिं सन्त्यक्तरागः परमार्थलाभात्।
तूष्णीं समास्स्वात्मसुखानुभूत्या पूर्णात्मना ब्रह्मणि निर्विकल्पः॥

इसलिये "मैं, मेरी" इत्यादि अज्ञानवृत्ति का नाश करके, राग द्वेष को छोड़ कर, आत्मसाक्षात्काररूप पुरुषार्थ की

प्राप्ति से स्वात्मानन्दका अनुभव करता हुआ निर्विकल्प और पूर्णरूप से ब्रह्म में स्थिर हो।

देहात्मना संस्थित एव कामी विलक्षणः कामयिता कथं स्यात्।
अतोऽर्थसन्धानपरत्वमेव भेदप्रसक्त्या भवबन्धहेतुः॥

देह आदि में आत्मबुद्धिवाला पुरुष ही कामनाएँ करता है, जिस पुरुष की देह में आत्मभावना नहीं है वह कामी कैसे हो सकता है? इसलिये पदार्थों का चिन्तन करना ही भेद-बुद्धिजनन द्वारा जन्म मरण का हेतु है।

वासनावृद्धितः कार्यं कार्यवृद्ध्या च वासना।
वर्द्धते सर्वथा पुंसः संसारो न निवर्तते॥

वासनाओं की वृद्धि से कार्यों की वृद्धि और कार्यों की वृद्धि से वासनाओं की वृद्धि होती रहती है और दोनों की वृद्धि से पुरुष के संसार की निवृत्ति नहीं होती।

सद्वासनास्फूर्तिविजृम्भणे सत्यसौ विलीनाप्यहमादिवासना।
अतिप्रकृष्टाप्यरुणप्रभायां विलीयते साधु यथा तमिस्रा॥

ब्रह्माकारवृत्ति के बढ़ने से "अहम् मम" आदि वासनाएँ भी उसी में लीन हो जाती हैं, जैसे अरुण (बाल सूर्य) की प्रभा में गाढ़ अन्धेरा भी अच्छे प्रकार लीन हो जाता है।

दृश्यं प्रतीतं प्रविलापयन्सन् सन्मात्रमानन्दघनं विभावयन्।
समाहितः सन्बहिरन्तरं वा कालं नयेथाः सति कर्मबन्धे॥

मुमुक्षु बाह्य = ईश्वरकल्पित तथा आभ्यन्तर = जीवकल्पित प्रतीयमान दृश्य का लयचिन्तन करके सन्मात्र आनन्दघन

आत्मा का ध्यान करता हुआ बाहर और भीतर समाहित होकर प्रारब्ध की समाप्ति तक काल व्यतीत करे।

न प्रमादादनर्थोऽन्यो ज्ञानिनः स्वस्वरूपतः।
ततो मोहस्ततोऽहंधी स्ततो बन्धस्ततो व्यथा॥

जो अपने स्वरूप का प्रमाद है—ज्ञानी के लिये इससे बढ़ कर और कोई अनर्थ नहीं, क्योंकि स्वरूप में प्रमाद करने से मोह, मोह से अहंकार, अहंकार से जन्मादि संसार और संसार से दुःखपरम्परा प्राप्त होती है।

यथाऽपकृष्टं शैवालं क्षणमात्रं न तिष्ठति।
आवृणोति तथा माया प्राज्ञं वापि पराङ्मुखम्॥

जैसे हटाया गया शैवाल क्षणमात्र भी हटा हुआ नहीं रहता, शीघ्र ही जल को फिर ढाँप लेता है, इसी प्रकार बहिर्मुख विद्वान् को माया तुरन्त ही मूढ़ कर देती है।

सङ्कल्पं वर्जयेत्तस्मा त्सर्वानर्थस्य कारणम्।
जीवतो यस्य कैवल्यं विदेहे स च केवलः।
यत्किञ्चित्पश्यतो भेदं भयं ब्रूते यजुःश्रुतिः॥

अतः सब अनर्थों के कारण संकल्प को छोड़ देवे, जो पुरुष जीते जी कैवल्य को प्राप्त होता है वही मर कर विदेह कैवल्य को भी प्राप्त होता है, क्योंकि यजुःश्रुति कहती है कि जो इस आत्मा में किञ्चिन्मात्र भी भेदबुद्धि करता है वह भय को प्राप्त होता है।

यतिरसदनुसन्धिं बन्धहेतुं विहाय
स्वयमयमहमस्मीत्यात्मदृष्ट्यैव तिष्ठेत्।

सुखयति ननु निष्ठा ब्रह्मणि स्वानुभूत्या
हरति परमविद्याकार्यदुःखं प्रतीतम् ॥

यति को चाहिए कि बन्धन के हेतु अनात्मवस्तुओं के चिन्तन को छोड़ कर "स्वयं यह हूँ" इस प्रकार आत्मदृष्टि से ही स्थित रहे, क्योंकि ब्रह्मविषयक निष्ठा सुख देती है और अविद्या तथा अविद्या से होने वाले दुःखों को हरती है, यह बात स्वानुभव सिद्ध है।

विक्षेपशक्तिविजयो विषमो विधातुं
निःशेषमावरणशक्तिनिवृत्त्यभावे ।
दृग्दृश्ययोः स्फुटपयोजलवद्विभागे
नश्येत्तदावरणमात्मनि च स्वभावात् ।
निःसंशयेन भवति प्रतिबन्धशून्यो
विक्षेपणं नहि तदा यदि चेन्मृषार्थे ॥

जब तक आवरणशक्ति की निःशेष निवृत्ति न होगी तब तक विक्षेपशक्ति को जीतना कठिन है, आत्मा और अनात्मा दोनों का, दूध और जल के विभाग के समान अच्छे प्रकार विभाग कर लेने से आत्मा में विद्यमान आवरणशक्ति अपने आप नष्ट हो जाती है, तदनन्तर पुत्र दारा आदि मिथ्या पदार्थों से चित्त में विक्षेप नहीं होता, उस समय निःसंशय निर्विकल्प समाधि निर्विघ्न होने लगता है।

नित्याद्वयाखण्डचिदेकरूपो बुद्ध्यादिसाक्षी सदसद्विलक्षणः ।
अहंपदप्रत्ययलक्षितार्थः प्रत्यक् सदानन्दघनः परात्मा ॥

नित्य, अद्वय, अखण्ड, चित्, एकरूप, बुद्धि आदि का

∴ साक्षी, सत् और असत् से विलक्षण, अहम् शब्द का लक्ष्यार्थ अन्तरात्मा ही सदा आनन्दघन परब्रह्म है।

इत्थं विपश्चित्सदसद्विभज्य निश्चित्य तत्त्वं निजबोधदृष्ट्या।
ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डबोधं तेभ्यो विमुक्तः स्वयमेव शाम्यति॥

इस प्रकार विद्वान् पुरुष, सत् और असत् का विभाग करके निज-बोध दृष्टि से तत्त्व का निश्चय करके, अपने अखण्डज्ञानस्वरूप आत्मा को जान कर, उन (आवरण मिथ्या ज्ञान आदि) से सर्वथा मुक्त होकर शान्ति को प्राप्त होता है।

उपाधिभेदात्स्वयमेव भिद्यते चोपाध्यपोहे स्वयमेव केवलः।
तस्मादुपाधेर्विलयाय विद्वान् वसेत्सदाकल्पसमाधिनिष्ठया॥

उपाधि (बुद्ध्यादि) के भेद से आत्मा भेद को प्राप्त हो जाता है, उपाधि के हटा देने से स्वयं ही केवल रह जाता है, अतः विद्वान् उपाधि का लोप करके सदा निर्विकल्प-समाधि में स्थित रहे।

सति सक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया।
कीटको भ्रमरं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते॥

एकनिष्ठा से ब्रह्म में लगा हुआ पुरुष ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, जैसे कीड़ा भ्रमर का ध्यान करता हुआ भ्रमर ही हो जाता है।

आशां छिन्धि विषोपमेषु विषयेष्वेषैव मृत्योः कृति-
स्त्यक्त्वा जातिकुलाश्रमेष्वभिमतिं मुञ्चातिदूरात्क्रियाः।
देहादावसति त्यजात्मधिषणां प्रज्ञां कुरुष्वात्मनि
त्वं द्रष्टास्यमनोऽसि निर्द्वयपरं ब्रह्मासि यद्वस्तुतः॥

विषतुल्य विषयों की आशा मत कर, क्योंकि आशा ही मृत्यु की मूर्ति है। जाति, कुल तथा आश्रम के अभिमान को त्याग कर दूर से ही क्रियाओं को छोड़ दे, देह आदि अनात्मपदार्थों में आत्मबुद्धि का त्याग कर, और आत्मा में बुद्धि को लगा क्योंकि तू वस्तुतः द्रष्टा, अमन, अद्वय और परब्रह्म है।

लक्ष्ये ब्रह्मणि मानसं दृढतरं संस्थाप्य बाह्येन्द्रियम्
स्वस्थाने विनिवेश्य निश्चलतनुश्चोपेक्ष्य देहस्थितिम् ।
ब्रह्मात्मैक्यमुपेत्य तन्मयतया चाखण्डवृत्त्याऽनिशं
ब्रह्मानन्दरसं पिबात्मनि मुदा शून्यैः किमन्यैर्भृशम् ।

मन को दृढ़तापूर्वक लक्ष्य ब्रह्म में लगा कर बाह्य इन्द्रियों को अपने अपने स्थानों में स्थिर करके, निश्चल शरीर होकर देह की स्थिति की उपेक्षा करके, ब्रह्मात्मैक्य को प्राप्त होकर, ब्रह्माकार अखण्डवृत्ति से दिन रात अपने आत्मा में ब्रह्मानन्द-रस को प्रसन्नतापूर्वक पान कर, अन्यान्य अत्यन्त शून्य पदार्थों से क्या लाभ ?

अनात्मत्वं दृढीकुर्व न्नहमादिषु सन्त्यजन् ।
उदासीनतया तेषु तिष्ठेत्स्फुटघटादिवत् ॥

स्वयंज्योतिः स्वरूप साक्षी में आत्मत्व का दृढ़ निश्चय करके अहंकार देह-आदि में आत्मत्वबुद्धि को छोड़ कर उनमें उदासीन भाव से रहे, जैसे फूटे हुए घड़े में उदासीनता रहती है।

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः ।
स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यन्न किञ्चन ॥

आत्मा अपने आप ब्रह्मा है, विष्णु है, इन्द्र और शिव है तथा आप ही सर्वरूप हो रहा है, उससे भिन्न और कुछ भी नहीं है ।

आकाशवन्निर्मलनिर्विकल्पं निःसीमनिष्पन्दननिर्विकारम् ।
अन्तर्बहिःशून्यमनन्यमद्वयं स्वयं परं ब्रह्म किमस्ति वोद्धयम् ॥

आकाश के समान निर्मल, निर्विकल्प, सीमा से रहित, निष्क्रिय, निर्विकार, न भीतर न बाहर, अद्वैतरूप स्वयं ही परब्रह्म है, उससे भिन्न दूसरा ज्ञेय पदार्थ नहीं है ।

वक्तव्यं किमु विद्यतेऽत्र बहुधा ब्रह्मैव जीवः स्वयं
ब्रह्मैतज्जगदाततं नु सकलं ब्रह्माद्वितीयं श्रुतिः ।
ब्रह्मैवाहमितिप्रबुद्धमतयः संत्यक्तबाह्याः स्फुटं
ब्रह्मीभूय वसन्ति सन्ततचिदानन्दात्मनैतद्ध्रुवम् ।

इस विषय में बहुत क्या कहूँ, जीव ही स्वयं ब्रह्म है, तथा यह जितना विस्तृत जगत् है सब ब्रह्मरूप है, "ब्रह्म अद्वितीय है"—ऐसा श्रुति भी कहती है । विद्वान् लोग भी "मैं ब्रह्म ही हूँ"—इस प्रकार जानते हुए अनात्म-पदार्थों की वासनाओं को छोड़ कर निरन्तर चिदानन्दात्मरूप ब्रह्म में वास करते हैं ।

शवाकारं यावद्भजति मनुजस्तावदशुचिः
परेभ्यः स्यात्क्लेशो जननमरणव्याधिनिलयः ।
यदात्मानं शुद्धं कलयति शिवाकारमचलं
तदा तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि ॥

मुरदे रूप देहादि में जब तक मनुष्य आत्मबुद्धि रखता है

तब तक ही अपवित्र है, क्योंकि देहादि से ही जन्म मरण और रोगादि-जन्य क्लेश होते हैं और जब शिव-स्वरूप, अचल, शुद्ध आत्मा को जान लेता है तब उन देहादिजन्य दुःखों से मुक्त हो जाता है ऐसा श्रुति कहती है।

एकात्मके परे तत्त्वे भेदवार्ता कथं वसेत् ।
सुषुप्तौ सुखमात्रायां भेदः केनावलोकितः ॥

अद्वैतरूप परब्रह्म के विषय में भेदवार्त्ता कैसे सम्भव हो सकती है ? सुखमात्र स्वरूप सुषुप्ति में भेद किसने देखा है ?

न ह्यस्ति विश्वं परतत्त्वबोधात् सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे ।
कालत्रये नाप्यहिरीक्षितो गुणे न ह्यम्बुबिन्दुर्मृगतृष्णिकायाम् ॥

ब्रह्म के साक्षात्कार से संसार नहीं रहता, वस्तुतः सद्रूप निर्विकल्प ब्रह्म में संसार तीन काल में भी नहीं है, और किसी ने रस्सी में न सांप को देखा तथा न मृगतृष्णिका में जल की बूंद ही किसी ने कभी पाई !

समाहितान्तःकरणः स्वरूपे विलोकयात्मानमखण्डवैभवम् ।
विच्छिन्धि बन्धं भवगन्धगन्धितं यत्नेन पुंस्त्वं सफलीकुरुष्व ॥

अपने रूप में अन्तःकरण को समाधिस्थ कर के अखण्डैश्वर्य रूप आत्मा का अवलोकन कर तथा जन्मान्तर की वासनाओं से वासित अहङ्कारादि बन्ध को अच्छे प्रकार काट डाल, और यत्न से पुरुष जन्म को सफल कर।

न प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः ।
प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्तलक्षणः ॥

जो जीव ब्रह्म तथा जगत् ब्रह्म के भेद को नहीं मानता वह जीवन्मुक्त है।

साधुभिः पूज्यमानेऽस्मिन्पीड्यमानेपि दुर्जनैः।
समभावो भवेद्यस्य स जीवन्मुक्तलक्षणः॥

साधुओं से सत्कृत और दुर्जनों से पीडित हुआ जो समभाव से रहता है, वह जीवन्मुक्त पुरुष है।

प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः
सम्यग्ज्ञानहुताशनेन विलयः प्राक्सञ्चितागामिनाम्।
ब्रह्मात्मैक्यमवेक्ष्य तन्मयतया ये सर्वदा संस्थिता-
स्तेषां तत्त्रितयं न हि क्वचिदपि ब्रह्मैव ते निर्गुणम्॥

तत्त्ववेत्ता पुरुषों का प्रारब्ध बहुत बलवान् होता है, उसका भोग से ही नाश होता है, और सम्यग्ज्ञानाग्नि से सञ्चित तथा आगामी कर्मों का नाश हो जाता है, परन्तु जो पुरुष ब्रह्मात्मैक्य को जान कर ब्रह्माकार से स्थित रहते हैं उनके प्रारब्ध, सञ्चित और आगामी कर्म नष्ट हो जाते हैं तथा वे निर्गुण ब्रह्मरूप ही हो जाते हैं।

शरीरस्यापि प्रारब्ध कल्पना भ्रान्तिरेव हि।
अध्यस्तस्य कुतः सत्त्व मसत्यस्य कुतो जनिः।
अजातस्य कुतो नाशः प्रारब्धमसतः कुतः॥

विद्वान् के शरीर के विषय में प्रारब्ध की कल्पना करना भ्रान्ति ही है, क्योंकि शरीर मिथ्या है, मिथ्या की सत्ता कहां! असत् का जन्म कैसा? अजन्मा का नाश कैसा? और असत् का प्रारब्ध भी कैसा?

निर्गुणं निष्कलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥

गुणों से रहित, कला से रहित, सूक्ष्म, विकल्प से शून्य, निरञ्जन = अविद्या रूप मल से रहित, एक ही अद्वय ब्रह्म है, इस ब्रह्म में नानात्व कुछ भी नहीं ।

अनिरूप्यस्वरूपं य न्मनोवाचामगोचरम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥

जिस के स्वरूप का निरूपण नहीं हो सकता, जो मन तथा वाणी का अविषय है, वह एक ही अद्वितीय ब्रह्म है, इस ब्रह्म में नाना वस्तु नहीं है ।

वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च ।
अखण्डरूपस्थितिरेव मोक्षो ब्रह्माद्वितीये श्रुतयः प्रमाणम् ॥

वेदान्त-सिद्धान्त का यह कथन है कि जीव और सारा जगत् ब्रह्म ही है, अखण्डाकार स्थिति ही मोक्ष है, ब्रह्म के अद्वितीयत्व के विषयमें श्रुतियाँ प्रमाण हैं ।

बुद्धिर्विनष्टा गलिता प्रवृत्ति र्ब्रह्मात्मनोरेकतयाऽधिगत्या ।
इदं न जानेऽप्यनिदं न जाने किं वा कियद्वा सुखमस्त्यपारम् ॥

ब्रह्म और जीव की एकता के साक्षात्कार से अन्तःकरण की वृत्ति नष्ट हो गई, मन और इन्द्रियों की स्व-स्व-व्यापार में प्रवृत्ति दूर हो गई, और यह लोक तथा परलोक कुछ भी नहीं प्रतीत होता तथा समाधि काल में कैसा और कितना अपार सुख है यह नहीं जाना जा सकता ।

असङ्गोहमनङ्गोह मलिङ्गोहमभङ्गुरः ।
प्रशान्तोहमनन्तोह ममलोहं चिरन्तनः ॥

मैं असङ्ग हूँ, स्थूल और सूक्ष्म शरीर से रहित, अविनाशी, अत्यन्तशान्त, अनन्त, निर्मल तथा पुरातन हूँ ।

नारायणोहं नरकान्तकोहं पुरान्तकोहं पुरुषोहमीशः ।
अखण्डबोधोहमशेषसाक्षी निरीश्वरोहं निरहं च निर्ममः ॥

मैं नारायण हूँ, मैं नरकासुर को मारने वाला कृष्ण हूँ, मैं पुरासुर का नाशक शिव हूँ, मैं हिरण्यगर्भ हूँ, ईश हूँ, मैं अखण्ड बोध, सब का साक्षी, निरीश्वर हूँ, और अहन्ता तथा ममता से रहित हूँ ।

मय्यखण्डसुखाम्भोधौ बहुधा विश्ववीचयः ।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामारुतविभ्रमात् ॥

मुझ अखण्डानन्द-समुद्र में माया-वायु के चलने से अनेक प्रकार की जगत्‌रूप तरङ्गें उत्पन्न हो होकर विलीन होती हैं ।

आरोपितं नाश्रयदूषकं भवेत् कदापि मूढैरतिदोषदूषितैः ।
नार्द्रीकरोत्यूषरभूमिभागं मरीचिकावारिमहाप्रवाहः ॥

आरोपित वस्तु अधिष्ठान को दूषित नहीं कर सकती जैसे महादोषोंसे दूषित मूढ़ पुरुषोंसे आरोपित मृगतृष्णाके जल का महाप्रवाह ऊषरभूमि को कभी गीला नहीं कर सकता।

उपाधिरायाति स एव गच्छति
स एव कर्माणि करोति भुङ्क्ते ।

स एव जीर्यन् म्रियते सदाहं
कुलाद्रिवन्निश्चल एव संस्थितः ॥

देहरूप उपाधि ही आता है तथा जाता है, वही कर्म करता है, खाता पीता है और जीर्ण होकर मर जाता है, मैं तो कुलपर्वत (सुमेरु हिमालय आदि) के समान निश्चल स्थित हूँ ।

जले वापि स्थले वापि लुठत्वेष जडात्मकः ।
नाहं विलिप्ये तद्धर्मैर्घटधर्मैर्नभो यथा ॥

यह जड़ रूप (स्थूल देह) चाहे जल में चाहे स्थल में पड़ा ठोकरें खाय, मैं उस के धर्मों से लिप्त नहीं हूँ, जैसे आकाश घड़ों के धर्मों से सम्बन्ध नहीं रखता ।

अव्यक्तादिस्थूलपर्यन्तमेतद्विश्वं यत्राभासमात्रं प्रतीतम् ।
व्योमप्रख्यं सूक्ष्ममाद्यन्तहीनं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि ॥

जिस में माया से लेकर स्थूल-पर्यन्त यह जगत् आभास-मात्र प्रतीत हो रहा है, जो आकाश के समान सूक्ष्म, आदि और अन्त से रहित अद्वैत ब्रह्म है, वही मैं हूँ ।

शैलूषो वेषसद्भावाभावयोश्च यथा पुमान् ।
तथैव ब्रह्मविच्छ्रेष्ठः सदा ब्रह्मैव नापरः ॥

जैसे नट, रूप आदि के भेस बदलने और न बदलने पर भी पुरुषरूप ही है, वैसे ही श्रेष्ठ ब्रह्मवित् पुरुष सदा ब्रह्म ही है, ब्रह्म से भिन्न नहीं ।

यत्र क्वापि विशीर्णं सत्पर्णमिव तरोर्वपुः पततात् ।
ब्रह्मीभूतस्य यतेः प्रागेव तच्चिदग्निना दग्धम् ॥

वृक्ष से टूटे हुए पत्तों के समान यह देह जहां कहीं भी मर जाय, ब्रह्मभूत यति ने तो उसे पहले ही ज्ञान-अग्नि से भस्म कर डाला है।

देहस्य मोक्षो नो मोक्षो न दण्डस्य कमण्डलोः ।
अविद्याहृदयग्रन्थि मोक्षो मोक्षो यतस्ततः ॥

देह का छूटना मुक्ति नहीं, और दण्ड कमण्डलु का त्याग भी मोक्ष नहीं, अविद्यारूप हृदय की गांठ का टूटना ही मोक्ष है।

आवृतेः सदसत्त्वाभ्यां वक्तव्ये बन्धमोक्षणे ।
नावृतिर्ब्रह्मणः काचि दन्याभावादनावृतम् ।
यद्यस्त्यद्वैतहानिःस्याद् द्वैतं नो सहते श्रुतिः ॥

आवरण के होने तथा न होने से ही बन्ध मोक्ष कहे जा सकते हैं, ब्रह्म का आवरण हो नहीं सकता, क्योंकि ब्रह्म से भिन्न कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है अतः ब्रह्म अनावृत है, यदि ऐसा मानो कि ब्रह्म का आवरण करने वाली कोई दूसरी वस्तु है तो अद्वैत की हानि होगी, क्योंकि श्रुति द्वैत को स्वीकार नहीं करती।

न निरोधो न चोत्पत्ति र्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

परमार्थ तो यह है कि न मरण है, न जन्म है, न बद्ध है, न साधक है, न मुमुक्षु है और न कोई मुक्त ही है।

संसाराध्वनि तापभानुकिरणप्रोद्भूतदाहव्यथा-
खिन्नानां जलकाङ्क्षया मरुभुवि भ्रान्त्या परिभ्राम्यताम् ।

अत्यासन्नसुधाम्बुधिं सुखकरं ब्रह्माद्वयं दर्शय-
न्त्येषा शङ्करभारती विजयते निर्वाणसन्दायिनी ॥

संसाररूप मार्ग में तीन प्रकार के दुःखरूप सूर्य्य की किरणों से उत्पन्न हुए दाह से खिन्न और जल की इच्छा से भ्रम से मरुभूमि में भटकते हुए मनुष्यों को अति निकट-वर्त्ती सुखदायक अमृतसागर-रूप अद्वय ब्रह्म को दिखाती हुई और शान्ति (मुक्ति) के देने वाली भगवत्पूज्यपाद श्री शङ्कराचार्य्य जी महाराज की यह वाणी सब प्रकार उत्कृष्ट हो कर विराज रही है ।

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक यही तीन प्रकार के ताप हैं ।

समाप्तम्

ॐ

"स्वात्म-प्रकाशिका ।"

मरुभूमौ जलं सर्वं मरुभूमात्रमेव तत् ।
जगत्त्रयमिदं सर्वं चिन्मात्रं सुविचारतः ॥

जैसे मरुभूमि में भासमान जल मरुभूमिमात्र है, वैसे ही विचार करने से यह तीनों लोक चिन्मात्र हैं।

तरङ्गत्वं ध्रुवं सिन्धुर्न वाञ्छति यथा तथा ।
विषयानन्दवाञ्छा ते महदानन्दरूपतः ॥

जैसे समुद्र, तरङ्गों की इच्छा नहीं करता, वैसे ही महान् आनन्दरूप तुमको भी विषयानन्द की वाञ्छा नहीं होनी चाहिए।

घटावभासको भानुर्घटनाशे न नश्यति ।
देहावभासकः साक्षी देहनाशे न नश्यति ॥

घड़े के नष्ट होने पर घट का प्रकाशक सूर्य्य नष्ट नहीं होता, ऐसे ही देह का प्रकाशक साक्षी भी देह के नाश से नष्ट नहीं होता।

अस्थिमांसपुरीषान्त्र चर्मलोमसमन्वितः ।
अन्नादः स्थूलदेहः स्या दतोऽहं शुद्धचिद्घनः ॥

हड्डी, मांस, विष्ठा, अन्तड़ी, चमड़ा, बाल आदि से युक्त अन्न के खाने वाला स्थूल देह है, मैं तो शुद्ध चिद्घन हूँ।

क्षुत्पिपासान्ध्यबाधिर्यं कामक्रोधादयोऽखिलाः।
लिङ्गदेहाश्रिता ह्येते नैवालिङ्गस्य मे विभोः॥

भूक, प्यास, अन्धापन, बहरापन, काम, क्रोध आदि सब धर्म लिङ्गदेह के ही हैं, मुझ अलिङ्ग विभु आत्मा के नहीं हैं।

अनाद्यज्ञानमेवातः कारणं देहमुच्यते।
नाहं कारणदेहोऽपि स्वप्रकाशो निरञ्जनः॥

अनादि अज्ञान को ही कारणदेह कहते हैं, मैं कारणदेह भी नहीं हूँ, स्वप्रकाश निरञ्जन हूँ।

अधिष्ठानं न जीवःस्या त्प्रत्येकं निर्विकारतः।
अवस्तुत्वाच्चिदाभासो नास्ति तस्य च जीवता॥

चिद्रूप अंश निर्विकार होने से और चिदाभास मिथ्या होने से दोनों अधिष्ठान नहीं हैं, चिदाभास ही जीव है, तात्पर्य यह है कि आप अपना ही अधिष्ठान नहीं हो सकता अतः जीव अधिष्ठान नहीं है।

प्रत्येकं जीवता नास्ति बुद्धेरपि जडत्वतः।
जीव आभासकूटस्थ बुद्धित्रयमतो भवेत्॥

जड़ होने के कारण बुद्धि भी जीव नहीं है, अतः आभास, कूटस्थ और बुद्धि—यह तीनों मिल कर ही जीव है।

मायाभासो विशुद्धात्मा त्रयमेतन्महेश्वरः।
मायाभासोप्यवस्तुत्वा त्प्रत्येकं नेश्वरो भवेत्॥

माया, आभास और शुद्ध चित्—ये तीनों मिल कर महेश्वर कहाते हैं, माया और आभास भी एक एक करके मिथ्या होने के कारण ईश्वर नहीं हैं।

तस्मादेतत् त्रयं मिथ्या तदर्थो नेश्वरो भवेत् ।
इति जीवेश्वरौ भातः स्वाज्ञानान्न हि वस्तुतः ॥

अतः ये तीनों मिथ्या हैं, ईश्वर उनका कारण नहीं हो सकता, इस प्रकार अपने अज्ञान से जीव और ईश्वर प्रतीत होते हैं, वस्तुतः नहीं हैं ।

मायातत्कार्यविलये नेश्वरत्वं च जीवता ।
ततः शुद्धचिदेवाहं चिद्व्योमनिरुपाधितः ॥

माया और उस के कार्य्य के लय होने पर ईश्वरता और जीवता नहीं रहती, मैं शुद्ध चित्स्वरूप हूँ, चिदाकाश में मायोपाधि से ही जीवत्व और ईश्वरत्व हैं ।

पूर्णमद्वयमखण्डचेतनं विश्वभेदकलनादिवर्जितम् ।
अद्वितीयपरसंविदंशकं तत्सदाहमिति मौनमाश्रये ॥

पूर्ण, अद्वय, अखण्ड, चेतन, समस्त भेदादि व्यवहार से रहित, अद्वितीय, ज्ञानस्वरूप मैं नित्य हूँ, ऐसा जान कर मौन रहता हूँ ।

जन्ममृत्युसुखदुःखवर्जितं जातिनीतिकुलगोत्रदूरगम् ।
चिद्विवर्त्तजगतोऽस्य कारणं तत्सदाहमिति मौनमाश्रये ॥

जन्म मृत्यु, सुख, दुःख, जाति, नीति, कुल, गोत्र आदि से रहित हूँ, चिद्विवर्त्त-रूप इस जगत् का कारण हूँ, ऐसा जान कर मौन रहता हूँ ।

यथा दृष्टिरोधार्त्तः सूर्यो नास्तीति मन्यते ।
तथाज्ञानावृतो देही ब्रह्म नास्तीति मन्यते ॥

जैसे दृष्टिनिरोध से दुःखी पुरुष, सूर्य्य को "नहीं है"–ऐसा मानता है, ऐसे ही अज्ञानी, "ब्रह्म नहीं है" ऐसा मानता है ।

स्वल्पापि दीपकणिका वहुलं नाशयेत्तमः ।
स्वल्पोऽपि बोधो महती मविद्यां शमयेत्तथा ।

थोड़ी सी भी दीपक की प्रभा बहुत से अन्धकार को नाश करती है, इसी प्रकार थोड़ा सा भी बोध बड़ी भारी अविद्या को नाश करता है ।

यथा शीतं जलं वह्नि सम्बन्धादुष्णवद्भवेत् ।
बुद्धितादात्म्यसम्बन्धा त्कर्तृत्वं वस्तुतो न हि ॥

जैसे ठण्डा जल, अग्नि के सम्बन्ध से गरम हो जाता है ऐसे ही बुद्धि के तादात्म्य-सम्बन्ध से आत्मा में कर्तृत्व भासता है, वस्तुतः वह कर्तृत्व से रहित है ।

समाप्तम् ।

"प्रौढानुभूतिः ।"

द्वैतं मय्यखिलं समुत्थितमिदं मिथ्या मनःकल्पितं
तोयं तोयविवर्जिते मरुतले भ्रान्त्यैव सिद्धं न हि ।
यद्येवं खलु दृश्यमेतदखिलं नाहं न वा तन्मम
प्रौढानन्दचिदेकसन्मयवपुःशुद्धोऽस्म्यखण्डोऽस्म्यहम् ॥

मन से कल्पित यह सम्पूर्ण द्वैत झूठा ही प्रतीत हो रहा है, यथा जलशून्य मरुभूमि में भ्रान्ति से ही जल प्रतीत हो रहा है, परमार्थतः जल नहीं है, यदि यही दशा सम्पूर्ण दृश्य की निश्चयपूर्वक है तो मैं न दृश्य हूँ, न वह मेरा है। प्रौढ़ (अत्यन्त उत्कृष्ट) आनन्द, चित्, एकरस, सत्यरूप-शरीर वाला शुद्ध और अखण्ड मैं हूँ।

नाहं खादिरपि स्फुटं मरुतलभ्राजत्पयः स्यामत-
स्तेभ्यो नित्यविलक्षणोऽखिलदृशिः सौरप्रकाशो यथा ।
दृश्यैः सङ्गविवर्जितो गगनवत्सम्पूर्णरूपोऽस्म्यहं
वस्तुस्थित्यनुरोधतस्तदिदं वीच्यादि सिन्धुर्यथा ॥

मैं आकाश आदि भी नहीं हूँ, क्योंकि वे मरुस्थल में प्रकाशमान जल के समान हैं, मैं उनसे सदा विलक्षण हूँ। सूर्य के प्रकाश के समान सब का प्रकाशक हूँ, दृश्यों के सङ्ग से रहित

हूँ, आकाश के सदृश परिपूर्ण हूँ, वस्तुस्थिति के अनुरोध से मैं और यह जगत्, सिन्धु और तरङ्ग के समान हैं।

मत्तोऽन्यन्न हि किञ्चिदस्ति यदि चिद्भास्यं ततस्तन्मृषा
गुञ्जावह्निवदेव सर्वकलनाधिष्ठानभूतोऽस्म्यहम् ।
सर्वस्यापि दृगस्म्यहं समरसः शान्तोऽस्म्यपापोऽस्म्यहं
पूर्णोऽस्मि द्वयवर्जितोऽस्मि विपुलाकाशोऽस्मि नित्योऽस्म्यहम् ॥

मेरे से अन्य और कुछ नहीं है, यदि है तो वह चिद्भास्य होने से चौंटली (चिरमी) के समूह में कल्पित अग्नि के समान मिथ्या है, मैं सब कल्पनाओं का अधिष्ठान तथा द्रष्टा हूँ और मैं समरस, शान्त, पाप से रहित, द्वैत से शून्य, महाकाश के तुल्य नित्य हूँ।

स्वाप्नद्वैतवदेव जाग्रतमपि द्वैतं मनोमात्रकं
मिथ्येत्येव विहाय सच्चिदमलस्वान्तैकरूपोऽस्म्यहम् ।
यद्वा वेद्यमशेषमेतदनिशं मद्रूपमेवेत्यपि
ज्ञात्वा त्यक्तमरुन्महोदधिरिव प्रौढो गभीरोऽस्म्यहम् ॥

स्वप्न के द्वैत के समान जाग्रत् का द्वैत भी मनोमात्र मिथ्या ही है, अतः इसे छोड़ कर सत् चित् निर्मल अन्तःस्वरूप मैं हूँ, इस प्रकार जान कर वायु से रहित महासागर के समान मैं अत्यन्त गम्भीर हूँ।

वस्तुस्थित्यनुरोधतस्त्वहमहो कश्चित्पदार्थो न चा-
प्येवं कोऽपि विभामि सन्ततदृशिर्वाङ्मानसागोचरः ।
निष्पापोऽस्म्यभयोऽस्म्यहं विगतदुःशङ्काकलङ्कोऽस्म्यहं
संशान्तानुपमानशीतलमहः प्रौढप्रकाशोऽस्म्यहम् ॥

वस्तुतः तो मैं ही मैं हूँ, अन्य कोई पदार्थ नहीं है, इस प्रकार मैं अलौकिकस्वरूप सदा ज्ञानरूप से भासमान, वाणी और मन का अविषय, निष्पाप, अभय हूँ, दुष्ट शङ्कारूप कलङ्क से रहित, अच्छे प्रकार शान्त, उपमारहित, ठण्डा तेज और प्रौढप्रकाश स्वरूप हूँ।

सत्ताचित्सुखरूपमस्ति सततं नाहं च न त्वं मृषा
नेदं वापि जगत्सुदृष्टमखिलं नास्तीति जानीहि भोः।
यत्प्रोक्तं करुणावशात्त्वयि मया तत्सत्यमेतत्स्फुटं
श्रद्धत्स्वानघ शुद्धबुद्धिरसि चेन्मात्रास्तु ते संशयः॥

तू सर्वदा एक, सत् चित् आनन्दस्वरूप है, न मैं हूँ न तू है, न यह दृश्य है न जगत् ही है, यह सब मिथ्या है, तुम ऐसा निश्चित जानो। मैं ने करुणा करके तुम्हें जो कुछ कहा है वह सब स्पष्ट तथा सत्य है। हे निष्पाप! श्रद्धा करो, यदि तुम शुद्धान्तःकरण हो तो इस विषय में तुमको संशय नहीं करना चाहिये।

समाप्तम्

"निर्वाणमञ्जरी ।"

अहं नामरो नैव मर्त्यो न दैत्यो न गन्धर्वयक्षःपिशाचप्रभेदः।
पुमान्नैव न स्त्री तथा नैव षण्ढः प्रकृष्टप्रकाशस्वरूपः शिवोहम्॥

मैं न देव हूँ न मानुष हूँ, न दैत्य हूँ न गन्धर्व हूँ, न यक्ष, न पिशाच आदि हूँ। न पुरुष, न स्त्री, न नपुँसक हूँ, मैं अत्यन्त प्रकाशमय शिव हूँ।

अहं नैव बालो युवा नैव वृद्धो न वर्णी न च ब्रह्मचारी गृहस्थः।
वनस्थोपि नाहं न संन्यस्तधर्मा जगज्जन्मनाशैकहेतुः शिवोहम्॥

न मैं बाल हूँ, न युवा हूँ, न बूढ़ा हूँ, न वर्णधारी (ब्राह्मणादि) हूँ, न ब्रह्मचारी, न गृहस्थ, न वानप्रस्थ और न संन्यासी हूँ, जगत् की उत्पत्ति और नाश का एक कारण शिव हूँ।

अहं नैव मन्ता न गन्ता न वक्ता न कर्त्ता न भोक्ता न मुक्ताश्रमस्थः
यथाहं मनोवृत्तिभेदस्वरूप स्तथा सर्ववृत्तिप्रदीपः शिवोहम्॥

न मैं मनन करने वाला हूँ, न गमन करने वाला हूँ, न वक्ता (बोलने वाला) हूँ, न कर्त्ता हूँ, न भोक्ता हूँ, न मुक्ताश्रम में स्थित हूँ। जैसे मैं मनोवृत्ति-विशेष (ब्रह्माकार वृत्ति) हूँ- वैसे ही सब वृत्तियों का प्रकाशक शिव हूँ।

यदन्तर्बहिर्व्यापकं नित्यशुद्धं यदेकं सदा सच्चिदानन्दकन्दम् ।
यतःस्थूलसूक्ष्मप्रपञ्चस्य भानं यतस्तत्प्रसूतिस्तदेवाहमस्मि ॥

जो अन्दर और बाहर व्यापक है, नित्य शुद्ध है, जो एक सच्चिदानन्दकन्द है, जिस से स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च का भान हो रहा है तथा जिस से इस प्रपञ्च की उत्पत्ति होती है, वही मैं हूँ ।

यतःकालमृत्युर्बिभेति प्रकामं यतश्चित्तबुद्धीन्द्रियाणां विलासः ।
हरिब्रह्मरुद्रेन्द्रचन्द्रादि नाम प्रकाशो यतः स्यात्तदेवाहमस्मि ॥

जिस से कालमृत्यु अत्यन्त डरता है, जिस से चित्त, बुद्धि और इन्द्रियों की उत्पत्ति तथा हरि ब्रह्मा रुद्र इन्द्र चन्द्र आदिकों का प्रकाश होता है वही मैं हूँ ।

यदाकाशवत्सर्वगं शान्तरूपं परंज्योतिराकारशून्यं वरेण्यम् ।
यदाद्यन्तशून्यं परं शङ्कराख्यं यदन्तर्विभाव्यं तदेवाहमस्मि ॥

जो आकाशवत् सर्वव्यापक है, शान्तरूप है, पर ज्योतिः है, निराकार है, ध्यान करने योग्य है, आदि अन्त से रहित है, पर है, शङ्कर जिस का नाम है और भीतर चिन्तन करने योग्य है, वही मैं हूँ ।

समाप्तम्

चिदानंद सुखधाम शिव विगत मोह मद काम ॥

"आत्मचिन्तनम् ।"

अहमेव परंब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
इति स्यान्निश्चयान्मुक्तो बद्ध एवान्यथा भवेत् ॥

वासुदेव-संज्ञक अविनाशी परब्रह्म मैं ही हूँ, इस निश्चय से पुरुष मुक्त होता है, अन्यथा बद्ध ही रहता है।

अहमेव परं ब्रह्म न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ।
इत्येवं समुपासीत ब्राह्मणो ब्रह्मणि स्थितः ॥

मैं ही पर ब्रह्म हूँ, पर ब्रह्म से पृथक् नहीं हूँ, इस प्रकार ब्रह्म में स्थित होकर ब्राह्मण उपासना करे।

अहमेव परं ब्रह्म निश्चितं चित्त चिन्त्यताम् ।
चिद्रूपत्वादसङ्गत्वा दबाध्यत्वात्प्रयत्नतः ॥

हे चित्त ! चिद्रूप, असङ्ग और अबाध्य होने से "मैं ही परब्रह्म हूँ"—इस प्रकार यत्न से अवश्य चिन्तन कर।

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं चैतन्यं च निरन्तरम् ।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कथं वर्णाश्रमी भवेत् ॥

मैं सर्व उपाधियों से रहित एकरस चैतन्यरूप ब्रह्म हूँ, ऐसा जान कर मैं किस प्रकार वर्णाश्रमी हो सकता हूँ ?

अहं ब्रह्मास्मि यो वेद स सर्वं भवति त्विदम् ।
नाभूत्या ईशते देवा स्तस्यात्मैषो भवेद्धि सः ॥

जो पुरुष "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसे जानता है, वह सर्वरूप हो जाता है, देवता लोग उसके अकल्याण में समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि वह देवताओं का भी आत्मा है ।

आत्मानं सततं ब्रह्म संभाव्य विहरन्ति ये ।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चि दुष्कृतोत्था न चापदः ॥

आत्मा को निरन्तर ब्रह्म समझ कर जो विहार करते हैं, उनको न कोई पाप होता है, न पाप से उत्पन्न होने वाली विपत्तियाँ ही होती हैं ।

क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम् ।
स महापातकं हन्या त्तमः सूर्योदयो यथा ॥

जो पुरुष "मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार क्षण भर भी आत्म-चिन्तन करता है, जैसे सूर्योदय अन्धकार को नष्ट कर देता है वैसे ही वह महापाप को नष्ट कर देता है ।

ध्यानयोगेनैकमासाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
षण्मासाभ्यासयोगेन सर्वं पापं व्यपोहति ॥

पुरुष, एक मास के ध्यानयोग से ब्रह्महत्या को नष्ट कर देता है और छः मास के अभ्यासयोग से सर्वपापों को नष्ट कर देता है ।

संवत्सरकृताभ्यासा त्सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात् ।
यावज्जीवं सदाभ्यासा ज्जीवन्मुक्तो न संशयः ॥

एक वर्ष के योगाभ्यास से अष्ट-सिद्धियों को प्राप्त होता है, यावत् जीवन सदा अभ्यास करने से जीवन्मुक्त होता है, इस में संशय नहीं ।

अकर्त्ताहमभोक्ताह मसङ्गः परमेश्वरः ।
सदा मत्सन्निधानेन चेष्टते सर्वमिन्द्रियम् ॥

मैं अकर्त्ता हूँ, अभोक्ता हूँ, असङ्ग हूँ, परमेश्वर हूँ, मेरी सन्निधि से सब इन्द्रियां सदा चेष्टा करती हैं ।

सर्वज्ञोहमनन्तोहं सर्वगः सर्वशक्तिमान् ।
आनन्दसत्यबोधोह मिति ब्रह्मानुचिन्तनम् ॥

मैं सर्वज्ञ हूँ, मैं अनन्त हूँ, मैं सर्वव्यापक हूँ, मैं सर्वशक्तिमान् हूँ, मैं आनन्द हूँ, मैं सत्य बोध हूँ–यही ब्रह्म-चिन्तन है ।

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥

मुझ से ही सारा जगत् उत्पन्न हुआ है, मुझ में सब स्थित है, मुझ में ही लय को प्राप्त होता है, वह अद्वय ब्रह्म मैं हूँ ।

समाप्तम्

"सिद्धान्त-बिन्दुः ।"

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायुर्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः।
अनैकान्तिकत्वात्सुषुप्तैकसिद्ध स्तदेकोवशिष्टः शिवः केवलोहम्॥

न पृथिवी हूँ, न जल, न तेज, न वायु, न आकाश, न इन्द्रिय और न इन का समूह हूँ, अव्यभिचारी होने से, सुषुप्ति में नित्यसिद्ध, एक, बचा हुआ शिव केवल मैं हूँ।

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणाध्यानयोगादयोपि।
अनात्माश्रयाहंममाध्यासहाना-त्तदेकोवशिष्टः शिवः केवलोहम्॥

न मेरे वर्ण हैं, न वर्ण और आश्रमों के आचार और धर्म हैं, न मेरे धारणा ध्यान योग आदि ही हैं। अनात्म-विषयक "अहं-मम-अध्यास" के नष्ट हो जाने से वह एक, बचा हुआ शिव केवल मैं हूँ।

न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वा-त्तदेकोवशिष्टः शिवः केवलोहम्॥

सुषुप्ति में न माता है, न पिता, न देव, न लोक, न वेद, न यज्ञ और न तीर्थ हैं, शून्य से विलक्षण, एक, बचा हुआ शिव केवल मैं हूँ।

न सांख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा ।
विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वा-त्तदेकोवशिष्टः शिवः केवलोहम्

मेरे में न सांख्य, न शैव, न पाञ्चरात्र, न जैन और न मीमांसादिकों का मत है। विशेष अनुभव तथा शुद्ध रूप होने से, वह एक बचा हुआ शिव केवल मैं हूँ।

न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्न बाह्यं
न मध्यं न तिर्यङ्न पूर्वा परा दिक् ।
वियद्व्यापकत्वादखण्डैकरूप-
स्तदेकोवशिष्टः शिवः केवलोहम् ॥

मैं न ऊपर न नीचे, न अन्दर न बाहर, न बीच, न तिरछा तथा न पूर्व न पश्चिम दिशा में हूँ, आकाश में व्यापक होने के कारण अखण्ड एकरस बचा हुआ शिव केवल मैं हूँ।

न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं
न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम् ।
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वा-
त्तदेकोवशिष्टः शिवः केवलोहम् ॥

मैं न शुक्ल, न कृष्ण, न रक्त, न पीत, न कुबड़ा, न मोटा, न छोटा और न लम्बा हूँ, अरूप तथा ज्योतिः स्वरूप होने से वह एक, बचा हुआ शिव केवल मैं हूँ।

न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा
न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः ।
स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णु-
स्तदेकोवशिष्टः शिवः केवलोहम् ॥

जां न शास्ता है न शास्त्र है, न शिष्य है, न शिक्षा है, न तू है न मैं हूँ और न यह प्रपञ्च है । वह ज्ञानस्वरूप तथा विकल्प से रहित एक, बचा हुआ शिव केवल मैं हूँ ।

न जाग्रन्न मे स्वप्नकोवा सुषुप्ति-र्न विश्वोन वा तैजसः प्राज्ञकोवा ।
अविद्यात्मकत्वात्त्रयाणां तुरीय-स्तदेकोवशिष्टः शिवः केवलोहम्

न मुझे जाग्रत् है न स्वप्न तथा न सुषुप्ति है । न मैं विश्व हूँ, न तैजस, न प्राज्ञ, क्योंकि यह तीनों अविद्याकल्पित हैं, तुरीय वह एक बचा हुआ शिव केवल मैं हूँ ।

अपि व्यापकत्वाद्धि तत्त्वप्रयोगात्स्वतः सिद्धभावादनन्याश्रयत्वात्
जगत्तुच्छमेतत्समस्तं तदन्य त्तदेकोवशिष्टः शिवः केवलोहम् ॥

व्यापक, हित, स्वतः सिद्ध, तथा दूसरे के आश्रित न होने से मुझ से भिन्न यह समस्त जगत् तुच्छ है, वह एक बचा हुआ शिव केवल मैं हूँ ।

न चैकं तदन्यद्द्वितीयं कुतः स्या-न्नवा केवलत्वं न चाकेवलत्वम् ।
न शून्यं न चाशून्यमद्वैतकत्वा-त्कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि ॥

जब इससे भिन्न कोई वस्तु ही नहीं है तब द्वितीय कहाँ ? अद्वैत होने से न इस में केवलत्व है न अकेवलत्व, न वह शून्य है न अशून्य, सर्ववेदान्तों से सिद्ध ब्रह्म को मैं कैसे कहूँ ?

समाप्तम्

"विज्ञान-नौका ।"

तपोयज्ञदानादिभिः शुद्धबुद्धि विरक्तो नृपादौ पदे तुच्छबुद्ध्या।
परित्यज्य सर्वं यदाप्नोति तत्त्वं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि॥

जिसकी बुद्धि तप यज्ञ दान आदिकों से शुद्ध हो गई है, ऐसा पुरुष राज्य आदि पदों को तुच्छ जान कर तथा उन से विरक्त हो कर और सर्व को त्याग कर जिस तत्त्व को प्राप्त होता है, वह नित्य परब्रह्म मैं ही हूँ।

दयालुं गुरुं ब्रह्मनिष्ठं प्रशान्तं समाराध्य भक्त्या विचार्य स्वरूपम्।
यदाप्नोति तत्त्वं निदिध्यास्य विद्वान् परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि॥

विद्वान् पुरुष, दयालु शान्त और ब्रह्मनिष्ठ गुरु को भक्ति से प्रसन्न करके, स्वरूप का मनन और निदिध्यासन करके जिस तत्त्व को प्राप्त होता है, वह नित्य परब्रह्म मैं ही हूँ।

यदानन्दरूपं प्रकाशस्वरूपं निरस्तप्रपञ्चं परिच्छेदशून्यम्।
अहं ब्रह्मवृत्त्यैकगम्यं तुरीयं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि॥

जो आनन्दरूप, प्रकाशस्वरूप, प्रपञ्च से रहित, परिमाण से शून्य, एक, "अहं ब्रह्म" वृत्ति का विषय और तुरीय है, वह नित्य पर-ब्रह्म मैं ही हूँ।

यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं विनष्टं च सद्यो यदात्मप्रबोधे।
मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि॥

जिस आत्मा के अज्ञान से सारा जगत् प्रतीत होता है और जिसके ज्ञान से तत्काल नष्ट हो जाता है, जो मन वाणी का अविषय, विशुद्ध और विमुक्त है, वह नित्य परब्रह्म मैं ही हूँ।

निषेधे कृते नेतिनेतीतिवाक्यैः समाधिस्थितानां यदाभाति पूर्णम्।
अवस्थात्रयातीतमद्वैतमेकं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि॥

"नेति नेति" वाक्यों से निषेध कर देने पर समाधिस्थ-पुरुषों को जो अवस्थात्रय से रहित, अद्वैत, एक और पूर्ण प्रतीत होता है, वह नित्य परब्रह्म मैं ही हूँ ।

यदानन्दलेशैः समानन्दि विश्वं यदा भाति सत्त्वे सदा भाति सर्वम् ।
यदालोचिते हेयमन्यत्समस्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥

जिस के आनन्द के लेशों से जगत् आनन्द पाता है, मन में जिस के प्रकाश होने से सारा जगत् भासता है और जिस का ज्ञान होने पर अन्य सब पदार्थ त्याग के योग्य हो जाते हैं, वह नित्य परब्रह्म मैं ही हूँ ।

अनन्तं विभुं सर्वयोनिं निरीहं शिवं सङ्गहीनं यदोङ्कारगम्यम् ।
निराकारमत्युज्ज्वलं मृत्युहीनं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥

जो अनन्त, विभु, सर्व का कारण, इच्छा से रहित, शिव, सङ्गरहित, निराकार, अत्यन्त उज्ज्वल, मृत्यु से हीन, और ओंकार के जप से प्राप्त होता है, वह नित्य परब्रह्म मैं ही हूँ ।

यदानन्दसिन्धौ निमग्नः पुमान्स्यादविद्याविलासः समस्तप्रपञ्चः ।
तदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥

जब पुरुष आनन्दसमुद्र में निमग्न हो जाता है तब अविद्या का विलास यह सम्पूर्ण जगत् नहीं भासता तथा जो अद्भुत और जगत् का निमित्त है, वह नित्य परब्रह्म मैं ही हूँ ।

स्वरूपानुसन्धानरूपां स्तुतिं यः पठेदादराद्भक्तिभावो मनुष्यः ।
शृणोतीह वा नित्यमुद्युक्तचित्तो भवेद्विष्णुरत्रैव वेदप्रमाणात् ॥

जो भक्त स्वरूपविचाररूप इस स्तुति को आदर से पढ़ता है अथवा सावधान-चित्त हो कर नित्य सुनता है वह वेदप्रमाण से इसी देह में विष्णु हो जाता है ।

"हस्तामलकम् ।"

कस्त्वं शिशो कस्य कुतोसि गन्ता किं नाम ते त्वं कुत आगतोसि ।
एतन्मयोक्तं वद चार्भक त्वं मत्प्रीतये प्रीतिविवर्धनोसि ॥

श्रीशङ्कर उवाच ॥ हे बालक ! तू कौन है ? किसका है ? और कहाँ जायगा ? तेरा क्या नाम है तथा कहाँ से आया है ? जो मैंने तुझसे पूछा है तू उसे मेरी प्रीति के लिये कथ, क्योंकि तू प्रीति के बढ़ाने वाला है ।

नाहं मनुष्यो नच देवयक्षो न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः ।
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः ॥

शिष्य उवाच ॥ मैं न मनुष्य हूँ न देव, न यक्ष, न ब्राह्मण, न क्षत्रिय, न वैश्य, न शूद्र, न ब्रह्मचारी, न गृही, न वनवासी और न संन्यासी हूँ, मैं निजबोधरूप हूँ ।

निमित्तं मनश्चक्षुरादिप्रवृत्तौ निरस्ताखिलोपाधिराकाशकल्पः ।
रविर्लोकचेष्टानिमित्तं यथा यः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥

सब उपाधियों से रहित आकाशसदृश जो लोक की चेष्टाओं के कराने वाले सूर्य के समान मन और चक्षु आदिकों की प्रवृत्ति में निमित्त है, वह नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ ।

यमग्न्यौष्ण्यवन्नित्यबोधस्वरूपं मनश्चक्षुरादीन्यबोधात्मकानि ।
प्रवर्त्तन्त आश्रित्य निष्कम्पमेकं स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥

अग्नि की उष्णता के समान नित्य ज्ञानस्वरूप, निष्कम्प जिस एक आत्मा को आश्रय करके, जड़ मन चक्षु आदिक

स्व-स्व-व्यापार में प्रवृत्त होते हैं, वह नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

मनश्चक्षुरादेर्वियुक्तः स्वयं यो मनश्चक्षुरादेर्मनश्चक्षुरादिः ।
मनश्चक्षुरादेरगम्यस्वरूपः स नित्योपलब्धिस्वरूपोहमात्मा ॥

जो स्वयं मन चक्षु आदिकों से रहित है, जो मन का मन और चक्षु आदि का चक्षु आदि है और जिसका स्वरूप मन चक्षु आदिक का अविषय है, वह नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

मुखाभासको दर्पणे दृश्यमानो मुखत्वात्पृथक्त्वेन नैवास्ति वस्तु।
चिदाभासको धीषु जीवोपि तद्वत्स नित्योपलब्धिस्वरूपोहमात्मा

जैसे दर्पण में दृश्यमान मुख का प्रतिबिम्ब मुख से भिन्न कोई वस्तु नहीं है, इसी प्रकार बुद्धि में चेतन का प्रतिबिम्ब जीव भी चेतन से पृथक् कोई वस्तु नहीं है। वह नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

यथा दर्पणाभाव आभासहानौ मुखं विद्यते कल्पनाहीनमेकम् ।
तथा धीवियोगे निराभासको यः स नित्योपलब्धिस्वरूपोहमात्मा

जैसे दर्पण के अभाव में प्रतिबिम्ब के न होने से बिम्बत्व-आदि कल्पना से शून्य केवल एक मुख ही रहता है, वैसे ही बुद्धि के वियोग में प्रतिबिम्ब के न होने से कल्पनाहीन जो एक शेष रहता है, वह नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

य एको विभाति स्वतः शुद्धचेताः
प्रकाशस्वरूपोपि नानेव धीषु ।
शरावोदकस्थो यथा भानुरेकः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोहमात्मा ॥

जैसे एक सूर्य प्यालों के जलों में प्रतिबिम्बित हो कर नानारूप से प्रतीत होता है, वैसे ही जो एक स्वतः-शुद्ध प्रकाशस्वरूप होकर भी बुद्धिवृत्तियों में अनेकाकार प्रतीत होता है, वह नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

यथा सूर्य एकोप्स्वनेकश्चलासु
स्थिरास्वप्यनन्यद्विभाव्यस्वरूपः।
चलासु प्रभिन्नासु धीष्वेक एवं
स नित्योपलब्धिस्वरूपोहमात्मा॥

जैसे एक सूर्य बहते हुए और स्थिर जलों में अनेक रूप का प्रतीत होता है; ऐसे ही दूसरों से जिस के स्वरूप का प्रकाश नहीं हो सकता, जो एक आत्मा चल और स्थिर बुद्धियों में अनेकरूप हो कर प्रतीत होता है, वह नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

यथानेकचक्षुःप्रकाशो रविर्न
क्रमेण प्रकाशीकरोति प्रकाश्यम्।
अनेका धियो यस्तथैकः प्रबोधः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोहमात्मा॥

जैसे अनेक नेत्रों का प्रकाश करने वाला सूर्य एक बार हीं दृश्यों को प्रकाशित करता है, वैसे ही जो एक ज्ञान अनेक बुद्धियों को एक बार ही प्रकाशन करता है, वह नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

विवस्वत्प्रभातं यथा रूपमक्षं प्रगृह्णाति नाभातमेवं विवस्वान्।
यदाभातमाभासयत्यक्षमेकः स नित्योपलब्धिस्वरूपोहमात्मा।

जैसे सूर्य से प्रकाशित नेत्र रूप को ग्रहण करता है अप्र-

काशित नहीं, वैसे ही सूर्य जिस के प्रकाश से प्रकाशित हो कर नेत्रों को प्रकाशन करता है, वह एक नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ ।

समस्तेषु वस्तुष्वनुस्यूतमेकं समस्तानि वस्तूनि यन्न स्पृशन्ति।
वियद्वत्सदा शुद्धमच्छस्वरूपं सनित्योपलब्धिस्वरूपोहमात्मा॥

जो एक सब वस्तुओं में अनुगत है और सब वस्तुएँ जिस को स्पर्श नहीं करती हैं, आकाश के समान शुद्ध स्वच्छ नित्य और ज्ञानस्वरूप वह आत्मा मैं हूँ ।

घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं यथा मन्यते निष्प्रभं चातिमूढः ।
तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः स नित्योपलब्धिस्वरूपोहमात्मा॥

जैसे मूर्ख पुरुष मेघ के कारण दृष्टि रुक जाने से सूर्य को ढका हुआ तथा प्रकाशरहित समझता है, वैसे ही मूढ़बुद्धि पुरुष को जो आत्मा बद्ध सा प्रतीत होता है, वह नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ ।

उपाधौ यथा भेदता सन्मणीनां तथा भेदता बुद्धिभेदेषु तेपि ।
यथा चन्द्रिकाणां जले चञ्चलत्वं तथा चञ्चलत्वं तवापीह विष्णो॥

'हे विष्णो ! जैसे उपाधियों से स्वच्छ मणि का भेद प्रतीत होता है, वैसे ही बुद्धियों के भेद से तेरा भेद प्रतीत होता है। जैसे जल की चञ्चलता से चन्द्रकिरणों की चञ्चलता भासती है, उसी प्रकार बुद्धि की चञ्चलता से तेरी भी चञ्चलता भासती है ।

* समाप्तम् *

ॐ

"आत्मषट्कम् ।"

मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि नाहं नच श्रोत्रजिह्वे नच घ्राणनेत्रे ।
नचव्योमभूमी न तेजो न वायु श्चिदानन्दरूपः शिवोहं शिवोहम् ।

मैं मन, बुद्धि, अहङ्कार, चित्त, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण, नेत्र, आकाश, पृथिवी, तेज और वायु रूप नहीं हूँ, केवल चिदानन्दरूप शिव हूँ मैं शिव हूँ ।

अहं प्राणवर्गो न पञ्चानिलामे न तोयं न मे धातवो नैव कोशाः ।
न वाक्पाणिपादौ न चोपस्थपायू चिदानन्दरूपःशिवोहंशिवोहम्

मैं प्राणों का समूह नहीं हूँ, पाञ्च प्राण मेरे नहीं हैं, मैं जल नहीं हूँ, न धातु मेरे हैं, न कोश मेरे हैं, न मैं वाणी हूँ, न मैं हाथ हूँ, न पैर हूँ, न लिङ्ग हूँ और न गुदा हूँ, मैं चिदानन्द रूप शिव हूँ मैं शिव हूँ ।

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैवमे नैव मात्सर्यभानम् ।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष श्चिदानन्दरूपःशिवोहं शिवोहम्

मुझे द्वेष नहीं, राग नहीं, लोभ नहीं मोह नहीं, न मद है न मत्सर, न मेरा धर्म है न अर्थ, न काम है न मोक्ष, मैं चिदानन्दरूप शिव हूँ मैं शिव हूँ ।

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोहं शिवोहम् ॥

न पुण्य है न पाप, न सुख है न दुःख, न मन्त्र है न तीर्थ, न वेद है न यज्ञ, न मैं भोजन हूँ न भोज्य तथा न भोक्ता हूँ, मैं चिदानन्दरूप शिव हूँ मैं शिव हूँ ।

न मे मृत्युशङ्का न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य-
श्चिदानन्दरूपः शिवोहं शिवोहम् ॥

न मुझे मृत्यु की शङ्का है, न मेरा जातिभेद है, न पिता है न माता है, न जन्म है, न बन्धु है, न मित्र है, न गुरु है, न शिष्य है, मैं चिदानन्दरूप शिव हूँ मैं शिव हूँ ।

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि ।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्न बन्ध श्चिदानन्दरूपः शिवोहं शिवोहम् ॥

मैं निर्विकल्प हूँ, मैं निराकाररूप हूँ, मैं विभु हूँ, सर्वत्र सर्व इन्द्रियों को व्याप्त करके स्थित हूँ, मुझे सदा समता है, न मुक्ति है न बन्ध है, मैं चिदानन्दरूप शिव हूँ मैं शिव हूँ ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

